TAP
INAG
LIBRARY
TAP
INAG
LIBRARY

पैसा

सामाजिक उपन्यास

मूल लेखक :—

श्री रमणलाल वसंतलाल देसाई एम० ए०

अनुवादक :—

श्री मुकुन्द वर्मा बी० ए०

प्राप्तिस्थान :—

बम्बई बुक डिपो

१६५/१, हरिसन रोड,

कलकत्ता।

प्रकाशक :—

कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स

बड़े महाराज का मन्दिर,

बनारस सिटी।

तृतीय संस्करण

सं० २०१३ वि०

मूल्य ४॥) रुपया।

मुद्रक :—

श्री सोमारू

गौरीशंकर प्रे

मध्यमेश्वर, बना

पै

सा

पैसा MONEY

—१—

शरत् पूर्णिमा की रात्रि में एक छोटी डोंगी नर्मदा की बीच धारा में धीरे-धीरे तैर रही थी। पूर्ण-चन्द्र सरिता की लहरों पर ज्योतिर्मय नृत्य कर रहा था। डोंगी का श्वेत पाल हवा में हिलोरें लेकर मानों डोंगी से आलिंगन करने की व्याकुलता प्रदर्शित करता था। ग्रामोफोन बज रहा था—

"छवि दिखला जा बांके संवरिया।"

प्यारे साहब का यह सुन्दर गाना ज्योत्स्ना के अनुकूल ही वातावरण उत्पन्न कर रहा था।

"अरे अब बन्द करो भाई, जी घबरा गया, कैसी कड़ी आवाज है", रोहिणी ने कहा।

"प्यारे साहब का प्लेट समाप्त हुए बिना बन्द नहीं होगा।" शिरीष ने उत्तर दिया—"मैं अपने विल में लिख जाऊँगा कि मेरी चिता के सामने भी प्यारे साहब का रिकार्ड बजाया जाय।"

"बाँके चितवन नैना रसीले।"

गाना आगे बढ़ा

"अच्छा अब बन्द करते हो या मैं प्लेट तोड़ दूँ? जो चीज मुझे नहीं

पसन्द आती वही तुम्हें अच्छी लगती है। तुम्हें तो आनन्द आता है और मेरा सर दर्द करने लगा।" सोहिणी रुष्ट होकर बोली।

"ना माने जिया मेरा रे"

प्यारे साहब का तेज स्वर बाजे से निकलता ही रहा।

"एक शर्त पर बन्द कर सकता हूँ कि तुम गाओ।" शिरीष बोला।

शिरीष और सोहिणी पढ़े-लिखे रसिक और संस्कारी दम्पति थे। शिरीष धनी पिता का पुत्र था इससे उसे रोटी की चिन्ता नहीं थी। अध्ययन समाप्त कर वह यूरोप की सैर भी कर चुका था।

सोहिणी का कुटुम्ब मध्यमवर्ग का था। उसके पिता सरकारी नौकरी करते थे। सरकारी नौकर विरले ही धन इकट्ठा कर पाते हैं। सोहिणी के पिता की भी यही हालत थी। वह स्त्री शिक्षा के बड़े हिमायती थे अतः उन्होंने सोहिणी को ऊँची शिक्षा दी। ऊँची शिक्षा में स्वतंत्रता की मात्रा अधिक होती है। तदनुसार सोहिणी बहुत ही स्वतंत्र थी। उसके एक कृपापूर्ण कटाक्ष के लिए कालेज का युवक वर्ग तड़पता रहता था। उसकी बेदिल की बातों में भी स्वर्गीय आनन्द का अनुभव करने वाले कितने ही युवक उसके आस-पास चक्कर लगाया करते थे और उनमें से यदि किसी युवक को वह किसी काम को कहती तो युवक को मोक्ष प्राप्ति का सा आनन्द आता था। सोहिणी को इसमें एक विशेष रस मिलता था। अकारण ही अच्छे-से-अच्छा वस्त्र पहन कर वह बाहर निकलती और युवकों को अपने आसपास चक्कर मारते देख मुस्कुराने लगती। हैट उतार कर दिनमें तीन बार सलाम करने वालों की उसके पास एक सूची थी। सोहिणी को अमुक पुस्तक की जरूरत होगी यह विचार कर उसे पुस्तकें देने वाला भी एक वर्ग था। सभा और पार्टियों का निमन्त्रण देनेवालों को भी वह खूब पहचानती थी। परन्तु इन सबमें से उसने शिरीष को अलग कर रक्खा था। यह मनमौजी युवक प्रोफेसरों का शत्रु था। पढ़ने वाले

विद्यार्थी उससे दूर भागते थे। अधिकांश में तो क्लास में उसकी उपस्थिति भी हानिकारक ही समझी जाती थी। यदि वह कुछ पूछता तो लड़के हँसने लगते; जवाब देता तो क्लास खिलखिला उठता तथा यदि बिना पूछे ही चुपचाप संतोष कर बैठा रहता तो भी लड़के उसे देखकर हँसते। इस अवस्था से चिढ़कर प्रोफेसर जब देखते तो शिरीष के आस-पास कागज के छोटे छोटे टुकड़े उड़ते दिखाई देते! लाचार हैरान होकर वे उसे क्लास से बाहर निकाल देते।

सोहिणी अपने प्रशंसक युवकों को तिरस्कारपूर्वक देखती थी वे सब उसे हास्यास्पद ज्ञात होते थे। परन्तु लापरवाह शिरीष ने उसका मन आकर्षित कर लिया था। इस आकर्षण का कारण क्या था इसका कोई उत्तर नहीं। कौन किसे और क्यों अच्छा लगता है यह निश्चय नहीं किया जा सकता। परन्तु इस आकर्षण का परिणाम यह हुआ कि और युवकों के देखते ही देखते शिरीष और सोहिणी का विवाह हो गया। अपने को सोहिणी का प्रधान मित्र मानने वाले युवक चकित हो गये। यद्यपि सोहिणी के माता पिता की इच्छा नहीं थी तथापि उसकी इच्छा के आगे सभी को झुकना पड़ा।

इस विवाह से सभी को आश्चर्य हुआ। शिरीष केवल एक धनी का पुत्र था। उसके पिता धर्मपाल अपने नामानुरूप बड़े ही धर्मात्मा थे। वह शिरीष के प्रति जरा भी कड़ाई नहीं रखते थे। उसे कभी खर्च की तंगी नहीं होने देते इससे उसे मनमाना खर्च करने की आदत पड़ गई थी। वह एक विचित्र प्रकार का युवक था। उसके अच्छे से अच्छा वस्त्र धारण करने में भी एक विचित्रता अवश्य रहती थी जैसे सारे कपड़े पहनने पर भी टोपी नदारद जो सभी को आकर्षित करता था। गाड़ी पर बैठता तो भीतर नहीं वरन् कोचवान की बगल में। उसकी गणना अच्छे लड़कों में कभी हुई ही नहीं और जो कुछ भी कमी थी वह उसने संगीत की उपासना से पूरी कर दी। गाना-बजाना विद्यार्थी धर्म के प्रतिकूल माना जाता है।

लोगों की ऐसी धारणा है कि जिस विद्यार्थी को गाने बजाने का चस्का लगा वह हाथ से बाहर हुआ।

धर्मपाल कट्टर वैष्णव थे। उन्होंने अपना एक निजी सुन्दर मन्दिर बनवाया था जहां समय-समय पर अच्छे गवैये भगवान के भजन गाते थे। बचपन में शिरीष को उनका मधुर संगीत बहुत प्रिय लगता था और जब कभी भजन होने लगता तो वह सारा काम छोड़ कर सुनने बैठ जाता। इसका परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही दिनों में वह बिना शिक्षा के केवल सुनकर ही अच्छा गवैया हो गया।

एक दिन पूर्णिमा की रात्रि में कालेज के विद्यार्थियों ने उत्सव का आयोजन किया। बिना छात्राओं की उपस्थिति के उत्सव सफल कैसे हो, इस ख्याल से उन्हें भी निमंत्रित किया गया। छात्राओं में मोहिणी भी थी। उत्सव में कुछ गाने बजाने का भी प्रबन्ध था।

बिना ठेके के गाना कैसे हो? एक प्रसिद्ध गायक आये थे, पर उनके साथ का तबलची समय पर न आ सका। लड़कों ने पता लगाया तो मालूम हुआ कि तबलची महाशय घर से तो कभी के निकले हैं पर गांजे की लहर में न जाने कहाँ बहक गये हैं। गवैये से लड़कों ने बिना तबले के ही गाने को कहा पर उस्तादजी ने बिना ठेके के गाने से साफ इन्कार कर दिया।

"आप लोग गाना क्या समझेंगे? बिना तबले के कभी गाना होता है!" गवैये ने अपनी जिद पकड़े हुए कहा।

"अरे शिरीष तुम क्यों नहीं बजा देते? उस दिन तो तुम ढोलक बड़ी अच्छी बजा रहे थे।" किसी लड़के ने कहा।

इतना सुनते ही सभी शिरीष से आग्रह करने लगे। उसने बहुत से बहाने निकाले पर उसकी एक भी न चली। लाचार उसने बजाना स्वीकार किया। गवैये को यह बात पसन्द नहीं आई और उसने एक तिरस्कार पूर्ण दृष्टि शिरीष पर डाली। पर जब अनुभवी बजाने वाले की तरह

शिरीष ने तबले को हथौड़ी से ठोक पीटकर स्वर मिलाया तब उनका तिरस्कार कम हुआ। शिरीष ने नम्रता से कहा,—"मैं कुछ जानता नहीं, जरा संभाले रहियेगा।"

"कोई परवाह नहीं, बस ठेका दिये जाओ।" गवैये ने कहा। गवैयों को प्रसन्न करने के लिए उनकी प्रशंसा करनी आवश्यक है। शिरीष की नम्रता से वह प्रसन्न हो गया और गाना आरम्भ किया।

"जरा ताल बजाते जाइयेगा।" शिरीष बोला।

"हां हां ठीक है झुमरा ही बजाओ।" शिरीष झुमरा ही बजा रहा था। गाना सुचारू रूप से चलने लगा। गवैये के स्वर के आरोहावरोह के अनुसार शिरीष की उँगलियाँ तबले पर नाचने लगीं। गवैया बड़ा खुश हुआ और विद्यार्थियों का तो पूछना ही क्या। उनमें से तो विरले ही ताल स्वर के जानकार थे परन्तु तबले की साफ आवाज और अटपटे मोड़ सुनकर लड़के प्रसन्न हो उठे। कंधे हिलाने, गरदन मोड़ने और आँखें मटकाने वाली हास्यजनक आदतें जो तबलचियों में प्रायः पाई जाती हैं, शिरीष में नहीं थीं मगर गले में रुमाल बाँधे टेढ़ी टोपी लगाकर जम कर बैठा हुआ शिरीष बड़ा सुन्दर लग रहा था। गाना समाप्त कर गवैये ने शिरीष की बड़ी प्रशंसा की और उससे भी कुछ गाने का आग्रह किया। विद्यार्थियों ने भी जोर दिया। तब शिरीष ने एक बहुत ही सुन्दर चीज गाई। उसकी मोहक स्वरावली और मधुर कण्ठ ने सभी को मुग्ध कर लिया। उसके गाने की रीति ने गीत का अर्थ और भी स्पष्ट कर दिया। गाना समझने और न समझने वाले दोनों मस्त होकर झूमने लगे।

—२—

इस प्रसंग ने शिरीष ने बकुला को आकर्षित कर लिया। सोहिणी तो उसके पीछे पागल हो गई। शिरीष के गाने का स्वर उसके चारों ओर व्याप्त-सा हो गया। उसके अलाप वह स्वयं ही गुनगुनाया करती। गले में रूमाल बाँधे हुए शिरीष की तबला बजाने वाली मुख-मुद्रा उसके नेत्रों के आगे नाचा करती।

धीरे-धीरे शिरीष भी सोहिणी को चाहने लगा। कुछ ही दिनों में दोनों एक दूसरे के अनन्य प्रेमी हो गए। शिरीष की इच्छा थी कि कालेज का अध्ययन समाप्त करने के बाद ही उसका विवाह हो जाय उसकी महत्वाकांक्षिणी प्रेमिका कोई असाधारण पति चाहती थी। ग्रेजुएट होना तो एक मामूली बात थी सोहिणी की इच्छा थी कि शिरीष विलायत जाकर अधिक ऊँची उपाधि प्राप्त करें।

शिरीष विलायत गया। यह सभी मानते हैं कि योरोप यात्रा से बड़े लाभ होते हैं, परन्तु एक उत्तम लाभ की ओर लोगों की दृष्टि कम जाती है। योरोप में प्रेम और नीति की व्याख्या बहुत विस्तृत है। यह व्याख्या बिना योरोप यात्रा के समझ में नहीं आती, पर साथ ही प्रत्येक योरोप यात्री उसे समझ भी नहीं सकता। शिरीष ने अपने पत्रों में वहाँ की स्त्रियों के वर्णन, उनका रहन-सहन चाल-ढाल लिखना शुरू किया। यह सब पढ़कर सोहिणी व्यग्र हो गई और उसे डिग्री मिले या न मिले; जल्द लौटने का आग्रह करने लगी। वह प्रियतमा की बात मानकर एक ही वर्ष में वापस लौट आया। उसके लौटते ही विवाह के लिये तैयारी होने लगी। धर्मपाल पुत्र की इच्छा के विरुद्ध कुछ भी नहीं करना चाहते थे इससे उन्होंने तुरन्त सम्मति दे दी। इधर लड़की के पिता भी राजी थे ही अतः विवाह हो गया। धर्मपाल को अपने जीवन का एक महत्वपूर्ण कार्य सम्पादन करने का आनन्द हुआ। कुन्दनलाल को भी सन्तोष हुआ कि लड़की धनी घर जाकर सुखी होगी।

शिरीष और सोहिणी एक दूसरे को बहुत चाहते थे। एक दूसरे के बिना रह ही नहीं सकते थे। यही नहीं उन्हें व्यर्थ की बकवाद करने से भी बड़ा आनन्द आता था। घर का कोई काम तो किसी को करना नहीं था। भोजन तैयार मिलता और नौकर हाथ बाँधे खड़े रहते थे। दिन-रात प्रेम में विभोर इस जोड़ी के लिये संसार संकुचित होकर एक दूसरे के नेत्रों में ही समा गया था।

फिर भी धर्मपाल कभी कुछ कहते नहीं थे। उन्हें इनके कार्यों से कुछ मतलब नहीं था। पूजा-पाठ से जो समय बचता था उसे व्यापार का काम देखने में गाते थे। शिरीष दुःखी न हो इससे वे उसके खिलाफ कोई शिकायत भी नहीं सुनते थे। मुनीम जब रोकड़ मिलाने बैठता तो शिरीष का बढ़ता खर्च सुनाता——

"इस महीने में डेढ़ सौ रुपये थियेटर देखने में खर्च हो गये।"

धर्मपाल बिना किसी प्रभाव के उत्तर देते—"हाँ ठीक है, शायद आज-कल कोई अच्छी कम्पनी आई है।" और मुनीम निरुत्तर हो जाता।

कभी-कभी किसी दासी द्वारा वे शिरीष और सोहिणी का समाचार पूछते। एक दासी बहुत दिनों से उस घर में काम करती थी। उसे शिरीष और सोहिणी की स्वछन्दता असह्य थी। उन्हें देखकर वह तरह-तरह के मुँह बनाती और नौकरों में उनके कार्य कलापों का वर्णन कर उन्हें हँसाती थी। वह बहुत दिनों से चाहती थी कि धर्मपाल से उनकी शिकायत करे पर कोई अवसर नहीं मिलता था। घर के पुराने नौकर और दासियाँ कुटुम्ब के निजी प्राणियों के समान हो जाते हैं तथा उन्हें सभी से हर प्रकार की बातें करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। धर्मपाल ने जब एक दिन उस दासी से शिरीष का समाचार पूछा तो उसने कहा——

"वह तो भाभी के साथ बाग में खेल रहे हैं और रास्ते पर सब लोग खड़े तमाशा देखते हैं।"

परन्तु धर्मपाल के विचार दासी के समान संकुचित नहीं थे। चाहे अन्य विषयों में उनका मत उससे मिल भी जाता पर पुत्र की शिकायत वे बिल्कुल पसन्द नहीं करते थे। वे बोले--

"अच्छा है खेलने दो, अभी तो खेलने की अवस्था ही है।" इस प्रकार का उत्तर सुनकर दासी जल उठती थी और बुड्ढे की बुद्धि सठिया गई है यह सोचकर चुप रह जाती तथा अन्य नौकरों में भी बात फैलाती, पर इससे शिरीष और सोहिणी को कोई बाधा नहीं थी।

एक दिन धर्मपाल ने कोचवान को जोड़ी तैयार करने के लिये बुलाया। नौ बजे दिन को कोचवान उसके सामने आँख मलते सोकर उठा।

'अरे नौ बज गया और अभी तू सोकर उठा है ?' मुनीम ने कहा।

"क्या करूँ सरकार, रातभर जागता ही रहा।"

"रातभर क्या करता था ?"

"रात बारह बजे छोटे भाई घूमने गये थे।"

"भाभी भी साथ रही होंगी ?" मुनीम ने धर्मपाल का ध्यान आकर्षित कराते हुए कहा—

"हाँ भाभी भी थीं। उन्हीं को तो चाँदनी में घूमने की इच्छा थी।"

मुनीम धर्मपाल की ओर देखने लगा।

"ठीक है, कल तो छठ थी। अभी तो पूर्णिमा बीती है। बारह बजे के बाद तो अभी चाँदनी रहती होगी। अच्छा, जोड़ी रहने दे दूसरा घोड़ा जोत ला।"

मुनीम चकित हो गया। उसे अपने मालिक के वात्सल्य पर दया और तिरस्कार उत्पन्न हुआ। संसार में पुत्र के पीछे सभी पिता पागल रहते हैं पर यह बात केवल पुत्र की बाल्यावस्था तक ही सीमित रहती है। विशेष परिस्थितियों में तो विवाह के बाद इस प्रकार पुत्र के दोषों को सहन करने

वाले पिता विरले ही होते हैं या नहीं ही होते। मुनीम की कम से कम यही धारणा थी अतएव इस प्रकार पुत्र और पुत्रवधू के दोषों को प्रोत्साहन देने वाले अपने मालिक पर उसके मन में सिवा दया और तिरस्कार के और क्या भाव आ सकता है ? पर फिर भी वह चुप नहीं रह सका। इस साल यद्यपि गौशाले का चन्दा धर्मपाल ने भेज दिया था तथापि इतनी ही रकम से एक दातव्य औषधालय भी शिरीष के विवाहोपलक्ष में खोला गया। इसके लिए शिरीष का विशेष आग्रह था और उसका एक मित्र डाक्टर नियुक्त किया गया। पर कुछ ही दिनों में दवाखाना बन्द हो गया क्योंकि शिरीष का डाक्टर मित्र और बड़ी डिग्री लेने विलायत चला गया। वहाँ से लौटने पर उसने दवाखाना देखना स्वीकार किया।

एक दिन मुनीम ने धर्मपाल से कहा—

"साहब, मुझे कहना तो नहीं चाहिए, पर आप नाराज न हों तो मैं कुछ कहूँ।"

"कहो न, तुम्हारी बात से भला मैं क्यों नाराज होऊँगा ?"

"भाई के विषय में चारों ओर लोग क्या कह रहे हैं ?"

"लोगों से हमें क्या करना है बोलने दो, हम इसमें क्या कर सकते हैं ?"

"इतना ही नहीं, साथ में आपकी भी निन्दा होती है। लड़के को आप नहीं सँभालियेगा तो कौन सँभालेगा ?"

"पर वह ऐसा कौन सा काम करता है जो उसे रोका जाय ?"

"अब यह क्या कहा जाय। बहू के साथ घूमते हैं, नाटक में जाते हैं, गाते बजाते हैं। जहाँ चार आदमी जमा होते हैं बस इसी की चर्चा होने लगती है। सभी इसे बुरा कहते हैं।"

"तो तुम्हीं मना करो न, मैं रोकता नहीं हूँ। मेरी बात से अधिक तुम्हारी बात वह सुनेगा।"

मुनीम चुप हो गया। उसे कई ऐसे प्रसंग याद आये जब शिरीष ने उसका कहना मान कर उसका सम्मान किया था।

"यह तो मान लेंगे पर उनकी बहू की बात मैं कह रहा हूँ।" मुनीम ने पुनः कहा।

"भाई, बहू की कोई बात मत कहो। वह हमारे घर की लक्ष्मी है। वह प्रसन्न रहेगी तो सारा घर प्रसन्न रहेगा। शिरीष की माता की मृत्यु के इतने दिनों बाद अब हमारा घर उज्ज्वल हुआ है। अभी दोनों बालक हैं, समय पर ठीक हो जायेंगे और यदि हम दुनिया की बकबक की परवाह करें तो जीना कठिन हो जाय। भगवान सबका कल्याण करेंगे।" —धर्मपाल ने उत्तर दिया।

—३—

काल युग के समान प्रेम का भी युग होता है—सत्, त्रेता, द्वापर और कलि। आनन्द और सुख का जीवन व्यतीत करती हुई मोहिनी के एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। धर्मपाल के जीवन में यह एक बड़े भारी आनन्द का विषय था। दान दक्षिणा, गरीबों को भोजन और न जाने क्या क्या किया गया। पुत्र का नाम उन्होंने अशोक रक्खा और वह उनकी दिनचर्या में घुस पड़ा। या तो वह उन्हीं की गोद में रहता या उनके पास ही एक सुन्दर गद्दी पर पड़ा खेलता रहता। अपने ही पुत्रों से थक जाने वाले माता पिता पौत्र को इतना प्यार करते हैं, यह आश्चर्य का विषय था।

प्रेम यद्यपि एक सनातन भाव है तो भी उसकी धारा सदैव एक समान नहीं रहती और उसकी तीव्रता घटती बढ़ती चलती है। प्रारम्भ के वर्ष दो वर्ष की मोहनी कम होने पर आकाश में विचरण करने वाले प्रेमी पृथ्वी पर पैर रखना आरम्भ कर देते हैं और पृथ्वी पर पैर रखते ही प्रेम की स्वर्गीय भावना में पृथ्वी की पार्थिवता प्रवेश करने लगती है।

"आज तो शतरंज खेलना पड़ेगा, बहुत दिन हो गये।" सोहिणी शिरीष से आग्रह करती।

"अभी नहीं।"

"अभी नहीं तो फिर कब? जब मैं कहती हूं तभी तुम नहीं कर देते हो।"

"अभी मुझे घूमने जाना है लौटकर खेलूँगा।" शिरीष उत्तर देता —

"मैं भी घूमने चलूँगी।"

"सभी जगह साथ जाना है?" शिरीष ने पूछा। प्रेम के सतयुग में पड़ी हुई आदत प्रेम के त्रेता और द्वापर में पसन्द नहीं आती।

"ऐसी कौन सी जगह है जहाँ मैं नहीं चल सकती?"

"तुम तो पागल हो।" कहकर शिरीष चला जाता।

यह ठीक है कि पतिपत्नी एक दूसरे को चाहते हैं। पर चाहते हैं इसलिए चौबीस घण्टे साथ ही रहें, यह सदैव के लिए ठीक नहीं है। यदि यही बात प्रेमी वर्ग समझ लें तो बहुत से झगड़ों का अन्त हो जाय।

एक दिन सोहिणी किसी से मिलने गई। वहाँ से लौटने में देर हो गई। सन्ध्या को लौटकर शिरीष उसकी राह देखता था। उसकी टेव थी कि बाहर से लौटने पर वह सोहिणी का दर्शन करता। पर आज सोहिणी को न देखकर उसे बड़ा बुरा लगा। कहाँ गई है, कितनी देर से गई है, कब लौटेगी इत्यादि अनेक प्रश्न उसने पूछ डाले। इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर अधिकांश में सन्तोषजनक नहीं होता। उत्तर देनेवाला यह जानता ही नहीं कि कैसा उत्तर देना चाहिए। शिरीष चिढ़ गया। पढ़ने के लिए पुस्तक उठाई पर दो चार पंक्तियाँ पढ़कर बन्द कर दिया। बाजा उठाया पर आज स्वर ही नहीं मिला। छत पर जाकर टहलने लगा। जितनी ही देर होती उतना ही वह अधिक चिढ़ता जाता। एक सज्जन मिलने आये उनसे कहला दिया अभी फुर्सत नहीं है, बेचारे चुपचाप लौट गये। वह

पुनः नीचे लौट आया। दर्जी सिलाई का हिसाब लेने आया था उसी पर फट पड़ा—

"तुम्हें दूसरे समय नहीं आना था। शाम के समय रुपया लेने आये हो। इस समय जाओ।"

"नहीं सरकार, आपही ने बुलाया था। खैर, कोई बात नहीं फिर कभी आजाऊँगा।"

एकायक द्वार खुला। उसने समझा सोहिणी आई, पर सोहिणी नहीं रसोइया आया।

"आपने जो कहा था वह तैयार किया गया है।" उसने कहा।

"अच्छा किये जाओ, कहने की क्या आवश्यकता थी?" शिरीष चिढ़ कर बोला। मानो आज उसने सभी से चिढ़कर बात करना निश्चय कर लिया था। बेचारा ब्राह्मण चुपचाप चला गया।

एकायक शिरीष को अपनी चिढ़ का ध्यान आया। वह सदैव आनन्द में रहता था। दुख से उसे परिचय ही नहीं था। उसका प्रसन्न मुख देखकर क्रोधी मनुष्य भी प्रसन्न हो जाते थे। सोहिणी का नियम था कि प्रातःकाल वह उसके ही दर्शन करती थी। वह सोचने लगा—आज उसके स्वभाव में यह परिवर्तन क्यों हो गया? उसे हँसी आ गई और वह झूले पर लेट गया। पीछे से किसी ने उसके नेत्र बन्द कर लिये।

इस हाथ को वह खूब पहचानता था। उसकी कोमलता में अपार बल था। कुछ देर तक तो क्रोध में शिरीष को हाथ हटाने की इच्छा ही नहीं हुई। वह उस पर अपना हाथ फेरने लगा। कुछ देर बाद पूछा—कौन है।

"पहचानो"—सोहिणी ने कहा।

यद्यपि शिरीष का क्रोध उतर गया था तो भी उसने आज क्रोध करने का निश्चय किया था इसीलिये गम्भीर होकर बोला,

"कहाँ गई थी! मैं कब से बैठा राह देख रहा हूँ।"

"जहाँ मनमें आया, गई थी। तुम कहीं जाते हो तो मुझे बताते हो?" झूले पर बैठती हुई सोहिणी बोली।

इस प्रकार का उत्तर सोहिणी के लिए नई बात नहीं थी। शिरीष उसका अभ्यस्त हो गया था पर तो भी उसे आज यह उत्तर रुचा नहीं। एक तो इस प्रकार तिरस्कारपूर्वक सोहिणी ने आज प्रथम बार कहा था। दूसरे शिरीष को इस उत्तर की आशा नहीं थी। किसी की राह देखता हुआ मनुष्य यदि वह न मिले तो बड़ा अधीर हो जाता है। इसके सिवा मानव जाति की उत्पत्ति के साथ ही पतित्व में मालकियत की भावना का समावेश हो गया है। इस उत्तर से शिरीष के पतित्व को ठेस लगी। अन्य कोई भी बात सहन हो सकती है पर प्रत्येक बात में पत्नी पति की समानता करे यह बात पति को सदैव से असह्य रही है। वह गम्भीर होने लगा और उस समय सोहिणी ने उसके चेहरे पर कुछ ऐसा तेज देखा जो पहिले कभी नहीं देखा था। वह कुछ भयभीत हुई। पत्नी का भयभीत होना भी एक परम्परा है और कठोर से कठोर स्त्री भी कभी-कभी पति से भयभीत होती ही हैं। सोहिणी का हृदय नम्र हुआ। उसने शिरीष के गले में हाथ डाल दिये और किसी भारी अपराध की क्षमा याचना करती हुई सी बोली।

"तुम्हें बुरा लग गया मैं तो हँसी कर रही हूँ।"

"क्यों शिरीष भाई, आज तो तुम्हारा पता ही नहीं है" पास के कमरे से डाक्टर की आवाज आई।

सोहिणी हट कर दूसरी कुर्सी पर बैट गई। उसे अपनी निर्बलता का ज्ञान हुआ। ऐसा कौन सा कार्य उसने किया जो शिरीष उस पर गुस्सा हो गया यह विचार आते ही उसका स्वाभिमान और गौरव जाग्रत हो गया।

शिरीष ने डाक्टर को बुलाया।

"अरे शिरीष भाई, आज एक ऐसा केस आया था जो दो मिनट में ही ठीक हो गया पर जिसमें और सब लोग निराश हो चुके थे। तुम्हें बुलाने को नौकर भेजा तो उसने लौट कर कहा कि तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है। क्या बात है! और भाभी तुम्हारा मुख उदास क्यों है!"

कमरे में घुसते ही डाक्टर इतना बोल गया। वह जहां जाता वहां निष्कपट होकर जोर जोर से बात करता और शान्त वातावरण में गुल पैदा कर देना यही उसकी विशेषता थी।

"तुम स्त्रियों की बात क्या समझोगे?" मोहिनी बोली। शिरीष हँस पड़ा। बात करने की इच्छा से वह भी बोला, "ठीक ही है।"

"तुम्हारा सर ठीक है" डाक्टर बोला "मैं शर्त करता हूँ कि यदि आज तुम दोनों ने लड़ाई न की हो तो मुझे डाक्टर नहीं हज्जाम समझना।"

"तो लड़ाई ही सही। लड़ाई के बिना तो मुझे आनन्द ही नहीं आता।" हँसते हँसते मोहिनी ने कहा।

"तब क्या मैं गलत कहता हूँ? विवाहित नहीं हूँ पर जानकार तो हूँ।" "यही बात तुम हमेशा कहते हो। यह पुरानी हो गई है कोई दूसरी बात खोजो।" मोहिनी ने कहा।

"अब दो तीन पीढ़ियों में यह कहावत आप ही बदल जायगी और जब अशोक का विवाह होगा तो उस समय लोग कहेंगे कि विवाहित नहीं हूँ पर किसी की 'हनी मून' में तो आही चुका हूँ।" डाक्टर ने कहा।

"और तुम्हारे जैसे लोगों ने अविवाहित रहना तो आरम्भ कर ही दिया है।"

"नहीं, यह गौरव मुझे नहीं है। मेरे कई मित्रों ने विवाह का निषेध करना पहले ही तै कर लिया है। पुराने समय में भी तो भीष्म पितामह जैसे लोग थे।"

"पर भाई सुकुमार, तुम विवाह क्यों नहीं करते। अब तो मैं कोई हानि नहीं देखता ?" शिरीष ने पूछा।

"अरे भाई, तुम तो विवाहित हो ही, एकाध हमारे जैसे भी तो रहने दो; क्यों भाभी ठीक है न।" डाक्टर ने कटाक्ष करते हुए कहा।

पर इस प्रकार का कटाक्ष विवाहित स्त्री-पुरुष नहीं सहन कर सकते। मोहिणी ने कटाक्ष का उत्तर दिया।

"तुम्हारे जैसे चीर फाड़ करने में लीन रहने वाले हृदयहीन से विवाह करेगा ही कौन ?"

"बहुत ठीक है। मुझसे विवाह करने की गलती यदि कोई करेगा तो या तो उसे ही भाग जाना होगा या मैं ही भाग जाऊँगा। लो, तुम्हारा अशोक आया। इसे तुम सभालती हो या इसके दादाजी ? अभी वे इसे दूध पिला रहे थे।"

"उन्हें इसके बिना चैन नहीं पड़ता। आज शाम को व्याख्यान सुनने जाने लगी तो बोले इसे छोड़ती जाओ।"

"किसका व्याख्यान ?" शिरीष ने पूछा।

"अरे मुझे भी नहीं मालूम था। लीलावती के यहां गई तो उसने कहा कि कोई कान्ता गोरी आई है उन्हीं का व्याख्यान है। घर कहलाने का समय नहीं था उधर ही से चली गई। इसी में इतनी देर हुई।"

"अच्छा ! इसी देर के कारण तुम दोनों में झगड़ा हुआ है" डाक्टर ने कहा। "हमारे शिरीष भाई तुम्हारे संसर्ग में आकर इतने भावुक हो गये हैं।"

"जरा-सी देर हो गई तो इतने रुष्ट हो गये। व्याख्यान बहुत सुन्दर था और साथ में भजन तो बहुत अच्छा गाती थी।"

'क्या ? भजन अच्छा गाती थी।" शिरीष ने पूछा।

"यह लो। यह तो संगीत के उपासक ही हैं। किसी के अच्छे गाने का समाचार मिला कि अब सुनना चाहिये। कालेज की

बातें याद हैं। ये और कनक जहाँ कहीं भी गाने का समाचार पाया दौड़ पड़ते थे।"

"तुम पूरे मूर्ख हो।" शिरीष बोला।

"हाँ भाई, मैं मूर्ख तो हूँ ही। अच्छा अब मैं चला। जहाँ राग और रमा हो वहाँ अपने राम नहीं ठहरते और इस समय यहाँ दोनों ही इकट्ठे हो गये हैं।"

डाक्टर उठकर खड़ा हो गया।

"बैठो अभी क्या जल्दी है?"

"भोजन का समय हो गया है। आज यहीं भोजन करके जाना।" सोहिणी ने कहा।

"तुम्हारे यहाँ जब आता हूँ तभी देर हो जाती है। पर मैं भोजन का निमंत्रण तो अस्वीकार करता नहीं।" डाक्टर बैठता हुआ बोला।

सोहिणी ने उठते-उठते कहा—

"मैं कान्तागौरी को एक दिन अपने यहाँ भी बुलाऊँगी।"

"जरूर, जरूर" शिरीष ने कहा।

यह सुनते ही डाक्टर चौंक पड़ा। पर तुरन्त ही संभल गया। किसी ने देखा नहीं।

"सुकुमार भाई, तुम्हें भी आना पड़ेगा। कान्तागौरी परिचय करने योग्य नारी है।" जाते जाते सोहिणी ने कहा।

"अरे दुनियाँ भर से कहाँ तक परिचय करता फिरूँ, फिर भी कोई केस नहीं रहा तो आ जाऊँगा।"

"केस वेस कुछ नहीं, तुम्हें आना पड़ेगा।" यह कहकर सोहिणी भोजन का प्रबन्ध करने चली गई। उसके जाने पर शिरीष ने सुकुमार से पूछा—

"सुकुमार, तुम इस कान्ता को पहचानते हो। शायद कभी तुमने उसका जिक्र भी छेड़ा था।"

"मुझे याद नहीं, कहा होगा।" डाक्टर उठकर खड़ा हो गया, शिरीष भी उठा। दोनों भोजनगृह की ओर चले।

—४—

भोजनगृह में धर्मपाल की राह देखी जा रही थी। शिरीष और सुकुमार बातें करते खड़े थे। थोड़ी देर में पीताम्बर धारण किये खड़ाऊँ पहने धर्मपाल भी पधारे। उनका उन्नत ललाट, गौरवर्ण, उस पर सुन्दर रामनामी तिलक, बाहु तथा वक्षस्थल पर चरण की छाप, उनके एकनिष्ठावान वैष्णव होने का परिचय दे रहे थे। वैष्णव होने पर भी धर्मपाल अपना प्रभाव सभी पर डाल सकते थे। आधुनिक युग के छापा तिलक की हंसी उड़ाने वाले नवयुवक भी धर्मपाल का सम्मान करते थे। नगर के एक प्रख्यात धनी होने के अलावा एक भले नागरिक के नाते भी लोग उनकी प्रतिष्ठा करते थे।

'विष्णवे नमः विष्णवे नमः' कहते हुए वे अपने पीढ़े पर बैठ गये। उनके पीछे-पीछे तीन पण्डित तथा तीन अन्य ब्राह्मण और भी आये।

धर्मपाल के यहाँ इस प्रकार के ब्राह्मणों का जमघट सदा ही लगा रहता था। दोनों समय ब्राह्मण उनके यहाँ भोजन करते थे।

धर्मपाल और उनके पण्डित एक ओर बैठे तथा शिरीष और डाक्टर दूसरी ओर क्योंकि दोनों विलायत की सैर कर अपना धर्म नष्टकर चुके थे। विलायत जाने के पहिले भी शिरीष उनके दल में नहीं बैठता था और अब तो उन्हें ही आपत्ति थी, पर तो भी उसे अपने इतने निकट बैठाने में उनकी उदारता कारण रूप थी।

अशोक सोहिणी की गोद से उतरने की चेष्टा करने लगा। वह नित्य अपने दादा के पास बैठकर भोजन करता था। इस समय वह सूती वस्त्र पहने था इससे सोहिणी ने उसे पकड़ रखा और नौकर से रेशमी वस्त्र

लाने को कहा । पर अशोक को इस समय रेशमी और सूती के विवेचन की फुर्सत नहीं थी और न उसके लिये इस अनर्गल बात का कोई महत्व ही था । वह रोने लगा । धर्मपाल ने तुरन्त उसे उठा लिया और बोले—

"रहने दो लड़के को, क्या रेशमी क्या सूती । आओ बेटा ।"

अशोक तुरन्त अपने दादा की गोद में चढ़ गया और इस निरर्थक बात के लिये उसने अपना अधिकार नष्ट करने वाली माता की ओर देखा भी नहीं ।

डाक्टर को देख कर धर्मपाल बोले, "ओहो ! डाक्टर साहब आप भी आ गये । मैं तो रोज ही शिरीष से कहता हूँ कि आपको भोजन के लिये यहीं लिवा लाया करें अलग बनाने की क्या आवश्यकता है ।" बात करने में धर्मपाल का ध्यान उधर हुआ ही था कि अशोक ने लोटे का पानी लुढ़का दिया ।

"जी अलग बनाने की बात नहीं पर हमारा काम बड़ा अनिश्चित रहता है, देर सबेर हो ही जाती है । कोई केस अधूरा छोड़ कर आना भी तो नहीं हो सकता ।"

"तो यहीं कौन सा नियम पालन होता है भाई । यहां भी तो देर सबेर होती है ।" भोजन आरम्भ करते हुए धर्मपाल बोले ।

"यहाँ रसोई में नियम पालन नहीं हो सकता । यह तो टेबुल कुर्सी पर खाने वालों के लिये होता है । क्यों शास्त्री जी ।" एक ब्राह्मण बोले ।

"ठीक है महराज, हमारे शास्त्रों में काल और समय है तो अवश्य, पर वहाँ वस्तु की प्राप्ति पर अधिक जोर दिया गया है यहाँ समय का क्या हिसाब ?"

"हाँ हाँ, हमारे ऋषि मुनि हजारों वर्ष तप करते रह गये । अंग्रेजों के समान उन्होंने समय की परवाह की होती तो इतना ज्ञान कहाँ से प्राप्त करते ?"

शिरीष को यह व्यर्थ की बकवाद बुरी लग रही थी। बिना समझे ही व्यर्थ का उदाहरण देकर अपना पक्ष सिद्ध करने वालों से उसे बड़ी घृणा थी। वह कहना चाहता था कि हजारों वर्ष तपस्या करने वाले ऋषि मुनियों की सन्तान आज व्यवस्थित अंग्रेजों की गुलाम है। पर वह चुप ही रहा कुछ बोला नहीं। पर डाक्टर को इन बातों में बड़ा मजा आ रहा था। बात बढ़ाने की इच्छा से उसने कहा,—"आपका कहना बिल्कुल ठीक है। अंग्रेज इतने कंजूस हैं कि समय भी नाप-नाप कर देते हैं। भला अपने देश में ऐसा किस प्रकार हो सकता है!"

ब्राह्मण मण्डली चकित होकर ताकने लगी। उन्हें स्वप्न में भी यह आशा नहीं थी कि यह विलायती डाक्टर उनके पक्ष का समर्थन करेगा।

धर्मपाल भी यह बातें निरर्थक समझ रहे थे। उन्होंने दूसरा विषय छेड़ने की इच्छा से कहा।

"ये अपने डाक्टर साहब हैं शास्त्री जी। आपने तो नहीं देखा होगा।"

"मुझे याद नहीं है। शायद अपने औषधालय वाले हैं।"

"हाँ हाँ," धर्मपाल बोले, "बड़े योग्य हैं, विलायत भी हो आये हैं। रोगियों की अच्छी सेवा करते हैं। जबसे दवाखाना अपने हाथ में लिया है लोग इन्हें छोड़ते नहीं।"

थोड़ी देर में भोजन समाप्त हुआ। धर्मपाल और ब्राह्मण दीवान-खाने में गये तथा शिरीष, सुकुमार को लेकर अपने कमरे में आया।

"सुकुमार, मुझे कुछ अच्छा नहीं लग रहा है।" शिरीष बोला।

"यह कैसी बात, भाई। तबियत तो ठीक है न?"

"हाँ, तबीयत ठीक है पर न जाने क्यों जी घबराता है।"

"भाभी के साथ बैठे लड़ाई करते हो, किसी काम काज में क्यों नहीं लग जाते। बहुत दिनों से मैं देख रहा हूँ कि किसी काम काज में तुम्हें लगना चाहिए क्योंकि बैठे-बैठे तुम अवश्य बिगड़ जाओगे।"

"नौकरी करूँ?" व्यंग भरे शब्दों में शिरीष ने पूछा।

इतने में सोहिणी भीतर आकर बोली—

"किसकी नौकरी करनी है।"

"अभी तो तुम्हारी ही चाकरी में हूँ, आज्ञा हो तो दूसरी नौकरी करूँ।" यह सुनते ही सोहिणी की भौंहे तन गई। डाक्टर को यह देखकर बड़ा दुःख हुआ। ऐसे प्रेमी युगल में भी कलह उत्पन्न हो सकता है यह सोचकर वह और भी दुखी हुआ। वातावरण को और भी गम्भीर होने से बचाने के लिए उसने कहा—

"नौकरी तो हमारे जैसे मुफलिसों को करना पड़ता है। पर शिरीष को कुछ काम करने की आवश्यकता है। और कुछ नहीं तो कुछ दिनों के लिए बाहर घूम ही आना चाहिए। दिन रात घर बैठने ही से तो तबीयत घबराती है।"

"मुझे भी ऐसा लगता है कि कहीं बाहर जाना चाहिये। मैं भी इनके साथ जाऊँगी।"

चौबीस घंटे साथ रहने वाले प्रेमी यह भूल जाते हैं कि प्रेम मार्ग बड़ा विचित्र है। वियोग की उसमें विशेष आवश्यकता है, अत्यन्त निकट का मार्ग एकरंगी होता है तथा उसमें विविधता की जरूरत होती है। जहाँ इस विविधता का अभाव होता है वहाँ प्रेम अत्यन्त सामान्य कोटि में आकर स्थगित हो जाता है।

"तुम भी साथ चलोगे डाक्टर?" शिरीष ने पूछा।

"अरे पहले तुम तो निकलो! अच्छा अब मैं तुम्हें छोड़ता हूँ तुम अपना प्रोग्राम बनाओ।" कहकर डाक्टर बाहर चला गया! बाग से होकर बाहर निकलते हुए उसने द्वार पर किसी को धीरे-धीरे बातें करते सुना।

"कहो लालाजी क्या हाल है?"

"ओहो कनक भाई? बहुत दिन के बाद आये।" भोजन के बाद आवाज कुछ गम्भीर हो जाती है इसका आभास देते हुए लाला जी ने पूछा।

"धीरे-धीरे बोलो" आगन्तुक ने कहा, "भाई है ?"

"हाँ है" धीरे बोलने का प्रयत्न करते हुए लालाजी बोले; "पर घब-राये क्यों हो!"

"और भी कोई साथ है क्या ?" आगन्तुक ने पुनः पूछा।

"हाँ वह विलायती डाक्टर भी है। पर यार तुम्हारे जाने के बाद जी लगता नहीं। डाक्टर की दोस्ती में राग रंग क्या होगा ?" वह तो कुछ दिनों में भाई को भी गँवार बना देगा।" मानो लाला जी के मत से अँग्रेजी पढ़े मनुष्य गँवार होते हैं।

"अच्छा, तो कल मिलूँगा।" कहकर आगन्तुक चला गया। लाला जी भी अपनी कोठरी में आये।

डाक्टर सुकुमार ने छिपकर ये बातें सुनीं। उनके मन में प्रश्न हुआ—"कनक क्यों आया ?"

—५—

संसार में अन्य वस्तुओं के वर्गीकरण के अनुसार मित्रों का भी वर्गीकरण हो सकता है। कुछ मित्र पांच मिनट काम आते हैं, कुछ पांच घण्टे तक रहते हैं। कितनों के साथ केवल रेल यात्रा की जा सकती है तथा कितनों के साथ मजलिस जमा कर गुलछर्रे उड़ाये जाते हैं। शिरीष के अनेक मित्र थे और वे भिन्न-भिन्न वर्गों में विभाजित किये जा सकते थे। डाक्टर सुकुमार उसका अन्तरंग मित्र था तथा कनकप्रसाद भी खास मित्र था। कनक को संगीत समझने की विशेष योग्यता थी तथा इसी कारण वह शिरीष के संसर्ग में आ सका था। डाक्टर संगीत का शत्रु था। वह विशाल शरीर वाला खेल तथा कसरत का शौकीन था। शिरीष भी व्यायाम का इच्छुक था इससे डाक्टर सुकुमार से उसकी पटरी बैठ जाती थी। पर सुकुमार और कनक में कभी नहीं पटती थी। शिरीष

के मित्र के नाते कभी-कभी दोनों एक दूसरे के संसर्ग में आ जाते पर बिना झगड़ा किये कभी अलग नहीं होते थे। मलमल या रेशम के सिवा कनक दूसरा वस्त्र ही नहीं पहनता था। घर में भी महीन से महीन सूत की लम्बी धोती पहने घूमता था। टेढ़ी टोपी, बनाई हुई मांग तथा पेटेन्ट लेदर का चमकदार जूता यह उसकी साधारण पोशाक थी। कभी-कभी कोट पैन्ट भी पहन लेता था। उसे देख कर सुकुमार तिरस्कार की हँसी हँसता और जैसे भी होता वह संगीत और वस्त्राभूषण की बात छेड़ कर टीका करने लगता। कनक कहता "कला के बिना संस्कार नहीं होता।" सुकुमार कहता "इसी कला की पूजा ने तो हिन्दुस्तान का सत्यानाश कर दिया है।"

"जरा अपनी शकल तो देखो।" एक दिन कनक ने कहा।

"तुम अपने को बड़ा सुन्दर समझते हो पर एक भी लड़की तुम्हारी ओर न ताकती है और न ताकेगी। कपड़े लत्ते में लैस होकर तुम कितने दिनों से चेष्टा कर रहे हो।" सुकुमार ने उत्तर दिया।

"तुम्हारे जैसे मूर्ख को क्या पता कि सुन्दर कपड़ा कौन सा है?"

"एक नूर आदमी सौ नूर कपड़ा" कभी यह कहावत सुनी है?" सुकुमार हँसे।— "इस कहावत का तुम अर्थ भी जानते हो या योंही। आदमी का एक नूर कपड़े के हजार नूर के बराबर है, समझा? पहले आदमी पीछे कपड़ा।"

"कहावत का यह अर्थ होता तो कोई कपड़ा पहनता ही नहीं।"

"सुन्दर और स्वस्थ शरीर वाले को कपड़े की आवश्यकता ही नहीं है। जिसका शरीर लज्जा उत्पन्न करने वाला होता है वही उसे कपड़े से ढँकता है और फिर हिन्दुस्तान में तो कम ही कपड़े की आवश्यकता है।"

"फिर ढाका के मलमल और बनारसी किमख्वाब बनाने की क्या आवश्यकता थी?"

"यह सब तो तुम जैसों को बेवकूफ बनाने के लिये है। जब से ढाका का मलमल निकला तभी से तुम्हारा शरीर भी मलमली हो गया है। किसी का एक धक्का खाने की शक्ति है तुममें?"

"तुम्हें प्रकृति ने बलिष्ट बना दिया है इसीसे अभिमान हो गया है।"

"इसमें रुष्ट होने की बात नहीं है, कनक?" कनक को और भी चिढ़ाने की इच्छा से सुकुमार बोला,—"तुम्हारा नाम कनक रखने में तुम्हारी मां ने बहुत विचार किया होगा। आखिर कनक किसके आश्रय में रहेगा! कान्ता ही के तो?"

कनक का चेहरा लाल हो गया। घर में शतरंज के मोहरे पड़े थे। उनमें से तीन चार मोहरे उठाकर उसने जोर से सुकुमार को मारा। सुकुमार के सर में चोट लग गई। शिरीष पास ही बैठा पढ़ रहा था। उसे इन व्यर्थ की बातों में कोई दिलचस्पी नहीं थी। पर सुकुमार को चोट लगते देखकर बोला—

"सुकुमार! क्यों व्यर्थ ही कनक को चिढ़ा रहे हो?"

"नहीं भाई, मैं चिढ़ाता नहीं हूँ, कनक के हाव-भाव और नाच देख रहा हूँ।"

"नाच को तो तू जानता ही नहीं। तुझे क्या पता कि यह कितनी उच्च कला है?" कहकर कनक ने पुनः विवाद आरम्भ किया।

"इस कला के विषय में मैं एक बात अवश्य जानता हूँ—जितनी ही यह कला ऊँची जाती है उतने ही इसके सेवक नीचे गिरते जाते हैं। इस कला ने बादशाहों और नवाबों को जाते जाते नचाया और उन्हें राजपाट तक से हाथ धोना पड़ा। वाह! क्या ऊँची कला है?"

"इसका मुख्य आचार्य कौन है तुझे यह भी मालूम है?"

शिरीष ने कनक का पक्ष लेकर कहा "शंकरजी! और उनके ताण्डव नृत्य का तुम्हें क्या ज्ञान है?"

"ओ हो सुकुमार बोला। हाँ वह नाच तो हमें बड़ा अच्छा लगता है। डाक डमरू बजते हैं शंख बजता है नागों के झुण्ड नाचते हैं। भूत पिशाच और भैरव गाते हैं तथा महादेवजी त्रिशूल हाथ में लेकर छलांग मारते हैं। ऐसे नृत्य में भाग लेना हो तो मैं सबसे पहले अपना नाम दूँगा। महादेवजी के समान दूसरा देवता नहीं है। अंगारे सी लाल आँख, विष भरा कण्ठ, राख भरा शरीर, वाह महादेवजी वाह। छाती पर खोपड़ी की माला; हाथ में खप्पर और उस पर भयंकर सर्पों की जटा। पर भाई यह सब तो कनक के काम का नहीं। उस दिन उसेकमरे मे गोजर निकालना था तो मेरी सहायता की आवश्यकता पड़ी। यह सर्पों के साथ क्या रमण करेगा। इनके लिये तो केवल लास्य की आवश्यकता है।"

"शिरीष!" चिढ़कर कनक बोला। "मैं आज से तुम्हारे घर आना बन्द करता हूँ। जहाँ सुकुमार है वहाँ कनक नहीं। और सुकुमार तुम भी याद रक्खो कि तुम्हें मेरे पैर न पड़ना पड़े तो मेरा नाम कनक नहीं।" इतना कहकर कनक शिरीष के रोकने पर भी चला गया।

इस घटना के बहुत दिन बाद कनक सीधा हुआ था। पर सुकुमार के प्रति उसके हृदय में जो क्रोध था वह बना ही रहा। कालेज में कनक बालिकाओं के साथ ही पढ़ता था। सोहिणी से उसका परिचय था, पर जब से वह शिरीष की ओर आकर्षित हुई तभी से वह शिरीष से भी कुछ चिढ़ने लगा। कनक स्वयं विवाहित था इसलिये उसे शिरीष से ईर्ष्या करने का कारण नहीं था। पर बहुत से कंजूस दूसरों को धन बटोरते नहीं देख सकते। स्त्री वर्ग से मैत्री करने वाले पुरुष इसी श्रेणी में आते हैं। उनके सिवा किसी दूसरे के साथ कोई स्त्री मित्रता रक्खे तो उन्हें असह्य हो जाता है। वह समझते हैं कि उनका अधिकार खो रहा है तथा शनैः शनैः वे उसके शत्रु बन जाते हैं।

संगीत वाले जलसे के बाद से शिरीष सोहिणी के विचारकेन्द्र का मध्य बिन्दु हो गया था। उसे शिरीष से मिलने की तीव्र इच्छा हो गई

थी। उसके साथ परिचय प्राप्त करने के लिये वह व्याकुल हो गई, पर किससे कहे ! शिरीष तो स्वयं एक बेपरवाह मस्त युवक था। वह तथा सुकुमार दोनों साथ ही घूमते थे। किस प्रकार वह शिरीष को बुलाये समझ में नहीं आता था।

उसने अपने मित्र कनक को प्रायः शिरीष के साथ घूमते देखा था। इसलिए वह जानती थी कनक और शिरीष में परिचय होगा। कार्य-सिद्धि के लिये संसार में उपाय की कमी नहीं है। सोहिणी ने कालेज की सखियों को घर पर एटहोम का निमंत्रण दिया और तीन चार छात्रों को भी बुलाने के लिए कनक से राय ली।

"कनक भाई ! किसको किसको बुलाना चाहिये ?"

"इसमें पूछना क्या है। मैं तो रहूँगा ही, फिर ठाकोर है, अमीन है, पण्ड्या है इन्हें बुला लो और दरमवाला को भी चाहो तो बुला लो पारसी है पर मौजी आदमी है।"

"इन सब को तो पीछे बुलाऊँगी, पर वह जो उस दिन गाता था उसका क्या नाम है !" सोहिणी यद्यपि शिरीष का नाम जानती थी पर उसने अज्ञान बन कर पूछा।

"शिरीष ! शिरीष ?" कनक ने कहा "वह तो हमारा खास मित्र है पर कुछ अजीब है कहीं जाता-आता नहीं। खैर, मेरे कहने से तुम्हारे यहाँ आ जायेगा। कहो तो उसे और सुकुमार दोनों को बुलाऊँ ?"

"उसका गाना सुनना है। सच पूछो तो उसी का गाना सुनने को सबकी इच्छा है और इसीलिये यह आयोजन है।"

"कोई हर्ज नहीं है। मैं कहूँगा तो जरूर गायेगा। कहो तो अभी बुलाऊँ।"

"अभी नहीं, पर लो यह निमंत्रण पत्र तुम बाँट देना।"

"अच्छी बात है लाओ।"

यह निमंत्रण पत्र कनक ने शिरीष को दिया। शिरीष ने सोहिणी के यहाँ जाकर गाया भी। एक बार नहीं तीन-तीन बार गाया।

सुकुमार भी वहीं था। शिरीष कोई पेशेवर गानेवाला तो था नहीं उसने सुकुमार से शर्त लगाई थी की सभी गायेंगे अतएव सभी ने कुछ कुछ गाया। शिरीष के गाने सोहिणी ने लिखना चाहा। पर उसने स्वयं लिखकर देना स्वीकार कर लिया।

स्त्रियों के संसर्ग में शिरीष बहुत कम रहता था। कालेज में अत्यन्त चपल छात्र होने पर भी वह छात्राओं से दूर ही रहता। अपने मित्र कनक के आग्रह से वह आज इस मण्डली में गया था। पर वहाँ से छुटकारा पाते ही उसे सोहिणी ने पकड़ा।

"अपनी गाई हुई चीजें मुझे लिख दीजियेगा।"

"हाँ हाँ, अवश्य ही लिख दूँगा।"

"कब।"

"समय मिलने पर लिख कर कनक से भेज दूँगा।" कहकर शिरीष ने वहाँ से छुटकारा पाया।

परन्तु सोहिणी को इस बात के बीच में कनक को लाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। उसने शिरीष को स्वयं ही पत्र लिखना आरम्भ कर दिया कनक को पता लगा तो उसे बड़ा क्रोध आया। किसी बात में अपना महत्व कम देखने पर मनुष्य का क्रोधित होना स्वाभाविक है। एक दिन वह सोहिणी से मिलने उसके घर गया तो उसने कहला दिया कि उसे फुर्सत नहीं है। पता लगाने पर कनक को ज्ञात हुआ कि शिरीष नाम का कोई विद्यार्थी आया है। कनक की ईर्ष्या तीव्र हो उठी। बदला लेने की प्रवृत्ति जाग्रत हुई। "मेरे ही द्वारा दोनों का परिचय हुआ और अब मेरा ही महत्व दोनों कम कर रहे हैं!"

"अच्छी बात है वह देख लेगा।" दोनों उसे कृतघ्न जान पड़े।

एक दिन सोहिणी को अकेली पाकर उसने बात चलाई।

"तुम्हें बुरा न लगे तो एक बात कहूँ ।"

"हां हां, अवश्य कहो ।" सोहिणी ने लापरवाही में उत्तर दिया ।

"शिरीष के साथ अधिक परिचय रखना ठीक नहीं है ।"

सोहिणी को इस सलाह की आवश्यकता नहीं थी । उसने मुँह फेर कर कहा "किसके साथ परिचय रखना चाहिये और किसके साथ नहीं रखना चाहिये, यह मैं खूब समझती हूँ । मुझे किसी के सलाह की आवश्यकता नहीं है ।"

"उससे तुम्हारा परिचय मैंने ही कराया है इसे जानती हो न ?"

"तो इससे क्या ?" शायद कनक यह चाहता था कि शिरीष से सोहिणी का परिचय कराने के लिए वह उसकी दासता स्वीकार कर ले ।

"और कोई बात नहीं पर इसके कारण तुम्हें भविष्य में पछताना न पड़े मुझे यही चिन्ता है ।" कहकर कनक चला गया ।

उस दिन के बाद से कालेज में शिरीष तथा सोहिणी के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की गप्पें उड़ने लगी । कनक ने एक दिन शिरीष से कहा—

"तुम्हें कुछ खबर है कालेज में तुम्हारे विषय में क्या बातें फैल रही हैं ।"

"मैं इन बातों की चिन्ता किया करूँ तो फिर दुनियाँ में मेरा रहना ही कठिन हो जाय ।" शिरीष ने स्वाभाविक लापरवाही से उत्तर दिया ।

"और तो सब ठीक है पर जो तुम इस सोहिणी के साथ बहुत रहते हो इससे तुम्हारी बड़ी निन्दा हो रही है । यह छोकरी कैसी है जानते हो ? भले आदमियों को उसके साथ नहीं रहना चाहिये ।"

"तो मैं भला आदमी कब से हुआ भाई । पर तुम कहाँ की पंचायत में पड़े हो ! दुनिया क्या जाने क्या कहा करती है ।"

यह सुन कर कनक को बड़ा क्रोध आया । वह चिढ़कर बोला । "देखो, यदि तुम इस सोहिणी के साथ मित्रता रखोगे तो मैं तुमसे बोलना बन्द कर दूँगा ।"

शिरीष यह सुनकर हँसा। सुकुमार भी पास ही खड़ा था, वह बोल उठा—"क्यों शिरीष! कनक की लूट में तुम भी हिस्सा बँटाना चाहते हो?"

कनक अब और भी चिढ़ गया। बोला—"तुम दोनों बदमाश हो; याद रखना इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।" इतना कहकर वह चला गया।

इन बातों के बाद शिरीष और सोहिणी का सम्बन्ध सभी को ज्ञात हो गया। सुकुमार और शिरीष इङ्गलैण्ड गये। वहाँ से लौटने पर सोहिणी और शिरीष का ब्याह हुआ उसमें कनक ने भी योग दिया। शायद कालेज की बातें भूल गया हो। सुकुमार ने इङ्गलैण्ड जाकर सर्जरी पढ़ना आरम्भ किया। उसकी इच्छा एक प्रसिद्ध डाक्टर होने की थी। पर वह गरीब था इससे सबने यह समझा कि उसका व्यय भी शिरीष ही वहन करता है। लौटने पर वह जब धर्मपाल के दवाखाने का डाक्टर नियुक्त हुआ तो लोगों की धारणा पुष्ट हो गई कि सुकुमार की शिक्षा शिरीष के धन से हुई है।

—६—

एक ही कक्षा में कई वर्ष तक फेल होने का तात्पर्य शायद यह है कि बहुत से लड़कों को कालेज से कुछ प्रेम हो जाता है। वे कालेज छोड़ना नहीं चाहते और कालेज भी उन्हें नहीं छोड़ना चाहता। कनक प्रसाद कई वर्ष से कालेज में पढ़ रहा था पर अन्त में बिना बी० ए० पास किये ही उसे कालेज छोड़ना पड़ा। जब शिरीष और सुकुमार ग्रेजुएट होकर इंगलैण्ड गये तो उसे बड़ा कष्ट हुआ। उसने अपने माता पिता को कोसा, अपनी पत्नी को कोसा और हिन्दू समाज को कोसा जिसने उसका विवाह छोटी अवस्था में करा दिया था। पर उसकी विलायत जाने की इच्छा पूरी नहीं हुई।

सुकुमार और कनक में कभी नहीं पटती थी। शिरीष ने सोहिणी को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था और अब दोनों विलायत जा रहे थे

इससे कनक की ईर्ष्या और भी प्रबल हो गई। वह सुकुमार और शरीफ दोनों को अपना शत्रु समझने लगा। प्रकट में तो वह दोनों से मित्रता का भाव बनाये रहता पर भीतर ही भीतर दोनों से प्रतिशोध की इच्छा भी पोषित करता था।

वह अपना कार्य-क्रम सोचने लगा। ग्रेजुएट तो था नहीं इससे कहीं सरकारी नौकरी पाने की आशा नहीं। "ग्रेजुयेट तो गुलाम होते हैं। उन्हें या तो मास्टरी मिलती है या क्लर्की इसके सिवा वे और क्या कर सकते हैं।" इस प्रकार अंगूर खट्टे हैं के अनुसार उसने हृदय को समझा कर सन्तोष किया और नौकरी पर मानो लात मारी। रही वकालत, पर उसके लिये या तो हाईकोर्ट की परीक्षा पास करे या फिर एल० ए० बी० पास करे। कौन इतना झंझट खड़ा करे जी। पास होने पर भी बड़ा कष्ट होता है। यह विचार कर उसने वकालत की भी आशा छोड़ी। अब रहा व्यापार। यह अवश्य अच्छी चीज है। "व्यापारे वसत् लक्ष्मी" इस शब्द की मोहिनी कुछ अजीब है। लम्बी सुन्दर धोती, बढ़िया कोट, कलप-दार दुपट्टा और पेटेन्ट लेदर के जूते से सुशोभित व्यापारी की सुन्दर कल्पना ने कनक का मन मोहित कर लिया।

व्यापार की मोहिनी जिसे लगी उसे स्वर्ग दिखाई देने लगता है। उसकी कल्पना की सीमा नहीं होती। कोई कवि कल्पना करते समय संभव और असम्भव का विचार करता है, पर व्यापारी को इस विचार की आवश्यकता नहीं है। व्यापार में सब कुछ सम्भव है। कनक की कल्पना यहीं समाप्त नहीं हुई। वह एक सुन्दर बँगला, सुन्दर जोड़ी और मोटर की सवारी का स्वप्न भी देखने लगा।

उसने तुरन्त निश्चय किया कि उसके लिये दुनिया में सबसे अच्छा काम व्यापार है। दियासलाई बेचने तथा फेरी लगाने वाले से लेकर रॉक-फेलर, कार्नेगी तथा हेनरी फोर्ड तक सभी व्यापारी कहे जाते हैं। पान बेचनेवाले तथा चाय की दूकान वाले से भी पूछा जाय कि भाई क्या करते

हो तो वह भी सीने पर हाथ रखकर अभिमानपूर्वक कहेगा कि वह व्यापार करता है ।

पर इस प्रकार के व्यापार में पड़ने की इच्छा कनक को नहीं थी। व्यापार के लिये आवश्यक शिक्षा तथा परिश्रम की ओर लोगों का ध्यान बहुत कम रहता है।

सभी की इच्छा ऐसा व्यापार करने की होती है जिसमें मेहनत न हो तथा जल्दी और काफी धन प्राप्त हो। कनक भी ऐसा व्यापार करना चाहता था तथा ईश्वर की कृपा से उसे ऐसा व्यापार मिल भी गया।

कनक के पिता उसके अध्ययन काल में ही लगभग बीस हजार रुपया छोड़ कर मर गये थे। पढ़ना और व्यापार दोनों साथ-साथ नहीं हो सकता इस कारण उसने पढ़ना छोड़ दिया और बम्बई में व्यापार करने की इच्छा से आया। वहाँ उसकी किस्मत चमक उठी।

एक दिन वह चुपचाप अपने ध्यान में कुछ विचार करता चला जा रहा था कि उसने अपना परिचित कण्ठ स्वर सुना।

"क्यों राजा कहाँ जा रहे हो?" सामने एक परिचित विद्यार्थी खड़ा पूछ रहा था।

"कौन बृजमोहन? बहुत दिन बाद मिले भाई। अच्छे तो हो" कनक ने पूछा।

"मैं तो सदैव मजे में रहता हूँ। बस आनन्द ही आनन्द है। गुमाश्तगी कुछ जमी नहीं तो उसे छोड़ कर साझे में व्यापार किया, पर साझे में भला क्या मिलता है इससे उसे भी छोड़ दिया और अब स्वतंत्र व्यापार करता हूँ। समझा?"

यद्यपि इन बातों में समझने योग्य कुछ भी नहीं था तथापि कनक की समझ में सब कुछ आ गया। वह केवल यही नहीं समझ सका कि यह व्यापारी मूर्ख है या चतुर।

जिस प्रकार व्यापार में बृजमोहन की तरक्की होती गई उसी प्रकार

उसकी जिह्वा भी तीक्ष्ण हो गई। एक ही सांस में अपनी महानता और उदारता का परिचय देते हुये उसने पुनः कहा।

"अच्छा बोलो, इस समय क्या पीना चाहते हो? सेवक की मोटर आजकल बनने को गई है नहीं तो तुमसे भेंट भी नहीं होती।"

"इस समय तो कुछ पीने की इच्छा नहीं है।" कनक ने उत्तर दिया।

"जरा बम्बई घूमो तो सही" पुनः अपनी सादगी, प्रतिष्ठा और अमीरी का प्रदर्शन करते हुये बृजमोहन बोला "मैं तो जहां कहीं जो कुछ भी होता है खा पी लेता हूँ। मैनेजर की हिम्मत नहीं होती कि दाम माँगे।"

बृजमोहन सेठ को अपने बड़प्पन का बड़ा अभिमान था। अन्य व्यापारियों से अपने को श्रेष्ठ दिखाने की बड़ी लालसा थी। अपने थोड़े परिश्रम से अधिक लाभ उठाने की सफलता को वह विश्वविदित करना चाहता था तथा जो काम उसने किया है वह तीन काल में भी दूसरे से नहीं हो सकता इस बात का अभिमान प्रतिक्षण उसके नेत्रों और मुख-मुद्रा से प्रकट होता रहता था।

कनक ने तुरन्त ही इस व्यापारी का व्यक्तित्व समझ लिया। यह देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई कि बृजमोहन द्वारा उसका भी काम चल सकता है। कुछ सोच कर एक पारसी होटल में नाश्ता करते हुये कनक बोला।

"मैं भी यहाँ व्यापार की इच्छा से ही आया हूँ।"

"व्यापार करना है तो हम बतावें।" अत्यन्त गम्भीरता से बृजमोहन सेठ ने कहा। व्यापार के अनेक कायदे, जावा की चीनी, मैनचेस्टर के कपड़े, चाँदी सोने के सट्टे, जापान का रेशम, रंगून का चावल, आस्ट्रेलिया का गेहूँ, मिल के शेयर, सरसों, अलसी के सट्टे इत्यादि अनेक बातों पर अपना व्यापार ज्ञान उसने कनक के सामने कह डाला तथा बीच बीचमें चारों ओर लोगों पर क्या प्रभाव हो रहा है यह भी देखता जाता था। उस दिन उसने कनक को सट्टे का बाजार, तथा जवेरी बाजार इत्यादि

मुख्य स्थानों में घुमाया, कनक को विश्वास हो गया कि बृजमोहन केवल लबाड़िया नहीं है क्योंकि वह जहाँ जाता था वहाँ सब उसका सम्मान करते थे यद्यपि वास्तव में पीठ पीछे सभी उसकी निन्दा भी करते थे। कनक ने उसके साथ व्यापार करना निश्चय किया और अपना अभिप्राय कहा। अपने बड़प्पन प्रदर्शन का एक भी अवसर न चूकने वाले बृजमोहन ने कहा।

"देखो भाई व्यापार ऐसे नहीं होता। पहले रुपया पीछे व्यापार, मेरी बात अलग है। मेरे पास तो एक पैसा भी नहीं था, पर सब में तो यह योग्यता नहीं है कि बिना पैसे का व्यापार कर लें?"

यद्यपि अभी तक बृजमोहन के व्यवहार से कनक को ऐसी आशा नहीं थी तो भी उसने बृजमोहन का साथ करना तय किया। इतना तो वह अवश्य समझ गया था कि बृजमोहन में भी व्यापारियों वाली बेमुरौवती है पर साथ ही वह यह भी समझ गया था कि उसके साथ रहने पर लाभ की आशा है। बृजमोहन की व्यापारिक वीरता का इतिहास सुन कर उसने यह निष्कर्ष निकाला कि सट्टे का रोजगार सबसे बढ़िया है।

सट्टे में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं है। जहाँ हो सके वहीं खड़े खड़े यह व्यापार हो सकता है। जिस वस्तु पर दृष्टि पड़ जाय उसी पर यह व्यापार हो सकता है। यह इतना व्यापक है कि अमुक गाड़ी के कोचवान का नाम अब्दुल है या रहीम, अमुक मकान में गुजराती रहता है या मुसलमान, बम्बई मेल आठ बजे आती है या सवा आठ बजे इत्यादि अनर्गल और व्यर्थ की बातों पर भी यह व्यापार हो सकता है। यह व्यापार कनक के शौकीन स्वभाव के अनुकूल था। यद्यपि हारने पर रुपयों की आवश्यकता पड़ती है पर चालाकी से काम करने पर थोड़े रुपयों से भी यह व्यापार हो सकता है। यदि कभी ऐसा प्रसंग आ भी जाय तो दिवाला मारना तो है ही। थोड़ा बहुत देना होगा तो उसके लिये कनक के पिता ने बीस हजार रुपया छोड़ा ही था।

इस प्रकार सोच विचार कर कनक बृजमोहन के साथ सट्टे के व्यापार में लगा।

बृजमोहन सेठ अपने को व्यापारी मण्डल का नेपोलियन समझता था तथा अपने संसर्ग में आने वाले सभी पर यही प्रभाव भी डालने की चेष्टा करता था। साथ-साथ इतनी होशियारी से काम करता था कि उसकी प्रशंसा सुनकर कोई कुछ अनुचित लाभ न उठा ले। वह कदाचित ही कभी किसी की सहायता करता। परन्तु कनक ने उसके ऊपर अपना प्रभाव जमा लिया और धीरे-धीरे उसके व्यापार तथा गृह दोनों में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया। थोड़े ही दिनों में व्यापारियों की मण्डली में कनक एक चतुर व्यापारी और बृजमोहन सेठ का भागीदार गिना जाने लगा।

बृजमोहन सेठ मकान के एक भाग में स्वयं रहते तथा दूसरा किराये पर उठा था। कुछ दिनों के बाद सेठानी के विशेष आग्रह से कनक भी सपरिवार उसी में आकर रहने लगा।

व्यापार और रसिकता का सम्बन्ध शायद ही कभी होता हो। व्यापारी जल्दबाज होते हैं उन्हें कला के लिये ठहरने की फुर्सत नहीं होती और न इतना धैर्य्य ही होता है। कदाचित यही कारण था कि बृजमोहन के नाम के "बृज" शब्द से जो कुछ कृष्ण कन्हैया की लीला भूमि का आभास आ सकता था वह भी प्रायः लुप्त हो गया था और सभी उसे केवल मोहन सेठ के नाम से पुकारते थे। उन्होंने कनक को अपने मकान में बुलाया तो अवश्य पर किराया उनसे भी वही लिया जो कोई दूसरा देता।

"देखो भाई कनक तुम हमारे मित्र हो तो एक दो बार आकर चाय पी जाना या दो एक दिन भोजन कर जाना पर भाई किराये के सम्बन्ध में पूरी जवाबदेही रखना हर महीने साफ किये जाना।"

कनक सब बातें समझता था। उसे कई विशेष कारणों से वह मकान

अपने अनुकूल ज्ञात हुआ इसलिये उसने मोहन सेठ की सभी बातें स्वीकार कर लीं और रहने लगा।

शिरीष इंगलैण्ड से वापस आने पर कनक के घर गया था। उस समय कनक अलग मकान में रहता था। पर सुकुमार के लौटने के समय वह मोहन सेठ के घर में आ गया था, यद्यपि सुकुमार से कभी उसकी पटती नहीं थी तथापि साथ पढ़े हुये गरीब विद्यार्थी को अपनी वर्तमान प्रभुता दिखाने का लोभ वह भी संवरण न कर सका और सुकुमार को बुलाया। वह भी बम्बई उतर कर पहले कनक के ही घर गया। बात-चीत के बीच कनक ने कहा—

'विलायत जाकर पढ़ तो आये पर अब क्या करने का विचार है। शिरीष तो धनी है उसे कोई चिन्ता नहीं पर तुम्हें तो नौकरी करनी पड़ेगी।"

"हाँ भाई !" कनक के वाक्य में छिपा हुआ व्यंग समझ कर सुकुमार बोला—

"बम्बई में रहो तो मैं तुम्हारी सहायता कर सकता हूँ।"

"तुम तो सट्टेबाज हो तुम्हारा क्या ठिकाना।"

"तुम्हारे जैसे पढ़े लिखे भिखारियों से तो अच्छा ही हूँ।"

सुकुमार हँसा। उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। दोनों के बीच सदा ही इस प्रकार की तू तू मैं मैं चलती थी। कनक ने सोचा था कि विलायत जाकर सुकुमार कुछ सुधर गया होगा, पर उसने तो पुनः उसी प्रकार की बातें कीं जैसे पहले करता था। कनक की आवभगत ने भी सुकुमार को मुग्ध नहीं किया इसका उसे बड़ा दुःख हुआ। किसी प्रकार सुकुमार उसके सामने नम्र बने और उसका बड़प्पन स्वीकार करे इसकी तीव्र इच्छा जाग्रत हुई और पुराना वैर प्रदीप्त हुआ। जैसे भी हो शिरीष और सुकुमार को ठिकाने लगाने की उसने कठिन प्रतिज्ञा की।

—७—

कनक का सारा प्रयत्न निष्फल हुआ। वह सुकुमार को प्रभावित नहीं कर सका। उसने सुकुमार को अच्छे से अच्छा भोजन कराया पर वहाँ भी सुकुमार ने उसे रोका।

"इसी कारण तो तुम लोगों का स्वास्थ्य बिगड़ा है। सादा भोजन क्यों नहीं करते?"

कनक ने मन में विचार किया कि मेरे ही घर खाता है और मेरी ही निंदा करता है। अच्छा देखा जायगा। कनक का ड्राइङ्गरूम देख कर सुकुमार ने टीका की "कितना सामान लाकर भर दिया क्या कोई अजायब घर बनाने का विचार है?"

कनक की धारणा थी कि उसका ड्राइङ्गरूम देख कर सुकुमार को इङ्गलैण्ड के कमरों की याद आयेगी और वह उसकी प्रशंसा करेगा। पर बात ही उल्टी पड़ी।

"तुम इसे अजायब घर समझते हो पर जानते नहीं कि उसे सजाने में कितना खर्च हो गया है?"

"कितना खर्च हो गया है?"

"दस हजार।"

सुकुमार कहना चाहता था कि "इसे बन्धक तो नहीं रखना है" परन्तु मित्रता और मेहमानी के धर्म का विचार कर चुप रहा।

दूसरे दिन कनक की इच्छा थी कि सुकुमार को व्यापारी मण्डल में घुमाये पर उसने अस्वीकार कर दिया। शाम को थियेटर या सिनेमा में भी नहीं गया! किसी भी प्रकार वह कनक के प्रभाव में नहीं आता था। कनक समझ नहीं सका कि उसकी मेहमानी स्वीकार करके भी सुकुमार क्यों नहीं उसकी महत्ता स्वीकार करता। वह बैठा यही सोच रहा था कि किसी ने द्वार खटखटाया।

"कौन रामा? आओ।" कनक ने कहा।

गुजरात में रामा नौकरों को कहा जाता है और धनी तथा सामान्य वर्ग में वे इसी नाम से पुकारे जाते हैं। एक छोटा बालक आया और बोला।

"काका साहब आपको बुला रहे हैं।"

"क्यों क्या काम है!"

"यह तो मुझे नहीं मालूम पर अभी ही बुलाया है। साथ में मेहमान को भी लाने को कहा है।"

"अच्छा चलो आते हैं।"

बालक के जाने पर सुकुमार ने पूछा।

"यह साहब कौन हैं?

"यह हमारे भागीदार बृजमोहन सेठ हैं। तुम तो जानते होगे। "कौन-कौन वही बृजमोहन जो रोज डांट खाता था वही न? "हां वही पर अब तो बहुत बदल गया है। अब उसकी गणना बड़े सेठों में होती है।"

"मैंने तो समझा था कि कोई साहब ही होगा।"

"अरे यह तो छोकरा उन्हें साहब कहता है। चलो जरा हो आवें।"

"मेरा क्या काम है?"

"उन्होंने बुलाया है। चलो जरा परिचय हो जायगा।"

मोहन सेठ के कमरे के द्वार पर पहुंचते ही भीतर से उनकी गर्जना सुनाई पड़ी।

"भैयो जाओ अभी उस भिखारी को बुला लाओ।" द्वार खुला और भीतर से भैयो निकला। उसने कनक को सलाम किया। दोनों सेठ के कमरे में गये। कमरा खूब सजा था। मानों किसी से बाजी लगी हो और उसमें जीतने की इच्छा से एकदम से शृंगार की वस्तुयें भर दी गई हों। अँग्रेजी ढंग की चमकती कुर्सियाँ भी थीं और कारचोबी के काम की हिन्दुस्तानी कुर्सियाँ भी थीं। सोफ़ा और चौकी, गोल टेबुल और लम्बा टेबुल हिन्दुस्तानी चित्रों में भगवान कृष्ण और रम्भा, मेनका के चित्रों के साथ-साथ सिनेमा स्टारों के भी चित्र थे। बिजली के झाड़ों के साथ ही हाड़ियाँ और टब भी लगे थे। इस प्रकार सभी पूर्वी-पश्चिमी वस्तुओं का जमघट लगा था और उनके बीच एक झूला भी पड़ा था। झूले पर अपने विशाल शरीर को रखे व्यापारी वीर के समान मोहन सेट विराजमान थे। किसी प्रकार कुर्सियों के बीच से रास्ता निकाल कर सुकुमार भीतर गया।

"आइये डाक्टर साहब। आप तो बहुत बड़े हो गये हैं। कुछ मेरी भी याद आती है।" बैठे-बैठे ही मोहन सेट ने स्वागत किया।

"हाँ हाँ बचपन भी क्या भूल जाता है। आप तो अच्छे हैं न?" सुकुमार ने उत्तर दिया।

"ठाकुर जी की कृपा है। सब उन्हीं का प्रताप है। क्यों भाई कनक तुम क्यों चुप हो।"

"ठीक ही है।" कनक ने उत्तर दिया। वह चारों ओर और विशेष कर भीतर वाले द्वार पर रह-रह कर देख रहा था।

"मैं तो भाई केवल लोटा डोरी लेकर आया था। बड़ा कष्ट भोगा। पढ़ा लिखा तो था नहीं कि कोई नौकरी पाता पर अच्छा ही हुआ। आज मेरे यहाँ कितने पढ़े लिखे नौकरी के लिये आते हैं।"

मूर्ख धनिकों का सब से बड़ा अभिमान यही होता है कि पढ़े लिखे लोग उनके यहाँ नौकरी करते हैं।

"आपका कहना बिल्कुल ठीक है।" सुकुमार ने कहा। "कौन है।" सेठ ने नौकर से तीन प्याला चाय लाने का हुक्म दिया।

भीतर से एक स्त्री ने पर्दा हटा कर झाँका और पूछा "क्या है ?"

"अरे मेहमान आये हैं तीन प्याला चाय भेजो।"

स्त्री का चेहरा भरा हुआ था, आँखें तेज थीं और कानों में हीरे के कुण्डल लटकते थे।

"मेरी स्त्री है।" सेठ ने स्त्री का परिचय दिया "कभी भली चंगी नहीं रहती। आधी कमाई तो डाक्टर ही खा जाते हैं।"

सुकुमार समझ गया कि उसे अवश्य कुछ डाक्टरी सलाह देनी पड़ेगी। थोड़ी देर बाद सेठानी चाय लेकर आई।

सेठानी का गोरा शरीर सुख और स्थूलता का अन्यतम सम्बन्ध प्रत्यक्ष कर रहा था। पर स्थूलता के साथ उनमें चपलता का अभाव नहीं हुआ था। वह सदैव हँसती रहती थी। उसके नेत्रों में भी हँसी भरी रहती थी। जरा-जरा सी बात पर वह खिलखिला कर हँस पड़ती थी और सभी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिये अंगों को विभिन्न प्रकार से मरोड़ती थी। सबके सामने उसका हाव भाव बड़ा आकर्षक होता था और मोहन सेठ उससे प्रसन्न होकर उसके अभिनय को स्वीकार करते हो इस प्रकार चुपचाप टुकुर-टुकुर ताकते रहते।

———

—८—

यकायक भैयो एक युवक के साथ मोहन सेठ के सामने आया और बोला—"इसी आदमी का किराया बाकी है।" युवक ने मोहन सेठ को सलाम किया।

"क्यों तुम रंगरेज हो क्या जी ?" मोहन सेठ ने पूछा।

"जी नहीं मैं रंगरेज नहीं चित्रकार हूँ।" युवक ने उत्तर दिया।

"हाँ हाँ, पर रंग का ही काम करते हो न!" मानो रंगरेज और चित्रकार दोनों एक ही हैं इस प्रकार सेठ ने पूछा "तुमने अभी तक किराया क्यों नहीं दिया?"

युवक तिरस्कार पूर्वक सेट की ओर देख रहा था। पर तुरन्त ही उसे अपनी स्थिति का ज्ञान हो गया। उसने समझ लिया कि रंगरेज और चित्रकार का भेद न समझने वाले मूर्ख सेठ का वह किरायेदार है। लाचारी का भाव दिखाते हुये वह बोला—

"सेठजी इस महीने मेहरबानी कीजिये। हमारा हाथ बहुत तंग है।"

"हर महीने तुम्हारा यही हाल रहता है। यह सब कुछ नहीं होगा आज या तो किराया दो या कोठरी खाली कर दो मुझे बहुत से किरायेदार मिल जायेंगे।"

"मेरे चित्र बिक गये हैं पर अभी दाम निकला नहीं है। दाम मिलते ही मैं आपका किराया अदा कर दूँगा पर अभी तो दया करें बड़ी कठिनाई में हूँ।"

युवक की वाणी में करुणा थी। उसकी ओर आकर्षित होकर सुकुमार ने पूछा।

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"जी मेरा नाम विभाकर है।"

"ओ हो! तुम तो बड़े अच्छे चित्रकार हो।" विभाकर हँसा। उसकी हँसी में गर्व और ग्लानि का भाव था। "इस प्रकार कहीं चित्रकारी से पैसा मिलता है!" सेठ ने अपना मत प्रकट किया "कोई सीधा काम देखो नहीं तो साल भर मरोगे, फिर भी चार पैसे नहीं मिलेंगे।"

"आपके लिए एक खास चित्र लाया हूँ आज्ञा हो तो दिखाऊँ।" विभाकर ने चापलूसी करते हुए कहा।

"चित्र दिखाने से किराया बन्द नहीं होगा।" सेठ ने कहा पर चित्र देखने के लिए हाथ फैला दिया। चित्र देखते ही उनके चेहरे पर आनन्द की रेखा दौड़ गई। चित्र में वे अपनी पत्नी के साथ बैठे थे।

"लो इस रंगरेज चित्रकार ने तो तुम्हारी तस्वीर बना दी है।" सेठानी ने पास आकर चित्र देखा और न जाने क्यों हँसने लगी।

"जरा मैं भी देखूँ।" कनक ने कहा।

"लो देखो। बेवकूफ ने मेरा चित्र क्यों बना दिया है।" सेठानी ने कनक को चित्र देते हुए कहा।

"आहा! आप तो अर्ध चन्द्र पर बैठी हैं और सेठ साहब बादलों में से निकल रहे हैं। भाई चित्र तो बड़ा सुन्दर है।"

"इसका मूल्य क्या है जी? मैं यह चित्र सेठ साहब को भेंट देने के लिए खरीद लूँगा।"

"इसका मूल्य कुछ भी नहीं है। मैंने भी सेठजी के भेंट देने के लिए ही बनाया है।" विभाकर ने कहा।

"नहीं नहीं जी, मैं इसे भेंट करूँगा। तुम उचित मूल्य कहो तुम्हारी स्थिति भी इस समय अच्छी नहीं है। इसका मूल्य पा जाओगे तो किराया भी चुका दोगे।"

"साहब कला का मूल्य नहीं होता। देने वाला हो तो लाख रुपये भी कम है और न हो तो मुफ्त को भी महँगी है। मैंने अपनी इच्छा से बनाया है इस कारण कोई मूल्य नहीं लूँगा।" विभाकर ने उत्तर दिया। उसका यह गर्व सबको बुरा लगा। केवल सुकुमार चुपचाप देखता रहा।

"अच्छा आज तो छोड़ देता हूँ। पर कल शाम को किराया न मिलने पर भैयो तुम्हारा समान बाहर निकाल कर फेंक देगा समझे?"

विभाकर चुपचाप लौट गया। वह बीस वर्ष का सुन्दर युवक था। एक बार उसका मुख देखकर भूला नहीं जा सकता था। उसके लम्बे नुकीले नेत्रों में संसार भर का सौन्दर्य एक ही बार में पी जाने की क्षमता

थी फिर भी उसमें किसी अगम्य विषाद की रेखा वर्तमान थी। उसके पतले होंठ और नुकीली ठोढ़ी यद्यपि सुन्दर थे तथापि उनमें गर्व और गरीबी का भी समावेश था। केवल एक धोती और कुरते में भी वह सुन्दर लगता था। उसका प्रशस्त वक्षस्थल उसके अदब से खड़े रहने पर भी उसकी अकड़ का द्योतक था।

विभाकर के पीछे-पीछे भैयो भी लौटा। बात-बात में आखिर मोहन सेठ ने अपनी सेठानी की बीमारी की बात छेड़ ही दी।

"हां डाक्टर साहब आप तो इङ्गलैण्ड से पढ़ कर आये हैं जरा देख कर कोई दवा बताइये मैं तो भाई परेशान हो गया हूँ। यहाँ तो कोई अच्छा डाक्टर ही नहीं मालूम पड़ता।"

"हां हां जरूर देखूँगा पर एक बात पहले बता देता हूँ कि मैं दवा में विशेष विश्वास नहीं रखता।"

"आप देख लें यही बहुत है। अपनी पुरानी दोस्ती का विचार करके ही तो आपको तकलीफ दे रहा हूँ।"

सेठानी ने तुरन्त अपना अभिनय किया और ऐसा मुख बनाया मानो सदैव की रोगी हैं आँख अधखुली कर श्वांस लेने लगीं और दीनता से सेठ की ओर देखना आरम्भ किया। पति के चेहरे पर दया का भाव देख कर उन्हें इच्छित प्रभाव उत्पन्न करने का सन्तोष हुआ।

सुकुमार सेठानी की परीक्षा करने लगा। सोने की चूड़ियां और मोती के कंगन और जड़ाऊ पहुँची के भीतर से उसने बड़ी कठिनता से नाड़ी का पता लगाया और ध्यान पूर्वक देखने लगा। बड़ी आनाकानी के बाद सेठानी ने आँख की पुतलियाँ और उससे भी अधिक कठिनाई के बाद जबान दिखाई। उनकी हँसी रुकती ही नहीं थी। बड़ी कठिनता से रोक कर जबान निकाली।

सब कुछ देखने के बाद सुकुमार ने पूछा—

"आज कल आप कोई दवा खाती हैं?"

महाभयानक रोगी के समान सेठानी ने उत्तर दिया। "दवा के बिना कैसे काम चलेगा वह तो रोज की खुराक हो गई है।"

"क्या क्या दवा की है?"

"अरे यार क्या पूछते हो?" सेठ बोले "जितने भी टानिक हैं सभी तो पिलाया है। काडलिवर आयल की तो न जाने कितनी बोतलें पिलाई देशी दवा भी बहुत किया। सोना, मोती, अभ्रक की भस्में भी खिलाई! पर शरीर जैसा का तैसा ही है।"

किसी काडलिवर आयल के पीपे के समान फूले हुये सेठानी के शरीर को देखकर सुकुमार ने पूछा।

"आप दर्शन करने जाती हैं?"

"नहीं जी भीड़ में धक्का खाने कौन जाय। यह हमारा काम नहीं है।" सेठानी बोली।

"जाया करें तो अच्छा है!"

"हाँ हाँ। कभी-कभी कनक के साथ थियेटर या सिनेमा में भी जाना चाहिये।" सेठ ने दाद दी।

"मैं आपको सलाह देती हूँ।"

"इसी लिये तो आपको बुलाया है।"

"तो सुनिये। आज से दवा खाना तो एक दम बन्द कर दें। और घर में जो भी दवा हो फिकवा दें।"

सेठ और सेठानी दोनों चकित होकर देखने लगे। सेठानी ने मुस्कराकर कहा "आप तो मजाक करते हैं। डाक्टर होकर भी ऐसी बात करते हैं!"

"मैं ठीक कहता हूँ। मेरे कहने के अनुसार यदि आप नहीं रहेंगी तो आपकी तबीयत कभी नहीं सुधरेगी।"

"अच्छा फिर?"

"फिर घर में चक्की मँगा कर गेहूँ पीसना आरम्भ करें। पाव भर से लेकर वर्ष में पाँच सेर तक पीसने का अभ्यास कर डालें।"

सभी चकित हो गये। विलायत से पास होकर आया हुआ डाक्टर इस प्रकार की ऊटपटांग बातें करेगा यह लोगों की कल्पना से भी परे था। यह भी कोई दवा है?

"यह कैसे कर सकती हूं। कोई दूसरी दवा बतायें।"

"तो फिर नीचे बाग में कुआँ है उससे रोज पांच घड़ा पानी खींच कर नीचे से अपने कमरे तक ले आया करें।"

सभी ने समझ लिया कि इस डाक्टर की मूर्खता से पार पाना कठिन है। मोहन सेठ को दुःख हुआ कि एक प्याला चाय का व्यर्थ अपव्यय हुआ और सेठानी ने भी समझा कि उनका अभिनय बेकार हो गया। उनकी धारणा थी कि सुकुमार कोई अच्छी सी दवा बतायेंगे पर वहां तो उसने मजदूरों सी मेहनत का काम बता दिया।—फिर भी उन्होंने एक आखिरी बात और पूछी।

"और मुझे खाना क्या होगा।"

"बाजरे की रोटी और दूध या मठा।

"हूँ! यह तो देहाती खाते हैं।"

"देहातियों जैसी तन्दुरुस्ती पाने के लिये उन्हीं के जैसा भोजन भी करना होगा। अच्छा अब मुझे छुट्टी दें। चलो भाई कनक।"

कनक ने भी सोचा कि यह डाक्टर सभी को मूर्ख बनाना चाहता है इससे जल्दी ही इसे यहां से हटा देना चाहिये। वह भी उठ कर खड़ा हो गया।

"कभी कभी आते रहना।" सेठानी ने हँसते हँसते कहा—उनकी विलास भरी आँखों को तिरस्कार पूर्वक देखते हुये सुकुमार लौटा पर कनक सेठानी की आंखों का अभिप्राय समझ गया। वह भी हँसता हुआ बाहर निकला। बाहर आकर उसने सुकुमार से कहा—

"वाह भाई यही करने तुम हमारे साथ आये थे ?"

"भाई मैंने तो अपनी ठीक राय दी अब उन्हें अच्छी न लगे तो मैं क्या करूँ। करते रहें दवा और भोगते रहें।"

"नहीं भाई ऐसा नहीं कहना चाहिये। वे कितने प्रतिष्ठित और धनी हैं। यह तो उनका मकान ही देख कर समझ गये होंगे।"

"प्रतिष्ठा की बात तो ठीक है यह पैसे से प्राप्त हो जाती है। पर एक बात मैं समझ गया।"

"क्या ?"

"वह यह कि तुम्हें और बृजमोहन सेठ को देख कर मेरी तो धारणा हो गई है कि पैसा पैदा करना कोई असाधारण काम नहीं है। मनुष्य में आधी मूर्खता और आधी धूर्तता हो तो वह शीघ्र ही लखपती हो सकता है।"

"तुम बड़े बुद्धिमान बनते हो तो करना पैसा पैदा देखूँगा। दूसरों के पैसे से पढ़कर मजा कर रहे हो तो पैसे का मजाक उड़ाते हो। जरा शिर्मल का जितना पैसा खर्च कर डाला है वह पूरा करना तो पता लगेगा ?"

कनक ने क्रोध से कहा। वह सोचने लगा—इतना करने पर भी सुकुमार का घमण्ड दूर नहीं होता ? अच्छा बदला न लूँ तो नाम नहीं। दूसरे दिन सुकुमार लौट गया। कनक ने उससे रुकने का जरा भी आग्रह नहीं किया बल्कि उसके जाने के कुछ पहले स्वयं ही बाहर चला गया और जाते समय मिला भी नहीं। मोहन सेठ और सेठानी भी सुकुमार पर बिगड़े। उन्होंने समझा कि सुकुमार ने उन्हें निर्धन समझ कर कोरा चमारों जैसा देहाती प्रयोग बताया। यही उनके क्रोध का कारण था। दोनों यही सोच रहे थे कि भैयो ने बाहर से आकर रुपयों की एक गड्डी सेठ के सामने रख दिया।

"किसका रुपया ?" सेठ ने पूछा:—

"उसी आदमी का जिसके यहां किराया बाकी है। उसने दिया है।" सेठ रुपये गिनने लगे और बोले "देखो इतना धमकाया न होता तो अभी

भी न भेजता। तस्वीर भेंट करने आया था। एक टुकड़ा कागज से इतना रुपया पूरा करना चाहता था। मूर्ख यही नहीं जानता होगा कि कितने बीस मिल कर सौ होते हैं?"

सेठानी ने हँसकर अनुमोदन किया और पुनः अपना चित्र देखने लगीं। उसकी धारणा हो गई कि वे स्वयं चित्र से अधिक सुन्दर हैं।

मनुष्य को अपने में जितना आनन्द आता है उतना अन्य किसी में भी नहीं। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। इस सत्य को यदि सभी समझ लें तो संसार का व्यवहार अत्यन्त साधारण हो जाय और आपस की कटुता का अन्त हो जाय। पर यद्यपि यह एक सीधी सादी बात है तथापि लोग इसे जानते नहीं। कनक इस तथ्य को समझता था और इसी कारण वह मोहन सेट के ऊपर अपना प्रभाव जमा सका था।

———

—६—

विभाकर अपने कमरे की ओर लौटा। उसके हृदय में विह्वलता थी। अपनी गरीबी और लाचारी उसे खला करती थी। मोहन सेठ पर उसे इतना क्रोध आया कि अभी ही उनके सर पर किराया पटक कर कमरा खाली कर दें पर इस समय उसके पास केवल छः आने पैसे थे। यही उसकी पूँजी थी। इसी पर सारा महीना बिताना था, और दूसरी कोठरी कहाँ किराया करेगा? समय पर किराया न चुकाने ही के कारण उसे कई मकान बदलने पड़े थे। फिर उसकी चित्रकला में सहायक ऐसी अनुकूलता कहीं और

मिलने वाली भी नहीं थी। मकान के ऊपर की छत यद्यपि सभी के लिये थी पर सिवा उसके और कोई कभी वहाँ जाता ही नहीं था। नीचे का बाग उसको प्रकृति का चित्रण करने में बड़ी सहायता देता था। इतने किराये पर दूसरा स्थान नहीं मिल सकता था। सन्ध्या के पहले रुपया न पाने पर अवश्य यह स्थान उसे छोड़ना पड़ेगा। फिर कहाँ रहेगा? उसके पिता अन्धे थे। माता अपंग थी। न जाने किस दुर्भाग्य से उसके पिता अन्धे हो गये थे। इसी कारण उन्हें नौकरी छोड़नी पड़ी थी। माता पहले से ही अपंग थी। लकवे से उनका सारा शरीर बेकाम हो गया था। उसकी एक विधवा काकी और उनकी एक दस-ग्यारह साल की बालिका भी उसी के आश्रय में रहती थी। उनके लिये भी दूसरा स्थान नहीं था। मकान छोड़ने पर वह सबको लेकर कहाँ जायगा? भैया आकर सामान फेंकने लगेगा उस समय उसकी क्या दशा होगी? माता को कहाँ रखूँगा, पिता कहाँ रहेंगे।

अपनी कोठरी में एक पत्थर पर बैठकर विभाकर सर पर हाथ रख कर सोचने लगा कि कहाँ जाय। माता पिता का विचार आते ही वह व्याकुल हो उठा। उसका मस्तक चक्कर खाने-लगा।

"भाई क्या हो रहा है?" उसकी छोटी बहन सुधा का स्वर सुनाई पड़ा। अपनी अस्थिरता में मनुष्य कोई भी सहारा ग्रहण कर लेता है। डूबते को तिनके का भी सहारा होता है। विभाकर का हृदय द्रवीभूत हो गया। उसकी असहाय स्थिति में भी भाई क्या हो रहा है कहकर पूछनेवाली एक बहन तो है। वह फूट कर रोने लगा। भाई दुःखी है यही विचार बहन के लिये अलम है। उसका कारण पूछने की उसे जरूरत नहीं रहती सुधा भी विभाकर के आँसू पोंछते-पोंछते रोने लगी। उसे रोती देखकर विभाकर लज्जित हो गया। उसे अपनी दुर्बलता पर ग्लानि हो आई। उसने सुधा को गोद में उठा लिया और हँसने लगा। सुधा का कण्ठ अवरुद्ध हो गया। वह चुप हो गई पर उसके नेत्रों में आँसू छलक रहे थे।

"तुम्हें क्या हो गया भाई ?"

"कुछ भी नहीं योंही जरा तुझे रुलाना था।" सुधा के बालों पर हाथ फेरते हुये विभाकर ने कहा।

"झूठ बोलते हो। तुम जब से आकर बैठे हो तभी से देख रही हूँ। आँख और मुँह कितना लाल हो गया है।"

"मेरा सर दर्द कर रहा है।"

"तो मुझसे क्यों नहीं कहा। चलो सो रहो मैं सर दबा दूँ।" सुधा के नेत्रों से मातृत्व की ज्योति निकलने लगी। संसार में स्त्रीत्व को देखते हुए यही कहना पड़ता है कि पुरुष एक मार्गी होता है। स्त्री को मूर्त्ति बना कर उसे सजाने और उसके निकट विकार के वातावरण में मग्न रहता हुआ पुरुष भले ही माशूकी और प्रियतमा के गान गाकर मस्त रहे, परन्तु मातृत्व के धीर और गम्भीर महासागर के सामने यह इश्क का तूफान छिछला ही लगता है। स्त्री केवल मोहिनी या माया ही नहीं है, वह अम्बा और अन्नपूर्णा भी है। कृष्ण और राधा के गीत भले ही गाये जायँ पर कृष्ण की यशोदा संसार में आ ही नहीं सकती। वह वाणी से परे है। उसके चरणों में मस्तक शोभित होता है। नारी रूपी अम्बिका को पुरुष का हमेशा से कोटिशः प्रणाम होता आया है। छोटी सुधा इस समय विभाकर के लिये अम्बिका बनी। उसने विभाकर का इन्कार नहीं सुना और अपने कोमल छोटे हाथों से उसका सर दबाने लगी। विभाकर को भी आराम मिला।

"सर कितना जल रहा है जरा धूप लगा दूँ" सुधा धूप उठा लाई और विभाकर के सर में लगाने लगी। विभाकर स्वस्थ होने लगा। प्रातःकाल उसकी माता ने भी धूप लगाने के लिये कहा था।

"रहने दो अब तुम्हारा हाथ दुखने लगेगा।"

"नहीं मेरा हाथ नहीं दुखेगा। इसमें बहुत ताकत है।" कह कर सुधा ने मुक्का ताना और हँसने लगी।

"अच्छा अच्छा जा अँधेरा हुआ काकी खोजती होगी।" "चाय बना दूँ तो तबीयत ठीक हो जायगी।" सुधा ने कहा। "नहीं रहने दे।" चाय से और भी सर दर्द करने लगेगा। विभाकर जानता था कि घर में शक्कर और चाय दोनों नहीं हैं। जरा घूम आऊँ तो जी ठिकाने हो जायगा पर किसी से कुछ कहना मत।"

"क्या बात ?" सुधा ने पूछा। वह भूल गई कि कभी भी न रोने वाला विभाकर आज रो रहा था।

"मेरा सर दर्द कर रहा था यही बात।"

"अच्छा समझ गई।" सुधा जानती थी कि केवल सर दर्द के कारण विभाकर रोने वाला नहीं है।

"मेरी कसम खा।" विभाकर ने कहा।

"मैं मर भी जाऊँगी तो भाई की कसम नहीं खाऊँगी। मेरे एक तुम्हीं तो भाई हो।" सुधा स्तब्ध होकर बोली।

विभाकर सुधा के हृदय की वेदना समझ गया। कौन जानता है कि नादान बच्चों के हृदय में इतनी बातें छिपी रहती हैं।

"अच्छा पर किसी से कहना मत।" कहकर विभाकर चला गया।

सुधा अकेली हो गई। अपनी माँ तथा काकी के पास न जाकर वह बरामदे में बैठ गई और बाग में देखने लगी कि विभाकर टहलता तो नहीं है। पर विभाकर दिखाई नहीं पड़ा। वह बैठी सोचने लगी। भाई को क्या कष्ट है। आज कल क्यों ठीक से बातें नहीं करता। पहले चित्र बनाते समय उसे भी बुलाता था पर अब क्यों नहीं बुलाता। जब विचारों को एक मार्ग मिल जाता है तो वे उसी पर दौड़ने लगते हैं। धीरे-धीरे सुधा को विभाकर के प्रत्येक कार्य में एक व्यतिक्रम दिखाई देने लगा। कदाचित पुनः कमरे में आकर भाई रो तो नहीं रहा है इस विचार से उसने पुनः कोठरी में देखा। पर विभाकर नहीं था। उसने विभाकर के कई चित्र

देखे। कुछ पूरे हो गये थे कुछ अधूरे पड़े थे। कुछ में उसे अपनी आकृति का भास हुआ। शायद यह चित्र भाई ने मुझे देखकर बनाया है यह विचार आते ही वह गर्व से फूल उठी।

इतने में किसी ने द्वार खटखटाया।

"कौन है?" कहकर सुधा ने द्वार खोला। सन्ध्या के धूमिल प्रकाश में एक अपरिचित द्वार पर खड़ा था।

"क्या है?" सुधा ने पुनः पूछा।

"विभाकर का मकान यही है?" अपरिचित ने पूछा।

"हाँ। पर वे बाहर गये हैं।"

"उन्होंने मुझे भेजा है। यह रुपया देकर कहा है कि भैयो को दे देना छः महीने आगे का किराया है चुका दो। उन्हें आने में देर है इसी से मेरे द्वारा भेज दिया है।" कहकर अपरिचित ने नोटों का एक बण्डल सुधा को दे दिया और चलता बना।

सुधा तुरन्त नोट लेकर अपने काका के पास गई और विभाकर का सन्देश सुनाया उन्होंने ठण्डी साँस लेकर कहा—

"हाँ बेटी मुझे भी एक दिन भैयो की बातें सुननी पड़ी थीं। आज अन्धा हूँ इसी से सब की जली-कटी सुनना पड़ता है नहीं तो किसकी मजाल थी कि कुछ कहता। जा भैयो को रुपया दे आ। छः महीने की छुट्टी।"

सुधा तुरन्त नोट लेकर भैयो के पास दौड़ गई। भैयो की अवस्था पचास साल की होगी। यह उत्तर भारत का रहने वाला एक ब्राह्मण था। जब अकेले रहता तो मकान की चौकीदारी करता और रामायण पढ़ता। कभी-कभी सुधा भी उसके पास जाकर बैठ जाती और उसके कथा की एक मात्र श्रोता होती। उसे भैयो की गम्भीर आवाज और हिन्दुस्तानी भाषा बड़ी अच्छी लगती थी। भैयो भी इस निर्दोष बालिका को रामायण के प्रसंग सुनाकर प्रसन्न होता था। दोनों एक दूसरे के घनिष्ट

मित्र बन गये थे। कभी-कभी छिपाकर भैयो सुधा को अपनी बाटी-दाल भी बनाकर खिलाता था। स्वयंपाकी भैयो के चौके में केवल मात्र सुधा को जाने की इजाजत थी। कभी-कभी सुधा भी शाक वगैरा बनाकर देती तो वह बड़े प्रेम से खाता और बेटी को आशीर्वाद देता। सुधा को वह बेटी कहकर पुकारता था।

"लो भैयो जी अपना रुपया, रोज भाई की जान खाते हो अब छः महीने तक बोले तो ठीक नहीं होगा।" कहकर सुधा ने रुपये भैयो के सामने रख दिये।

"क्या करें बेटी सेठ का नमक खाते हैं न।" भैयो ने उत्तर दिया।

"आज शाम तक किराया न देने पर तो घर से निकाल देते न?" सुधा ने व्यंग किया।

"कौन हरामजादा तुम्हें इस मकान से निकालेगा? यह बात तुम्हारे लिये नहीं है।" भैयो ने व्यंग का उत्तर दिया और रामायण सुनाने की इच्छा की। पर सुधा को काम था इससे वह बैठी नहीं।

घर में विभाकर लौट आया था।

"भाई मैं किराये का रुपया दे आई।" उत्साह से सुधा ने कहा।

"तू कहाँ से ले आई।" विभाकर ने पूछा।

"वाह। अभी तुम्हीं ने तो किसी से भेजा था।" सुधा हँसने लगी।

"हाँ, हाँ, मैं भूल गया था। चलो एक महीना तो कटा।"

"एक महीना क्यों। छः महीने का किराया दिया है।"

"ठीक है ठीक, छः महीने का किराया दिया है।"

"हूँ मुझे चिढ़ाना चाहते हो? समझा होगा कि सुधा रुपये ले लेगी।" सुधा ने कुछ अन्यमनस्क होकर कहा।

जा तू तो जरा सी बात में ही चिढ़ जाती है। अच्छा जरा हँस तो दे नहीं तो मैं भोजन नहीं करूँगा। और मुझे भूख लगी है।"

सुधा भाई को कभी भूखा नहीं छोड़ सकती थी। उसने पुनः अपनी स्वाभाविक हँसी आरम्भ की और भाई को भोजन कराने ले गई।

पर सुधा के मन की शंका दूर नहीं हुई। वह समझ गई कि आज भाई अवश्य किसी गहरे विचार में पड़ा है। उसे यह भी नहीं याद रहा कि एक महीने का किराया भेजा है या छः महीने का। फिर किराया दिया किसने ?

—१०—

विभाकर रंग में ही स्वर्ग निहारता था। रंग देखते ही वह आवेश में आ जाता था और अत्यन्त उल्लास पूर्वक एकाग्रता से समाधि का सा आनंद प्राप्त करता था। अस्ताचल के सूर्य की रश्मियों का चमकता हुआ सुनहला रंग तथा फन निकाले हुए भयानक सर्प का चमकता काला रंग उसके लिए समान आनन्ददायक थे। संसार उसके निमित्त एक विस्तृत चित्र था। जड़ और चैतन्य जगत की प्रत्येक वस्तु पर कभी-कभी घंटों विचार करने लगता था। पर उसकी विचार सृष्टि गम्भीर ही नहीं सरस भी होती थी। चित्रों में अपार बल होता है। वे यदि रुला सकते हैं तो हँसा भी सकते हैं, नहीं अट्टहास्य भी उत्पन्न कर सकते हैं। और हास्य है क्या ? प्रमाण की विषमता ही तो हास्य है।

ऊँट की विचित्रता भरी लम्बी गोल गर्दन तथा गदहे की लम्बी चंचल आँख उसमें समान रूप से हास्य उत्पन्न करते थे।

जगत के इन सभी रंग बिरंगी वस्तुओं का मिश्रण वह अपनी चित्रकला में करता था और किसी अलौकिक शक्ति द्वारा उनमें सजीवता का संचार करता था। कला को अणुमात्र समझने वाले भी उसका चित्र देख कर मोहित हो जाते। मानव जीवन के सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव वह किस प्रकार अपने चित्रों में मिश्रण करता था, कोई नहीं कह सकता।

पर तो भी उसके चित्रों का मूल्य नहीं था। उसकी बहुत प्रतिष्ठा भी नहीं थी। उसे किसी ने कोई पुरस्कार या मेडल भी नहीं दिया था और न उसने किसी प्रतियोगिता या प्रदर्शनी में ही चित्र भेजे थे। यही नहीं अपने चित्रों का खुले आम प्रदर्शन भी वह नहीं करता था। एकाध बार चेष्टा करने पर सफलता नहीं मिली तो बन्द कर दिया। उसे आगे लाने वाला कोई सहायक नहीं था। अन्य चित्रकार उसे पीछे ही ठेलने का प्रयत्न करते थे। उनकी अवस्था और सम्मान के सामने इस नये बालक चित्रकार की क्या गिनती? उसकी कला अन्य प्रसिद्ध चित्रकारों की कृपा पर अवलम्बित थी। पर उसका स्वाभिमान तथा अपनी कला की श्रेष्ठता का मान उसे किसी का आश्रित नहीं होने देता था। इसी कारण वह निर्धन था।

उसके चित्रों की माँग होती थी पर उनका मूल्य नहीं के समान होता। यदि कोई कुछ देता भी था तो वह मानो चित्रकार के ऊपर बड़ी भारी कृपा करता था। इसी लिए उसने मूल्य के विषय में चुप रहना ही आरम्भ कर दिया था तथा बिना मूल्य ही मुफ्त में अपने चित्र दे देता था। वह कभी चित्र का मूल्य किसी से कहता नहीं था और बिना बुलाये मांगने भी नहीं जाता था।

पर आज पैसे की बड़ी आवश्यकता पड़ी। बिना पैसे के कल सन्ध्या तक घर छोड़ने की नौबत आ जाने वाली थी। उसकी लाचारी और गरीबी सुधा ने समझ लिया यह और भी बुरा हुआ था। उसने सोचा कि इस समय घर में रहना ठीक नहीं और बाहर निकला। उसे विचार हुआ कि उसके पचीसों ग्राहकों में से यदि आठ दस, पांच-पांच रुपये भी दे दें तो

उसके पास इस महीने का किराया निकल आवे। पर क्या वह मांगने जायेगा? क्या वह भिखारी है? "मुझे रुपयों की आवश्यकता है कुछ दे दें" यह कहना कैसी लज्जास्पद बात है। क्या वह व्यापारी है? कला के रसिक कला की उत्कृष्टता देखेंगे या रुपये में उसका मूल्य लगायेंगे। मेरे चित्र का इतना मूल्य दीजिये यह कहने से पहले उन पर काली स्याही पोत देना अच्छा है।

उसे हँसी आ गई। "निर्धनता में यह गर्व क्यों?" उसे अपना मिथ्याभिमान बुरा लगा। संसार का व्यवहार पैसे से ही चलता है। सभी वस्तुओं का मूल्य पैसा होता है तो फिर पैसे से वह भागे क्यों। बुद्धिमान सोने चाँदी द्वारा तौला जाता है, मजदूर तांबे और निकल द्वारा, तो फिर कलाकार क्यों नहीं हीरे और मोतियों से तौला जाय? यह विचार आते ही वह गद्‌गद् हो गया। उसकी कल्पना में एक चित्र घूम गया। बुद्धिमान मजदूर तथा कलाकार तीनों उसे अपने काल्पनिक चित्र में तौलाते हुये दिखाई पड़े। उसने सोचा इस प्रकार का चित्र होगा तो सुन्दर, पर फिर उसे खरीदेगा कौन?

"वीणा! देख तो यह कैसा सुन्दर चित्र है।" किसी के मधुर शब्द ने उसकी विचार धारा भंग कर दी। "चित्र?" वह तो उसीका विषय है। चलते-चलते वह किधर आ गया इसका उसे ध्यान ही नहीं रहा। उसने सर उठाकर देखा तो मालूम हुआ कि वह बिसातियों के बाजार में पहुँच गया है। पास की दूकान में तीन चार बालिकायें खड़ी चित्र देख रही थीं। दूकान में अनेक प्रकार के चित्र लगे थे।

"नहीं ऐसा चित्र नहीं मुझे तो कृष्ण का चित्र देखना है।" कहकर बीणा ने चलना चाहा। वह एक चौदह वर्ष की किशोरी थी। उसके साथ शायद उसकी सखियां थीं। वे भी चल पड़ीं।

"इतने सुन्दर और चित्रों को छोड़ कर तुम्हारी बहन ने कृष्ण ही का चित्र क्यों मँगाया है?" एक ने वीणा से पूछा।

"उन्हें अपने श्वसुर को भेंट देना है।" वीणा ने उत्तर दिया।

"तो उनके श्वसुर भगत हैं।" एक दूसरी ने पूछा मानों उसके विचार से श्वसुर का भक्त होना लज्जा की बात थी।

"तो बहन क्या करें।" वीणा ने उत्तर दिया।

"तब तो वह बड़ा-बड़ा स्वांग करते होंगे। भाई मुझे तो ऐसे मनुष्य को देख कर भय लगता है जैसे बाघ का।"

विभाकर इन बालिकाओं की ओर आकर्षित हो गया था। उनकी बातों से उसने समझ लिया कि ये चित्र देख रही थीं और उन्हें कृष्ण के चित्र की आवश्यकता है। बातें करती हुई बालिकायें दूकान से दस पन्द्रह कदम आगे बढ़ गईं। वह कुछ सोचने लगा। पुनः हिम्मत कर उसने एक से पूछा।

"बहन तुम्हें कृष्ण का चित्र देखना है?" बम्बई की बालिकायें दूकानदारों की बातों से परिचित हो जाती हैं। उन्होंने सोचा यह कोई दूसरा दूकानदार है। सन्ध्या हो गई थी। विभाकर की ओर बिना देखे ही एक ने उत्तर दिया।

"हां हमें कृष्ण का चित्र देखना है।"

"मेरे पास कृष्ण का एक छोटा चित्र है।" विभाकर बोला। सबों ने विभाकर को देखा। साधारण दूकानदारों के समान उसकी मुद्रा नहीं थी। अपना माल बेचने वालों के समान आजिजी का भाव उसमें नहीं था।

"चित्र दिखाऊँ?" विभाकर ने पुनः पूछा।

"हाँ देखूँ।" कहती हुई वीणा आगे आई।

विभाकर की जेब में एक छोटा अल्बम था। उसमें से एक छोटा चित्र निकाल कर उसने वीणा के हाथ में दिया। बालिकायें चित्र देख कर मुग्ध हो गईं।

कृष्ण के सामान्य चित्रों से परे ही कोई भाव इस चित्र में था।

विकास भरी मोहकता के बदले यह चित्र तो आनन्द भरे मधुर हास्य हँसते और सारे संसार को हँसाते हुये किसी किशोर का चित्र था।

वीणा ने पूछा "यह चित्र दे सकते हो?"

"हां यह मेरा ही है!" विभाकर ने कहा।

"इसका मूल्य क्या है?" वीणा ने पूछा।

विभाकर हँसा—"कृष्ण का मूल्य या कृष्ण के चित्र का मूल्य? इसका मूल्य नहीं दिया जा सकता मैं आपको यह चित्र भेंट देता हूँ।"

वह भूल गया कि उसे पैसे की बड़ी आवश्यकता है और वह पैसे की खोज में ही निकला है। वीणा चुपचाप उसे देखने लगी।

"राधाकृष्ण का चित्र नहीं है।" एक सखी ने अकेले कृष्ण में कमी बताते हुए पूछा।

"नहीं अभी राधा का चित्र नहीं बनाया है। राधा का कोई प्रतीक मुझे नहीं मिला।" वीणा की ओर देखकर विभाकर बोला।

"तुम्हीं चित्रकार हो?" वीणा ने पूछा।

"हाँ।"

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"मेरा नाम? विभाकर।"

सभ्य समाज में विभाकर का नाम कुछ-कुछ फैलने लगा था।

"मैंने नाम तो सुना है, पर क्षमा कीजियेगा पहचान न सकी।"

"कोई हर्ज नहीं अभी मैं ऐसा चित्रकार नहीं हो गया हूँ कि पहचाना जाऊँ। मैं अपना कार्ड देता हूँ आप ले जायँ।" विभाकर ने अपना कार्ड और चित्र दोनों वीणा को दे दिया और चलता बना।

पर इसी चित्र पर आज उसकी कितनी आशायें केन्द्रीभूत थीं। एक वैष्णव सेठ ने बहुत दिनों से उसे माँग रखा था। शायद उनको देने पर कल के किराये का रुपया निकल आता। पर उन्होंने तो गिरधरधारी कृष्ण

का चित्र माँगा था। इस प्रकार विचार करता हुआ वह एक बड़े मकान के सामने आकर खड़ा हो गया।

"सेठ साहब हैं।" उसने भीतर आकर पूछा।

"हाँ हैं पर अभी कई आदमी आये हैं आप जरा बैठे।" नौकर ने उत्तर दिया।

"मुझे बहुत आवश्यक काम है जरा जल्दी खबर करो।" आराम करते हुए नौकर को उठना बड़ा बुरा लगता है। वह बड़-बड़ाता हुआ उठा और थोड़ी देर बाद आकर बोला।

"मैंने कहा था कि बैठिये थोड़ी देर बाद मिलेंगे। लोगों की उतावली के मारे आराम से बैठना भी नहीं होता।"

इस युग में मान पाने की लालसा जितनी ही अधिक हो गई है उतनी ही अपमान सहन करने की शक्ति का भी ह्रास हो गया है। विभाकर को कुछ क्रोध हो आया। पर नौकर उसकी जरा भी परवाह न कर चुपचाप बीड़ी पीने लगा।

थोड़ी देर बाद मित्रों से बातें करते सेठजी बाहर निकले। विभाकर ने उठकर सलाम किया। पर उसकी ओर जरा भी ध्यान न देकर पहले उन्होंने मित्रों को विदा किया तब विभाकर की ओर देखा।

"क्यों क्या है। कैसे चले।" स्वामित्व के ढङ्ग से सेठ जी ने पूछा।

"साहब मैं आता तो नहीं पर..........।"

"हाँ हाँ कहो क्या बात है।"

"जी मुझे रुपयों की बड़ी जरूरत है। किराये का रुपया...।"

"देखो भाई रुपयों के लिये तुम इस प्रकार घबराते हो यह ठीक नहीं तुम्हारे चित्र की मुझे कोई खास आवश्यकता नहीं थी। केवल तुम्हें प्रोत्साहन देने के लिये मैंने रख लिया था। तुम्हें कहीं और रुपया मिलता हो तो ले जाओ कोई हर्ज नहीं है।"

विभाकर को इस प्रकार के उत्तर की आशा नहीं थी। अपना ही पैसा माँगने में इस प्रकार का व्योहार उसे असह्य था। चित्र गया तो गया पर पैसे के लिए वह किसी के द्वार पर खड़ा नहीं होगा। यह सोचकर बिना एक शब्द बोले वह चुपचाप लौट पड़ा।

"वह अपना चाँदी वाला फ्रेम जड़ा लो तो कैसा हो।" भीतर से किसी स्त्री ने कहा।

"हाँ हाँ ठीक है भीतर के मेज पर होगा। चित्रकार अभी यहीं है।" सेठजी ने कहा और विभाकर से बोले। "ओ भाई, सुनो तो जरा।"

विभाकर लौटा। चित्र और फ्रेम दोनों भीतर से आ गये।

"देखा यह चित्र फ्रेम में लगा दो।"

"साहब" विभाकर के नेत्र चमक उठे। "आप यह चित्र और फ्रेम मुझे दे दें। चित्र को काटना पड़ेगा तब जड़ा जायगा। उसका औजार घर पर है। ठीक करके आपको दे जाऊँगा।"

"हाँ हाँ ठीक है ले जाओ।" सेठ जी ने भीतर पुछवाया इसमें कोई अड़चन तो नहीं है। स्त्री ने अनुमति दे दी। मूल्य की बात छोड़कर विभाकर चित्र और फ्रेम लेकर बाहर आया।

"वह विचार करने लगा।" फ्रेम को बेचकर रख दूँ तो मेरा रुपया निकल आयेगा। मेरा चित्र लिया यह मेरे ऊपर बड़ी कृपा की पर पैसा देने की चिन्ता नहीं है। और फ्रेम में चित्र जड़वाने को कहते हुए जरा भी संकोच नहीं हुआ। क्यों न वह फ्रेम को काम में लाये? वह उत्तेजित हो उठा। उसके नेत्रों में एक प्रकार की चमक आ गई। परन्तु बम्बई में किसी के नेत्रों में बिजली भी जड़ी हो तो किसी को देखने की परवा नहीं होती। कोई बुद्धिमान अपने बुद्धि का, प्रतापी अपने प्रताप का, और अभिमानी अभिमान का कितना भी गहरा प्रभाव अपने चेहरे पर ले आवे, पर उस बुद्धि, प्रताप और अभिमान, को एकदम बेकार कर देने के लिये केवल एक घड़ी बम्बई की किसी सड़क पर घूमना ही काफी है। न जाने

कितने बुद्धिमान, प्रतापी और अभिमानी, सुन्दर और सुन्दरी, धनी और निर्धन, इधर-उधर आते जाते हैं तो फिर इस बेचारे विभाकर की क्या गिनती है ? तो भी उसकी परवाह करने वाला एक मनुष्य उसे मिल ही गया।

"क्यों कहाँ चले ?" एक ऊँचे पठान ने उसे रोक कर पूछा। जहाँ तक अपना स्वार्थ रक्षित है वहीं तक लोग आनन्द में रहते और यह बात पठानों में विशेष रूप से होती है। यह पठान मोहन सेठ के घर कभी-कभी आता जाता था और भैयो के पास बैठ कर घण्टों गप्प लड़ाता। मोहनसेठ से उसका कुछ लेन-देन भी चलता था इससे वह विभाकर को जानता था।

"यों ही ख्वाँ साहब घर ही जा रहा हूँ। आप तो मजे में हैं ?" विभाकर ने पूछा।

"हाँ जी सब खैरियत है।"

"अब सेठ के यहाँ नहीं आते क्या ?"

"क्या आयें सेठ के यहाँ। ऐसा आदमी तो मैंने नहीं देखा। उसके घर कभी आग लगा दूँगा। जाने दो मरे तुम्हारा सेठ, यह क्या है ?"

"यह तो एक चाँदी की चीज है।"

"चीज को ऐसे खुली मत ले जाओ। अँधेरा हो गया है और यह रास्ता बदमाशों का है।"

"इसे गिरो रख कर पैसा लेना है। इसी से बाहर ही रखा है। कोई लेने वाला मिले तो दे दूँ।"

"कितना रुपया चाहिये। मैं यही धन्धा करता हूँ।"

"मुझे पैतालिस रुपयों की जरूरत है किराया देना है मोहन सेठ तकाजा करते हैं।"

"दे दो उस हरामी का किराया। चलो हमारा घर नजदीक ही है। मैं रुपया देता हूँ।"

पठान के साथ जाकर विभाकर ने फ्रेम गिरो रखा और रुपया लिया। घर आकर उसे सुधा से खबर मिली की एक महीने का नहीं छः महीने आगे तक का किराया चुकता हो गया है। वह पुनः विचार में पड़ गया। क्या होगा किराया किसने दिया ?

Love Durga Koul of

NO. WRONG LOVE — Ali Kadal

"वाह अपने संगीत में कैसी विशेषता है, एक-एक स्वर का मेल करता हूँ और मेल से राग निकलता है।" शिरीष तम्बूरा लिये गाते-गाते स्वयं ही बोल उठा।

"किसकी कैसी विशेषता ?" सोहिणी बोली। एक राग का अन्त ही नहीं होता और घण्टे भर आँखें फोड़ बैठे रहो तब तो तुम्हरा गाना जमता है। फिर तुम्हें ही अच्छा लगे ऐसा ही तुम गाते हो इतने में तो मुझे नींद-ना आने लगती है।"

"तुम्हें समझ में भी आता है ?" शिरीष हँसकर बोला।

"भाई मुझे नही समझना है। कितना सिर मगजन है। उस दिन तुम सारङ्ग और दुर्गा का भेद ऐसा समझा रहे थे कि मैंने सीखना ही छोड़ दिया। एक में 'ध' नहीं है तो दूसरे में 'नी' नहीं है तब फिर मेरे लिये दोनों ही नहीं हैं।"

"पर तुम्हें तो मेरा गाना बड़ा अच्छा लगता है। कहती हो मेरे सङ्गीत से ही मोहित होकर तुमने मुझसे विवाह किया ?"

"यही तो बड़ी भूल हो गई !" सोहिणी ने हँसते हुये उत्तर दिया। शिरीष को चिढ़ाने में उसे बड़ा आनन्द आता था, पर शिरीष कभी चिढ़ता ही नहीं था। "तुम कवि हुए होते तो कितना अच्छा था ! अकेले बैठकर तुम्हारी कविता पढ़ा करती।"

"तो तुम कवि हो जाओ। पढ़ी लिखी हो, जो चाहो सो लिखो, और कहोगी तो उसे मासिक पत्रों में भी छपवा दूँगा। तुम्हारे कई मित्र तो बड़े अच्छे कवि हो गये हैं। कविता और लेख लिखते हैं। याद है रसिक ने तुम्हारे पास कविता भेजी।"

"मुझे यह सब अट पट पसन्द नहीं। चाहे तुम जो भी कहो पर कवि और लेखक दोनों भीतर से कन्या राशि वाले होते हैं और गवैये भी इसी श्रेणी में आते हैं।"

"तुम्हारी दुनिया में किसी का भी ठिकाना नहीं।"

"एक आदमी का है !" कहकर तिरछे नेत्रों से सोहिणी ने शिरीष की ओर देखा।

"किसका ?" अपना नाम सुनने की इच्छा से शिरीष ने जल्दी से पूछा।

"लड़ाई करनेवालों का।" सोहिणी ने उत्तर दिया और इसका क्या प्रभाव पड़ता है देखने के लिये शिरीष की ओर देखा।

इस प्रकार की छोटी-छोटी लड़ाई शिरीष और सोहिणी में अकसर हुआ करती थी इनका कोई महत्त्व नहीं था और न इससे दोनों के प्रेम में कमी ही पड़ती थी। दोनों विलग हो ही नहीं सकते थे। परन्तु प्रेमियों की यह भूल उन्हें कौन समझाये ? नाटकीय सम्बोधनों और नाटकीय अभिनयों का समय हमेशा नहीं रहता। प्रेम का प्रथम तूफान अपने समय पर नीचे आता ही है और यह स्वाभाविक भी है। नायक और नायिका तथा वीर और वीरांगना के भाव जन्म भर नहीं रहते। और यदि रह सकते तब ? तब उनकी भयानकता की कल्पना सभी कर सकते हैं—

इसी लिये प्रेमी युगल अकसर सामन्य पति पत्नी की श्रेणी में ही रह जाते हैं। जीवन कलह में पड़कर पति जीविका उपार्जित करने में समय बिताता है और पत्नी उस जीविका का उपयोग करने में लगी रहती है। जीविका उपार्जन करते-करते पति कभी महत्वाकांक्षा में पड़ जाता है और उस आकांक्षा को जीवित रखने में पत्नी का बहुत समय लग जाता है साथ ही साथ कुटुम्ब और समाज की रूढ़ि भी सर पर रहती है। इस प्रकार प्रेम का कवित्वमय जीवन आकाश से उड़ते-उड़ते पृथ्वी पर आ जाता है। प्रेम की व्याख्या परिवर्तित होती रहती है। प्रेम इसीलिये श्रृंगार नहीं वरन् सहकारिता का भाव गिना जाता है।

परन्तु जहाँ जीवन कलह नहीं वहाँ क्या है? जिनको जीविका का प्रश्न हल नहीं करना है उनको क्या है? जिनको किसी सहायता की आवश्यकता नहीं है उनको? वे भी किसलिये श्रृंगारी नहीं रह सकते। वे भी किस कारण से सदैव प्रेमी और प्रमिका ही क्यों नहीं बने रहते? वे भी अहनिश एक दूसरे के सामने बैठे-बैठे क्यों नहीं कवितत्वमय सम्बन्ध स्थापित किया करते?

परन्तु ऐसा होता नहीं यह सब लोग जानते हैं। नहीं तो सभी प्रेमी स्वर्गीय सुख भोगते। प्रेम का स्वर्ग यह केवल कार्य रहित शून्य कल्पना ही नहीं है इसीलिये साधन सम्पन्न वर्ग में, प्रेम बड़ा आडम्बर पूर्ण रूप धारण कर लेता है। ऐसे प्रेमियों को कार्य का क्षेत्र बनाना पड़ता है और उसमें दोनों प्रेमियों को लगना पड़ता है, जीवन कलह का आवाहन करना पड़ता है और आकाँक्षा और कर्त्तव्य इन दो पहियों पर प्रेम का रथ चलाना पड़ता है। नहीं तो प्रेम सूख जाय, विपरीत हो जाय या टूट जाय। शिरीष के जीवन में कार्य नहीं था और उसके साथ सोहिणी का जीवन भी कार्य रहित था। दोनों सुखी थे, परन्तु कार्यविहीन सुख सन्ध्या काल के बादलों के समान मोहक और क्षणिक होता है। सन्ध्या की सुनहली आभा देखते-देखते ही काले पहाड़ों की श्रेणी में छिप जाती है।

यदि दोनों सामान्य वर्ग के होते तो किसी प्रकार जीवन यापन कर लेते। परन्तु सुख और साधन सम्पन्न होने हुये भी प्रत्येक को कभी कभी आकांक्षा का स्वप्न आ ही जाता था।

नीचे से एक छोटा पार्सल सोहिणी के पास आया। लश्करी और लड़ाकू मनुष्यों का सोहिणी की दुनिया में स्थान है यह सोचते-सोचते शिरीष ने ध्रुपद की गत छेड़ी। सोहिणी पार्सल खोलते-खोलते हँस पड़ी।

"अरे क्या है ? क्यों हँसती हो ? किसका पार्सल है ?" शिरीष ने जरा खिसियाने से होकर पूछा।

सुन्दरता और संगीत की निन्दा नहीं होनी चाहिये। और फिर जिनके पास सुन्दरता और संगीत दोनों हों उसके सामने तो निन्दा का विचार ही नहीं आना चाहिये। यह मानव स्वभाव का मर्मस्थल होता है। जरा सी ठेस लगने से कितना गहरा घाव हो जाता है। नहीं कहा जासकता !

"ध्रुपद गाने वालेलड़ाके होते हैं ?" सोहिणी ने पूछा।

"तुम क्यों चिढ़ाने पर तुली हो !"

"मैं तो यों ही पूछती हूँ। और उस दिन गवैये के पास बैठे जो राग सीखते थे वह बैठा या नहीं। याद है सारी गली में कुत्ते इकट्ठा हो गये थे।"

सोहिणी ने संगीत के विषय में अपनी सम्मति दी।

थोड़ी बहुत टीका ही भली लगती है पर यही यदि कुछ गहरी हो जाय तो उसमें कटुता का समावेश हो जाता है और इस कटुता में वैर कहाँ से प्रवेश करता है यह नहीं कहा जा सकता।

साथ ही जिन्हें और कोई विशेष काम नहीं रहता वह इन तीनों रूपों का अनुभव भी शीघ्र कर लेते हैं।

"राग तो अब बैठता जाता है केवल गाना बैठना बाकी है !" अभी भी शिरीष ने शान्ति पूर्वक संगीत का समर्थन किया।

"बहुत अच्छा हुआ" पार्सल ने एक चित्र निकालते हुए सोहिणी बोली।

शिरीष ने कनखियों से उसकी ओर देखा। उस दृष्टि में तिरस्कार था या दया थी यह सोहिणी नहीं समझ सकी। वह चित्र देख रही थी।

"किसका चित्र है?" शिरीष ने पूछा।

"है किसी का वाह क्या सुन्दर चित्र है।"

"देखूँ।"

"ना! दिखाऊँगी नहीं यह मेरी निजी है!"

मानो शिरीष आकाश से गिर पड़ा। उसे झेंप आ गई। उसके नेत्र लाल हो गये। मुख पर सदैव नृत्य करने वाली हँसी विलीन हो गई। सोहिणी ने यह सब देखा और तुरन्त ही उसके हृदय में एक ठेस सी लगी। परन्तु क्षणमात्र में शिरीष की हँसी लौट आई। शिरीष के चेहरे का बहुत बड़ा आकर्षण उसकी हँसी थी। पर तो भी उसके नेत्रों से तिरस्कार और दया भरी घृणा दूर नहीं हुई। उसने धीरे से कहा।

"सोहिणी! तुम्हारा विवाह मुझसे हुआ है यही अच्छा है।"

"क्यों?" सोहिणी के हृदय की धड़कन जरा कम हुई और उसने पूछा।

"तुम्हारा यह व्यवहार दूसरा कोई सहन नहीं कर सकता। अपने कवि या लेखक के पाले पड़ी होती तो क्या परिणाम होता इसकी कल्पना मैं कर सकता हूँ।"

इस वाक्य ने सोहिणी का हृदय चूर-चूर कर दिया। तीव्र स्वाभाव वाली सोहिणी किसी की दया पर अवलम्बित नहीं रह सकती। उसे अपनी शिक्षा, अपने संस्कार, अपने रूप और अपनी उच्चता का पूरा ज्ञान था। यह ज्ञान इतना अधिक हो गया था कि कभी-कभी वह अनजान में शिरीष के आगे भी प्रकट हो जाता था। शिरीष उसे बहुत प्यारा था परन्तु इस प्यार की अधिकता में वह भूल गई थी कि पति सदैव वीर या शृंगारी नहीं रह

सकता। वह कभी सामान्य मानव क्षेत्र में भी आ सकता है और उस क्षेत्र में सामान्य मनुष्यों की कमियों का भी समावेश हो जाता है। शिरीष में उसकी इतनी अधिक श्रद्धा थी कि उसकी धारणा हो गई थी कि वह उससे कभी रुष्ट ही नहीं होगा। अधिकांश में शिरीष के व्यवहार ने भी इस धारणा को पुष्ट कर दिया था। वह कभी अपने ज्ञान में सोहिणी पर क्रोध नहीं करता था। इस वातावरण से उत्पन्न श्रद्धा में सोहिणी एक बात भूल गई। कभी क्रोधित न होने वाला पति भी जब कभी क्रोधित हो जाय तो क्या करना चाहिये इसका उसे ध्यान ही नहीं रह गया था। उसकी धारणा हो गई थी कि पति को क्रोध में न देखना यह पत्नी का जन्मसिद्ध अधिकार है। इसी कारण जब अत्यन्त प्यार और मान पूर्वक रहती हुई सोहिणी, पति के प्रिय विषय संगीत में केवल उसकी प्रसन्नता के हेतु भाग लेती तो वह खिन्न हो जाता था, फिर उस प्रिय विषय पर मजाक करके सोहिणी शिरीष को कितना कष्ट देती है इसकी उसे कुछ भी खबर नहीं थी। इसी कारण शिरीष के मुख से कभी भी कटुशब्द न सुननेवाली सोहिणी को उसके उपरोक्त शब्द बहुत अखरे। वह बोल उठी—

"क्या तुम यह कहना चाहते हो कि वे लोग मुझे मारते ! अच्छी बात है तो तुम भी वही करो और फिर भी देखो कि तुम मुझे कितने अच्छे लगते हो ?"

शिरीष को भी उसकी इस बात की सत्यता का ज्ञान हो गया। अपने शरीर बल की श्रेष्ठता पत्नी पर दिखाना कैसी छोटी बात है। वह चुपचाप पास आकर सोहिणी के बाल सुलझाने लगा और हँसते-हँसते बोला।

"मुझे कभी-कभी यह विचार आता है कि तुम्हारे गोरे शरीर पर एक बेंत लगा दूँ तो कैसा हो ?"

अभी सोहिणी मजाक के लिये तैयार नहीं थी। पति की रसिकता स्वाभाविक रूप से यदि कभी कठोर होती है तो उससे पत्नी को कष्ट होता है पर इसमें कोई दोष नहीं है और रसशास्त्र तो इसकी अनुमति भी देता है।

परन्तु सोहिणी अभी दुखी थी। उसने पति की ओर तिरछी नजरों से देखा। शिरीष हँस रहा था। उसे विश्वास था कि शिरीष केवल हँसी कर रहा है वास्तव में बेंत से पीटेगा नहीं। उसने और भी हिम्मत की तथा रूठना जारी रक्खा और कहा।

"यह आनन्द भी ले लो! भील कोरी भी इस प्रकार कहकर नहीं मारते।"

"पर तुम्हें मारता कौन है? नाहक मुँह फुलाकर बैठी हो जरा शीशे में तो देखो कैसा चेहरा हो गया है।"

उसने उसका मुख शीशे की ओर घुमा दिया। सोहिणी का गुस्सा उतर गया और आँखें झप गईं। उसके मुख पर हँसी आ गई और वह पुनः पहले जैसी तूफानी सोहिणी बन गई।

"चलो भील कोरी की बात जाने दो। चित्र तो दिखाओ।" शिरीष ने विषय बदलने की इच्छा से कहा परन्तु सोहिणी को पुन उसे चिढ़ा कर आनन्द लेने की इच्छा हो उठी। वह बोली—

"नहीं चित्र तो नहीं दिखाऊँगी।"

"अच्छा बता तो दो कि किसका चित्र है।"

"मेरा एक पुराना प्रिय मित्र है उसी का है।"

"तो मुझसे कहने में क्या हरज है।"

"ऐसा सुन्दर है कि तुम्हें ईर्ष्या होगी।"

शिरीष ने सोहिणी का चित्र वाला हाथ पकड़ कर चित्र छीनना चाहा। सोहिणी ने देखा कि चित्र जाना चाहता है तो बोली। "ठहरो, ठहरो अभी दिखाती हूँ घबराओ नहीं।"

शिरीष ने हाथ छोड़ दिया। सोहिणी तुरन्त हरिणी के समान कूद कर दूर खड़ी हो गई। अब वह नहीं पकड़ी जा सकती थी। वहाँ से वह तुरन्त बरामदे में भाग जा सकती है और फिर बाहर घर पकड़ करना ठीक नहीं। शिरीष को एकाध मिनट ललचा कर उसने पूछा।

"ठीक बताऊँ। तुम किसका सोचते हो ?"

"मैं तो किसी का भी नहीं सोचता।"

"देखो यह है।" कह कर सोहिणी ने एक क्षण चित्र दिखाया और पुनः छिपा लिया।

"जाओ ! दिखाना हो तो सीधे से दिखाओ नहीं मुझे नहीं देखना है" कह कर शिरीष झूले पर बैठ झूलने लगा।

"ठीक-ठीक कहूँ चिढ़ोगे तो नहीं।" सोहिणी ने पूछा। उसके नेत्रों में शरारत चमक रही थी।

"हाँ कहो चिढ़ूँगा नहीं।"

"वह तुम्हारी लक्ष्मी है न उसी का चित्र है।"

"क्या ? क्या कहती हो ?" उतावली से शिरीष ने पूछा।

"वही तुम्हारी लक्ष्मी।"

"मेरी कौन ?"

"चित्र में लिखा है, पढ़ती हूँ।"

"झूठ, तुम लक्ष्मी को कैसे पहचानती हो।"

"क्यों नहीं पहचानती। वही जो खूब नाचती है। तुमसे खूब पटती है। मैं बाबूजी को यह चित्र दे आती हूँ।" कहती हुई सोहिणी बाहर निकल गई।

शिरीष चौंका। अगर लक्ष्मी का ही चित्र हुआ तो। और बाबूजी को यह बदमाश छोकरी बता देगी तो। अच्छा अपने मित्र का चित्र छिपाने के लिये तो शायद यह तूफान नहीं है। इन विपरीत विचारों ने शिरीष को विकल कर दिया। वह वहीं बैठ रहा। बाहर सोहिणी ने भी उसकी राह देखी। उसे विश्वास था कि शिरीष उसके पीछे आवेगा। धर्मपालको जब वह चित्र देगी तो शिरीष की क्या दशा होगी इसकी कल्पना करती हुई वह मन्दिर में गई। परन्तु शिरीष पीछे नहीं आया। सोहिणी को मान करने

की इच्छा नहीं थी तो भी वह शिरीष के पास न लौट कर मन्दिर में गई और धर्मपाल को चित्र दे दिया।

———

—१२—

एक दिन प्रातःकाल धर्मपाल स्नान कर मन्दिर में बैठे थे। अशोक की अनुपस्थिति में उन्हें भगवद्भक्ति भी अपूर्ण लगती थी। उन्होंने अशोक को बुलवाया। थोड़ी देर में सोहिणी आकर उसे मन्दिर में बैठा गई। अभी यद्यपि अशोक बहुत छोटा था तो भी उसने अपने शरीर पर छापा तिलक लगवा लिया। उसे अपने दादा के इस कार्य में बड़ा आनन्द आता था और वह प्रसन्नता से मन्दिर में बैठा रहता। भला जिस मन्दिर में बादाम, शक्कर, दूध और मिश्री का भोग लगे वह बालकों को क्यों न पसन्द आये! अशोक अपनी इतनी सेवा देखकर अपने को बहुत बड़ा आदमी समझ कर चुपचाप अपने दादा के कार्यों का निरीक्षण किया करता।

सोहिणी ने आकर धर्मपाल के हाथ में एक चित्र दिया।

"भगवान का एक चित्र मैंने मँगाया है।" उसने कहा। यद्यपि धर्मपाल लज्जा पद्धति के पक्षपाती थे तथापि अपनी पुत्रवधू के लिये उनमें भी अपवाद था।

"बहुत अच्छा किया। मेरे लिये तो एक कृष्ण भगवान हैं और दूसरे अशोक भगवान् हैं। क्यों ठीक है न।" उन्होंने अशोक की सम्मति पूछी। अशोक ने गम्भीरता से हाँ कहा। सोहिणी हँसने लगी। इतने में पीछे से शिरीष और सुकुमार आये। सुकुमार ने धर्मपाल को नमस्कार किया।

"आइये डाक्टर साहब, एक चित्र देख रहा हूँ मोहिणी ने मुझे दिया है।" धर्मपाल ने चित्र देखते हुए कहा।

शिरीष के नेत्र घूम गये। मोहिणी तिरछी नजरों से देखकर मुस्कराई उस मुस्कराहट ने शिरीष के शरीर में आग लगा दी।

"आखिर चित्र दिखा ही दिया।" उसने अपने मन में प्रश्न किया और चुपचाप वहाँ से चला गया। जाते-जाते उसने पिता के शब्द सुने "हे प्रभु तुम्हारी कृपा अगाध है।"

भगवान का स्मरण अधिकतर निःश्वास के साथ होता है। प्रभु शब्द आनन्द और उल्लास पूर्वक उच्चारण करने वाले लोग कम होते हैं। और प्रभु को भी इसका अनुभव कम ही होता है कि कोई उनका स्मरण आनन्द में होकर करे। चित्र देखकर धर्मपाल के प्रभु स्मरण से शिरीष को विश्वास हो गया कि अवश्य ही चित्र लक्ष्मी का ही है नहीं तो इस प्रकार दुःखमय उद्‌गार पिता क्यों करते?

मोहिणी से उसे एकदम घृणा हो गई। उसका मोहक सौन्दर्य, उसकी अनुपम छटा और जादू भरी चितवन सब एक साथ शिरीष के ध्यान से बाहर हो गये। वह एक चुगलखोर और उसके भोलेपन से अनुचित लाभ उठाने वाली सामान्य नारी के रूप में बदल गई। शिरीष का हृदय भारी हो गया। उसके सुखी संसार में खिन्नता प्रवेश कर गई और यद्यपि वह असामान्य स्त्री का असामान्य पति था, उसके पास असाधारण सुख साधन थे तथापि संसार उसे विष के समान लगने लगा। वह सोचने लगा। "मोहिणी से लक्ष्मी किस बात में कम है? विवाह करके क्लेश देने वाली नारी क्यों निम्न है?" उसने एक पत्र लिखा। उसका जी कुछ हल्का हुआ और वह चुपचाप अपने बालों की सफाई में लग गया।

धर्मपाल के भावुक हृदय में चित्र देखकर अपूर्व करुणा का उदय हुआ और उसमें डाक्टर को भी भागी बनाने की इच्छा से उन्होंने सकुमार से कहा।

"देखिये डाक्टर साहब" उन्होंने सुकुमार को चित्र दिया। विलायती डाक्टर को मन्दिर में जाने की रुकावट नहीं थी। सुकुमार ने चित्र लेकर देखा। भगवान कृष्ण की कोई अलौकिक मूर्ति उसमें चित्रित थी। डाक्टर को चित्र-कला का शौक नहीं था इससे वह उसकी आलोचना करने का दावा तो नहीं कर सकते थे, तथापि ऐसा सुन्दर चित्र उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था और इस चित्र को देख कर उनके हृदय में कृष्ण की एक अलौकिक कल्पना का आविर्भाव हुआ। चित्र के नीचे विभाकर का नाम लिखा था।

"बहुत सुन्दर है। ऐसा चित्र मैंने कभी नहीं देखा था।" उन्होंने धर्मपाल को चित्र वापस कर दिया। धर्मपाल गाने लगे।

उनका मीठा स्वर मन्दिर में गूँजने लगा। यद्यपि गाने में कोई विशेष सुन्दर भाव नहीं था तथापि जिस भक्ति भाव से वह गा रहे थे वह अवश्य अलौकिक था। कृष्ण के स्वभाविक सौन्दर्य वर्णन में इतनी अधिक विह्वलता समाई थी कि धर्मपाल के नेत्रों में आँसू आ गये और सोहिणी तथा डाक्टर सुकुमार दोनों मूर्तिवत् चुपचाप ताकने लगे। दादा जी भजन गावें तो ताली बजाना उसका परम धर्म है यह बात अशोक भली-भांति समझ गया था इससे वह अपने नन्हें-नन्हें हाथों से अविराम ताली बजाता था। पर उसकी ओर किसी का ध्यान नहीं था। सोहिणी और सुकुमार दोनों ईश्वर के लिये अश्रुपूर्ण भक्ति का भाव समझने की चेष्टा कर रहे थे। दोनों ने यह समझा कि ईश्वर के नाम का उच्चारण करने से मनुष्य किसी ऊँची श्रेणी में पहुँच जाता है। गाना समाप्त कर धर्मपाल ने पूछा—

"सोहिणी! यह भगवान का चित्र कहां से आया है।"

"मेरी बहन ने भेजा है।"

"कौन? वीणा ने भेजा है?"

"हाँ आपके लिये ही विशेष आग्रह से भेजा है।"

"लड़की बड़ी समझदार है। उसे हमारा आशीर्वाद लिख देना और प्रसाद भी भेज देना। और क्या भेजना होगा......अच्छा कुछ नहीं दूसरा जो कुछ भेजना होगा वह समय पर मैं स्वयं भेजूँगा।"

अशोक ने सुना कि उसके प्रसाद में कोई हिस्सा बटाने वाला पैदा हो गया तो उसने ताली बजाना बन्द कर दिया। कीर्तन समाप्त होने पर ताली भी बन्द हो जाती है यह उसे अभी किसी ने नहीं समझाया था। इस कारण वह अभी तक ताली बजाता ही जाता था। ताली बन्द होते ही दादा का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ और उसमें कृष्ण के बाल-रूप का प्रतीक देख कर अत्यन्त विह्वल भाव से उन्होंने उसे गोद में उठा लिया और उसके बालों में हाथ फेरते हुये पुकार उठे।

"मेरे बालकृष्ण। मेरे कन्हैया?"

"पाजी कैसा गोद में घुस गया। आज मालूम होता है बहुत प्रसाद खाया है। निकलो बाहर तो मैं तुम्हारा पेट चीरता हूँ।" डाक्टर ने अशोक को चिढ़ाया।

परन्तु अशोक जब दादा की छाया में रहता तो उसे किसी का भी भय नहीं होता था। धर्मपाल भी हँसने लगे। एकाएक उन्हें कोई विचार आया।

'हाँ डाक्टर साहब इस चित्रकार से अपने अशोक का भी चित्र बनवाया जाय तो कैसा हो?"

"ठीक तो है। मैं इस चित्रकार को जानता हूँ। सारे गुजरात में प्रसिद्ध हो जाने योग्य चित्रकार है। आप कहें तो मैं बुलवाऊँ।" डाक्टर ने सम्मति दी।

"वाह डाक्टर साहब आप भी क्या कहते हैं।" सौदिणी ने कहा। दादा का प्यार और डाक्टर की अजानता दोनों उसे हास्यास्पद मालूम हुये! "इस प्रकार कहीं चित्र बनता है इसकी तो तस्वीर बनवानी होगी। चित्रकार अपनी कल्पना से चित्र बनाता है कि वास्तविक मनुष्य का चित्र बनाता है?"

"नहीं-नहीं अपने अशोक का चित्र नहीं बनायेगा तो फिर किस काम का और जब तुम्हारे कैमरे का आविष्कार नहीं हुआ था तब कैसे लोगों के चित्र बनते थे ! गोस्वामीजी महाराज का चित्र है न ?" धर्मपाल बोले ।

"पर यह चिबिल्ला शान्त होकर चित्रकार के पास बैठा भी रहेगा ?" सोहिणी ने कहा ।

"हाँ हाँ एक बार उसे बुलाना चाहिये । मैं आज ही लिख दूँगा ?" डाक्टर ने कहा ।

"और अपने मन्दिर के भी चित्र खराब हो चले हैं उन्हें भी ठीक कराना होगा ।" धर्मपाल ने उत्तर दिया ।

"और मुझे अपने दवाखाने में भी कुछ चित्र बनवाने हैं ।" डाक्टर साहब बोले ।

"एक दिन आपका दवाखाना देखना है ! अब तो काफी लोग आते होंगे ?"

"हमारी खास प्रार्थना है कि आप एक बार हमारे दवाखाने में अवश्य पधारें । आपकी हवेली, बाग और मन्दिर का खूब उपयोग होता है ।"

"ऐसी बात है ? लोग दर्शन करने आते हैं ?" भावुक धर्मपाल ने पूछा । दवाखाने के बहाने यदि लोग प्रभु दर्शन करने आवें तो वह ऐसे अनेक दवाखाने बनवाने को तैयार थे ।

"और अपना गवैया तो ऐसा है कि रोगियों को उसका गाना सुनने के लिये थोड़ी देर रुकना भी अच्छा लगता है ।"

"ठीक है ईश्वर के नाम से बढ़कर कोई औषधि नहीं है शायद इसी से तो तुमने दवाखाना और मन्दिर एक कर रक्खा है ।"

"हमारा भी यही विश्वास है । दवाखाने को मन्दिर बना दिया जाय और मन्दिर को दवाखाना । इन दोनों का भेद मिट जाय और देव मन्दिर आरोग्य मन्दिर हो जायँ यही हमारी अभिलाषा है ।"

डाक्टर के निर्दोष कटाक्ष और बेकार की बातें सुनने की सोहिणी को आदत पड़ गई थी। उसने डाक्टर की ओर देखा पर उसके मुख पर सत्य का प्रकाश चमक रहा था।

"तब तो भाई तुम आस्तिक हो। अपना शिरीष ऐसा नहीं है। अंग्रेजी शिक्षा मनुष्य को श्रद्धालु नहीं बनाती। अपने अशोक को तो मैं अंग्रेजी नहीं पढ़ाऊँगा। हाँ बेटा अंग्रेजी मत पढ़ना।"

दादा की प्रत्येक बात में अपनी राय देने वाले अशोक ने स्वीकृति दी। शिरीष चिढ़ कर क्रोध में चला गया था इसका ध्यान सोहिणी को अब आया। उसने चित्र धर्मपाल को दे दिया और चित्र लक्ष्मी का है यह कह कर शिरीष को चिढ़ाया था। उसे अधिक देर तक चिढ़ा रखने की आदत नहीं थी। थोड़ी देर तक चिढ़ा कर फिर मना लेती थी। उसे खयाल ही नहीं था कि इस प्रकार की छोटी-छोटी बातें तथा आपस की नासमझी इकट्ठा होकर कैसा भीषण रूप धारण करती हैं। सुकुमार और धर्मपाल को बातें करते छोड़ वह तुरन्त अपने कमरे में गई। भीतर शतरंजी पर बैठा हुआ शिरीष अपने बाजे साफ कर रहा था।

सोहिणी की पदध्वनि को शिरीष खूब पहचानता था। किसी दूसरे अवसर पर वह तुरन्त घूम कर पीछे देखता पर इस समय उधर जरा भी ध्यान न देकर वह चुपचाप सितार ठीक करने में ही लगा रहा। उसके सामने बड़ा सा दर्पण लगा था। सोहिणी आकर उसके पीछे खड़ी हो गई। दोनों के प्रतिबिम्ब शीशे में पड़ रहे थे। पर शिरीष ने उसे देखने की भी चेष्टा नहीं की। सोहिणी हँसी।

वह अपने अँगुलियों से शिरीष के बाल ठीक करने लगी। शिरीष के काले घुँघराले बाल सोहिणी के अभिमान की वस्तु थे। पर तो भी शिरीष ने इस समय ऐसी लापरवाही प्रकट की मानो वहाँ सोहिणी का अस्तित्व ही नहीं था। सोहिणी को अब विचार हुआ कि शिरीष बहुत बुरा मान गया है और इस बुरा मानने का कारण स्मरण कर उसे अपना अपराध भी

स्मरण हुआ। पर उस अपराध का इतना बड़ा दण्ड उसका पारे जैसा चंचल स्वभाव कैसे स्वीकार कर सकता था?

"ओहो इसमें इतना बुरा लग गया?" इस प्रकार मन में सोच कर सोहिणी ने मुँह बनाया। अकस्मात शिरीष ने शीशे में देखा। इस प्रकार मुँह बनाने की आदत पत्नी में पैदा करने के लिये अधिकांश में पति ही उत्तरदायी होता है। परन्तु सामान्य जीवन में—नित्य जीवन में सभी गुण और दोष से पूर्ण मुख देखने बैठना किसे अच्छा लगता है? शिरीष ने समझा कि अभी सोहिणी की मस्ती गई नहीं है। आज उसने उसे पूर्ण-रूप से शिक्षा देना तय किया था। वह हँसा। हास्य में भी विष होता है इसका परखना बड़ा कठिन है। शिरीष को हँसते देख कर सोहिणी भी हँसी। वह तो हँसने के लिये ही व्याकुल थी।

"वह टेबुल पर पत्र है उसे डाक में भेज दो।" शिरीष ने कहा। नित्य की भाँति खिन्नता और रोष अब दूर हो गया है यह समझ कर हर्ष से सोहिणी ने पत्र उठाया। पर पत्र उठाते ही उसका सारा हर्ष काफूर हो गया। पत्र के पते पर उसकी दृष्टि गई। प्रातःकाल की अपनी नसखरी भूल कर क्रुद्ध हो गई।

"किसको पत्र लिखा है?"

है एक परिचित।

"ऐसी बात है! क्या मैं इस पते को नहीं जानती?"

"तो फिर मुझसे क्या पूछती हो। किसको पत्र लिखा है यह तुम सहज ही समझ सकती हो।"

"तुमने तो मुझसे कहा था कि लक्ष्मी के साथ तुम्हारा कुछ भी पत्र-व्यहार नहीं है।"

"जब कहा था उस समय तो नहीं था पर जब आज उसने अपना चित्र भेजा है तो उसका उत्तर देना तो आवश्यक है। मैंने उसे यहाँ आने के लिये लिखा है।"

पत्र वहीं फेंक कर सोहिणी बाहर चली गई। शिरीष ने मन में कहा—

"कितनी ईर्ष्या है ?"

—१३—

"लक्ष्मी कौन है यह भी जानती हो तुम या योंही झगड़ा करती हो ?"

डाक्टर सुकुमार बाग में खड़े बेंच पर बैठी हुई सोहिणी से बातें कर रहे थे। सोहिणी के नेत्र लाल हो गये थे। ऐसा जान पड़ता था कि अधिक रोने से और गुस्से के कारण लाल हो गये हैं।

"मुझे जानने की जरा भी जरूरत नहीं है। मैं तो तुमसे इतना ही कहती हूँ कि अब मैं यहाँ रह नहीं सकती। आठ-आठ दिन हो गये और कुछ भी समाचार नहीं मिला। अगर मैं मन से उतर गई हूँ तो फिर मेरा यहाँ क्या काम है।" सोहिणी ने उत्तर दिया।

"यह लो हमारा पत्र। शिरीष जहाँ है बड़े आनन्द से है।" कहकर डाक्टर ने जेब में हाथ डाला।

"मुझे वह चिठ्ठी नहीं देखना है वह तुमको लिखी गई है।" सोहिणी ने पत्र लेना अस्वीकार कर दिया।

आठ दिन से पति परदेश गया हो और कोई पत्र न लिखे। फिर

अपने मित्र को लिखे और उसे नहीं यह कभी किसी स्वाभिमानी स्त्री को कैसे सहन हो सकता है ?

"तो फिर कोई चिन्ता न करो। गये हैं जरा तबियत बहल जायगी।"

"उनकी तो तबीयत बहल जायगी पर मुझे यहाँ क्या हो रहा है इसकी किसे खबर है।"

कह कर सोहिणी नीचे देखने लगी। सुकुमार ने देखा कि उसके आँसू बाहर निकलने के लिये उतावले हो रहे हैं। उसे सोहिणी पर बड़ी दया आई। अपने मनमें उसने विचार किया कि अविवाहित रह कर उसने बड़ा अच्छा किया है। वह कोमल शब्दों में सोहिणी को समझाने लगा।

"सोहिणी बहन तुमसे कनक ने कालेज में क्या कहा था याद है ?"

"कनक तो बदमाश है।"

"मैं तो बदमाश नहीं हूँ ?"

"तो इससे क्या ?" जरा हँस कर सोहिणी ने पूछा।

"तो फिर मैंने जो कहा था याद है।"

सुकुमार ने क्या कहा था यह सोहिणी को याद था। शिरीष और सोहिणी दोनों के सम्मुख उनके विवाह के विषय में अपनी सम्मति देते हुये उसने कहा था।

"यदि तुम दोनों अविवाहित रहोगे तो सारे संसार में पूज्य होगे पर विवाह करके सामान्य मनुष्यों की श्रेणी में ही आ जाओगे।"

उस समय सुकुमार की इस विचित्र बात ने हास्य उत्पन्न कर दिया था। सुकुमार स्वयं भी हँसने लगा था। परन्तु तो भी किसी को यह बात भूली नहीं थी और आज पुनः सुकुमार ने उसे याद दिला दी। इसे स्मरण आते ही सोहिणी ने मन में प्रश्न किया।

"ब्याह कर वह पागल तो नहीं हो गई है पराधीन हो गई है ?"

एकाएक बाग का द्वार खुला और कोई युवक आता हुआ दिखाई

पड़ा। दोनों ने उस ओर देखा। किसी बीमार का ख्याल करके सुकुमार ने उसे अपनी ओर आने का संकेत किया। निकट आने पर वह कोई बीमार नहीं जान पड़ा। गौरवर्ण का संस्कारी और स्वरूपवान युवक था। परन्तु उसके चेहरे मे कोई अजीब खिन्नता प्रकट हो रही थी। इस प्रकार की खिन्नता या तो किसी लम्बी यात्रा के बाद आती है या किसी निकट सम्बन्धी के रोग ग्रस्त होने पर आती है। वह एक हाथ में लोहे का सूटकेस लिये था। ऐसे युवक के पास तो कोई सुन्दर चमड़े का सूटकेस होना चाहिये था, परन्तु पता नहीं सादगी के कारण या अभाव के कारण उसने लोहे का बड़ा सा सूटकेस ले रक्खा था।

"कहाँ से आ रहे हो?" सुकुमार ने पूछा।

"जी! मैं बम्बई से आ रहा हूँ।"

"शायद मैंने तुम्हें कहीं देखा है।"

"हाँ हाँ! आप कनक भाई के यहाँ गये थे वहाँ बृजमोहन सेठ के यहाँ आपने मुझे देखा था।"

"अच्छा तो तुम विभाकर चित्रकार हो।"

विभाकर ने हाँ कहा पर उसके चेहरे की खिन्नता उसी भांति वर्तमान थी।

"इन्हीं को तो हम लोगों ने बुलाया था। हमारी वीणा से मिले थे या नहीं।" सोहिणी ने पूछा।

धर्मपाल की आज्ञानुसार सोहिणी ने वीणा को और सुकुमार ने कनक को लिखा था कि भागवत के चित्र ठीक करने के लिये तथा अशोक का चित्र बनाने के लिये विभाकर को भेज दें। इस बात को बहुत दिन हो गये और चित्रकार आयेगा या नहीं यह ध्यान ही नहीं रह गया था। दो बार वीणा ने लिखा था कि चित्रकार मिलता नहीं। एक दो बार कनक ने भी लिखा था कि वह तो मारा-मारा फिरता है और किसी मामले में फँस गया है इस कारण वह उसे धर्मपाल जैसे प्रतिष्ठित आदमी के यहाँ भेजना

ठीक नहीं समझता। इसलिये यह बात मन को एकदम भूल-सी गई थी। आज अचानक वह आ गया। उसके आगमन ने सोहिणी के खिन्न हृदय को शान्त किया। उसने अपनी प्रिय बहन वीणा का समाचार पूछा।

"हाँ मिली था और उन्हीं के कहने पर यहाँ आया हूँ।" विभाकर ने उत्तर दिया।

बँगले में प्रवेश करते ही वीणा जैसी आकृति देख कर उसके मन में सन्देह हुआ था पर निकट आने पर उसने कुछ परिवर्तित चेहरा देखा। उसने वीणा से अधिक भरा हुआ स्वस्थ और सुन्दर सोहिणी का चेहरा देखा। वह राधा का प्रतीक खोजता था। वीणा को देख कर उसने सोचा था कि यह बालिका उसकी काल्पनिक राधा से कुछ मिलती है। उसका मुख और उसकी गढ़न उसके नेत्रों में रम गई थी। वह अपने कल्पना को चित्रित करने के लिये व्याकुल हो रहा था। परन्तु इस संसार में दरिद्रता से बढ़ कर कोई पाप नहीं है और पापी स्वतंत्र किस प्रकार रह सकता है? इसी दरिद्रता के गुनाह में फँसे हुए चित्रकार को राधा के चित्र बनाने की भी स्वतंत्रता नहीं थी। आज उसने सोहिणी को देखा। वीणा की सम्पूर्णता सोहिणी में उसने पाई। उसे देख कर उसके भावनामय हृदय को बड़ी तृप्ति प्राप्त हुई। कदाचित् मेघदूत की कल्पना करते हुये कालिदास को जो आनन्द आया होगा वही आनन्द सोहिणी को देख कर विभाकर ने पाया। उसकी प्रखर कल्पना ने क्षण मात्र में अनेक दृश्य चित्रित कर डाले। उसका मुख मण्डल दीप्तिमान हो उठा।

"तो तुम्हें यहाँ अच्छा लगेगा। चलो तुम्हारे रहने का स्थान बता दूँ। तुम्हारे कृष्ण ने तो यहाँ सभी को मोहित कर लिया है।"

अपनी प्रशंसा किसे प्रिय नहीं होती। कठोर से कठोर आत्मनिरीक्षक भी कभी-कभी अपनी प्रशंसा के प्रवाह में बहने लगता है। चित्रकार विभाकर को इस प्रकार प्रशंसा करने वाला अभी तक कोई नहीं मिला था और उस पर भी ऐसी सुन्दरी युवती के मुख से प्रशंसा सुनने के लिये

तो युवक समुदाय सब कुछ अर्पण करने को तैयार रहता है। विभाकर इस प्रकार रोहिणी के पीछे चला जैसे अपनी दरिद्रावस्था को छोड़कर वह किसी नवीन दुनियाँ में प्रवेश कर रहा हो। सुकुमार भी कुछ सोचता हुआ चला।

घर में घुसते ही सामने चौड़ा ओसारा और फिर उसके बाद दीवानखाना था। पर अधिकतर ओसारा ही दीवानखाने के काम आता था। एक ओर तीन चार मुनीम बही खाता लिख रहे थे। सामने एक बड़ी गद्दी बिछी थी और दो तीन मोटे तकिये रखे थे। इस पर प्रधान मुनीम बैठे थे। उनके सामने एक छोटी चौकी पर एक सुन्दर गद्दी और थी जिस पर दो तीन मखमली तकिये पड़े थे। इस पर धर्मपाल बैठते और अपने मुलाकातियों को बैठाते थे। इधर-उधर दो एक कुर्सी भी पड़ी थी तथा पीछे पीतल की सिकडी मे लटकता एक झूला भी पड़ा था। धर्मपाल को झूला बहुत पसन्द था और कभी-कभी काम मे खाली होने पर वह उस पर बैठकर भजन या श्लोक गाया करते थे।

मुनीम एक गोरा, मोटा ताजा मनुष्य था। उसकी छोटी पर तेज आँखें देखते ही लोगों की भावना समझ लेती थी। वह बात-चीत करने में बड़ा पटु था। धर्मपाल से अधिक सब मुनीम से डरते थे। वह कभी-कभी धर्मपाल को भी कुछ कड़े शब्द कह देता था। धर्मपाल जितने ही उदार थे उतना ही अनुदार वह मुनीम था। एक पैसा भी निकालते समय लाल आँखें कर लेता था। उससे कुछ माँगना बड़ी हिम्मत का काम था। जिस किसी को उसके पास से दक्षिणा या इनाम मिलना होता उसकी पूरी शामत आ जाती थी। माँगने वालों पर वह खूब बिगड़ता था।

धर्मपाल से यह बातें छिपी नहीं थीं। परन्तु मुनीम के दोष एक प्रकार से उनके लिए गुण के ही समान थे। इसके सिवा मुनीम की विश्वास-पात्रता, धर्मपाल के कुटुम्ब के लिए उसका प्रेम तथा उसकी असामान्य व्यापार कुशलता उसके सभी दोषों को दबा देते थे। उसने निजी तौर

पर एक पैसा भी व्यय नहीं किया था और न स्वयं किसी वस्तु का प्रयोग करता था। इनाम को वह हराम का पैसा समझता था। तथा धर्मपाल के देने पर भी कभी इनाम नहीं लेता था।

"पैसा मुफ्त में नहीं आता साहेब।" मुनीम कहता।

धर्मपाल हँसने लगते। मानों किसी दूसरे दरिद्र को पैसा दिया जा रहा है। वे कहते—

"अरे भले मानस यह तो तुम्हें ही दिया जा रहा है?"

"मुझे देना है या आपको देना है, पर इस प्रकार पैसा फेंकना नहीं हो सकता। मेरे हाथों से तो ऐसा कभी नहीं होगा।"

"पर इस समय मैं तुम्हें इनाम दूँगा ही बोलो क्या कहते हो?"

"आप अपने धन के स्वयं मालिक हैं पर बही पर हमारी सही नहीं होगी, इस घर में चाकरी करते मैं बुड्ढा हो गया। बहुत पाया। जानते है इस वर्ष इनाम में कितनी रकम खर्च हो गई है?"

"मुझे नहीं जानना है। लाओ बही इधर मैं अपने हाथ से इनाम की सही कर दूँ।" यह कहकर धर्मपाल स्वयं इनाम की रक़म लिख देते पर यह रकम कभी मुनीम के घर नहीं जाती थी और वहीं पड़ी-पड़ी ब्याज से बढ़ती ही जाती थी। कई बार व्यापार में धर्मपाल मुनीम का भी साझा लगाते और नफे में उसका हिस्सा अलग करते। जब से उनका व्यापार मुनीम के हाथों में आया तब से घाटा क्या है यह कोई जानता ही नहीं था।

मुनीम बड़े विचार पूर्वक कार्य करता था। व्यापार में कभी-कभी बड़ी हिम्मत का भी काम करता था। आवश्यकता पड़ने पर बहुत आगे बढ़ जाता था। बनियों और व्यापारियों में वीरता का अभाव होता है यह कहना बड़ी भारी भूल है। उनकी वीरता देखने के लिए व्यापारी को देखिये। वह लाखों की जायदाद पैदा कर सकता है तो उसे लुटा भी सकता है। दो चार रुपये खर्चकर अपने को शाहखर्च मानने वाले नौकरी

See page 130

पेशा लोग केवल व्यापार में लाख देना और लाख पाना होता है इसकी कल्पना ही कर उनकी वीरता का अनुभव कर सकेंगे। व्यापारियों का साहस अपूर्व मर्दानगी का तकाजा करती है। खरा व्यापारी पाँच पचीस की परवाह नहीं करता। उसके लिये तो लाख का लेखा होता है फिर चाहे पीछे लाभ हो या हानि।

धर्मपाल दो एक बार कठिन परिस्थिति में पड़ गये थे। पर उस समय उनका मुनीम नहीं घबराया था। ऐसे समय में उसके मुख पर अपूर्व तेज छा जाता था। धर्मपाल के किसी प्रतिद्वंदी ने धर्मपाल के दिवाले की खबर उड़ा दी। सभी पावनेवाले और व्यापारी घबरा उठे। शाम होते होते पन्द्रह लाख की माग आ गई। मुनीम ने बिना किसी चिन्ता के सभी को दूसरे दिन सुबह बुलाया। केवल एक रात के भीतर पन्द्रह लाख रुपया इकट्ठा करना था। किस प्रकार होगा धर्मपाल इसी चिन्ता में पड़ गये। नहीं होने से इज्जत चली जायगी। करोड़ों की जायदाद पड़ी है पर "इस समय जायदाद पर कौन रुपया देगा?" अपना रुपया बाजार में फँसा है। क्या करें। उनकी धर्मबुद्धि केवल हरि स्मरण करने लगी। उन्होंने मुनीम को अलग बुलाकर कहा।

"भाई सवेरे तो तुम सबको बुला रहे हो पर दोगे कहाँ से?"

"इसकी आपको चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। धर्मपाल की साख पर मैं बादशाहत खड़ी कर सकता हूँ।" मोछ पर ताव देकर मुनीम ने कहा।

"पर रात ही रात में कैसे होगा?"

"अरे रात ही रात क्य." युद्ध विजयी योद्धा की भाँति मुनीम बोला। "अभी घंटे भर में खबर करता हूँ कि पन्द्रह लाख तैयार है। साहब आप जरा भी चिन्ता न करें।"

पर धर्मपाल की चिन्ता दूर नहीं हुई। वे मन्दिर में जाकर गवैये से भजन गवाने लगे।

"नाथ जैसे गज को बन्ध छुड़ायो।"

भजन सुनते-सुनते धर्मपाल सारी चिन्ता भूलकर उसी में रम गये। उनके आस्तिक हृदय से यह बात भी दूर हो गई कि उन्हें प्रातःकाल पन्द्रह लाख का देना है। एक घण्टा बीत गया और अपने वचनानुसार मुनीम धर्मपाल को खोजता हुआ मन्दिर में आया। अपने मालिक को इस प्रकार प्रेम में मग्न देखकर उसे श्रद्धा हुई। उसे विश्वास हो गया कि वास्तव में भगवान उनकी मदद करते हैं। उसने स्वयं इस कार्य को किया है, इस प्रकार कहने की इच्छा ही दब गई। गाना समाप्त होने तक वह चुपचाप धर्मपाल के पीछे खड़ा रहा। चैतन्य होने पर धर्मपाल ने पीछे देखा।

"काम हो गया।"

"सब ?" धर्मपाल ने पूछा।

"हाँ साहब सब रुपया हमारे हाथ में है। इस समय माँगे तो अभी गिन दूँ।"

"आखिर भगवान हमारे ही हैं न ?" धर्मपाल ने प्रसन्न होकर सारा यश प्रभु को समर्पण कर दिया। मुनीम को जरा भी बुरा न लगा। जिस प्रकार धर्मपाल को व्यापार में अपने मुनीम की कार्य-कुशलता और वफादारी पर विश्वास था उसी प्रकार मुनीम को भी धर्मपाल की ईश्वर भक्ति पर विश्वास था। उसकी धारणा थी कि व्यापार में जितनी उसकी बुद्धि काम करती है उतनी धर्मपाल की ईश्वर भक्ति भी काम करती है।

दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय से पहले ही आकर मुनीम अपनी गद्दी पर बैठ गया। पावनेदारों की भीड़ आने लगी। उसने सबको धैर्य देकर ओसारे में गद्दी पर और दीवान खाने में बैठाया। सबसे अधिक अधीर कौन है यह उसे मालूम था। पगड़ी उतार कुरते को आस्तीन ऊपर सरकाकर मुनीम जमकर बैठ गया और रुपयों की थैली माँगी, पावनेदारों को बुलाया। एक समाप्त होते ही झट दूसरा माँगता।

"चलो जल्दी लाओ ! देर करते हो ?" गुमास्तों को हुकम देता ।

बही लिखाती जाती और रुपया बँटता जाता । दो घण्टे तक इसी प्रकार चलता रहा । लोगों ने देखा कि थैली आती ही जाती है और मुनीम चुपचाप रुपया बाँटता जा रहा है । न तो छोटी रकम देते उसे कोई संकोच होता और न बड़ी रकम देते हुये कोई क्षोभ । हर प्रकार का पावना वह देता जा रहा था और झूले पर बैठे धर्मपाल यह सब व्यापार चुपचाप देख रहे थे । धीरे-धीरे जान पहचान के पावनेदार धर्मपाल के पास आकर बैठ गये । पर धर्मपाल के पास सिवा भक्ति के और क्या था ? सबने समझ लिया कि गद्दी साखदार है, धर्मपाल किसी को लौटायेंगे नहीं ।

गुमास्तों ने भीड़ देख कर कहा । "जिसे मिल चुका है वह चलो, भीड़ हटाओ ।"

"नहीं, नहीं, किसी को अभी जाने मत दो ।" धर्मपाल बोले ।

"क्यों ?"

"भगवान का प्रसाद लिये बिना कोई जाने नहीं पायेगा । सेठजी ने मना किया है ।" मुनीम ने कहा और लोगों पर क्या प्रभाव पड़ा यह देखने के लिये ऊपर नजर उठाई । लोग चकित हो गये । रुपया भी मिलता जा रहा है और आतिथ्य की भी तजवीज हो रही है । दूध के कटोरे लोगों में बँटने लगे । जो अस्वीकार करता उससे धर्मपाल कहते—

"भाई मेरी चीज हो तो मत लो यह तो भगवान का प्रसाद है ।" दूध पीकर लोग शान्त हुये । एक पावनेदार ने रुपया लेना अस्वीकार किया ।

"रहने दीजिये कभी आवश्यक होने पर ले लूँगा ।"

"देखिये पीछे कोई उभाड़ेगा तो पछताइयेगा ।" मुनीम ने ताना दिया । वह लज्जित हो गया और आग्रहपूर्वक अस्वीकार कर दिया । एक ने अस्वीकार किया तो फिर औरों ने भी वही किया । इस प्रकार जिस-जिस

ने रुपया नहीं पाया था सभी ने अस्वीकार कर दिया। जो लोग पा चुके थे वे बड़े लज्जित हुये। सब आपस में धीरे-धीरे बातें करने लगे।

"इससे अच्छी जगह और किस स्थान पर रुपया रहेगा?" अन्त में मुनीम के हठ पर भी किसी प्रकार सब अपना अपना रुपया जमा कर लौट गये।

ऐसे मुनीम पर धर्मपाल ने लेन देन का सब भार छोड़ दिया था। शिरीष को उसने बचपन से खिलाया और मिखाया था इससे जिस बात पर धर्मपाल भी कुछ नहीं कहते थे उसपर वह शिरीष को डाँट देता था। शिरीष उसका स्वभाव जानता था इससे उसे उसकी बातें बुरी लगती थीं। मुनीम की इच्छा थी कि शिरीष अधिक पढ़े लिखे नहीं वरन् एक कुशल व्यापारी बने। पर शिरीष के शौकीन और उच्छृङ्खल स्वाभाव ने यह इच्छा पूरी नहीं की। मुनीम की धारणा थी कि शिरीष की पढ़ाई उसे व्यापार के लिये अयोग्य बना रही है। उस पर शिरीष का संगीत प्रेम तो उसकी समझ ही में नहीं आता था। व्यापार या जीवन में संगीत की क्या आवश्यकता पड़ती है इसकी जानकारी उसे नहीं थी। सभी वस्तुओं की कीमत पैसे से लगाने की आदत के कारण सङ्गीत को वह बेकारी का धन्धा समझता था।

"इस गाने बजाने से तुम्हें क्या मिलेगा?" कभी-कभी वह शिरीष से पूछता।

"क्यों, गाना गाकर मैं रोज सेर भर दूध पी जाता हूँ। यह काम है?" इस प्रकार विचित्र उत्तर देकर शिरीष उसकी हँसी उड़ाता।

शिरीष के मित्रों से भी उसे चिढ़ थी। वह जानता था कि मित्र मुफ्त में नहीं आते। कभी-कभी उनके विषय में भी यह कहता—

"क्या सब जङ्गलियों को इकट्ठा करते हो। किसी को कुछ काम काज तो है नहीं।"

"ऐसा तो नहीं, सभी चतुर हैं।"

"तुम्हारा पैसा खर्चने के लिये सभी चतुर है पर कोई तुम्हारे लिये कुछ करनेवाला नहीं है।

"तो फिर मैं ही कुछ करूँगा।"

"इस प्रकार कोई कुछ करता है। अच्छा कल से कुछ दिनों के लिये यह अपना चाय पानी और जलपान बन्द कर दो फिर देखो कितने मित्र आते हैं।"

"यह मैं जानता हूँ, पर इस कारण मैं अपनी मौज तो बन्द नहीं कर सकता। दोस्तों बिना रहा नहीं जाता और बिना चाय-पानी के दोस्त आते नहीं फिर मेरा क्या कसूर है।"

जानबूझ कर आफत मोल लेने वाले का कोई क्या बचाव करेगा। मुनीम इन उत्तरों से निरुत्तर हो जाता। पर इससे शिरीष के मित्रों के प्रति उसकी चिढ़ और भी बढ़ जाती।

सोहिणी में उसे कितनी दया थी यह कहना मुश्किल है। धर्मपाल की स्त्री मुनीम के लिये स्त्रियों में आदर्श रूप थी शान्त प्रकृति, वाचालता रहित, सर्व गुण संपन्न धर्मपाल की स्त्री का दर्शन बहुत कम लोगों को होता था और खास नौकरों को छोड़ कर उनका स्वर शायद ही कोई सुनता था। परन्तु जिसने भी उनका दर्शन किया था वह उनकी प्रशंसा और श्रद्धा ही करता था। पर्व और त्योहारों के दिन मुनीम विशेषकर उनके पैर छूता था। उनके साथ बातें करने में उसकी कठोरता दूर हो जाती थी।

सर पर लम्बा घूँघट डाले, सुन्दर गम्भीर मुख, पोशाक, बात-चीत, उठने-बैठने में मर्यादा पालन तथा वात्सल्य और आतिथ्य की मूर्ति धर्मपाल की स्त्री का दर्शन कर कोरा मुनीम भी कवि और भक्त बन जाता था। उस समय वह कहता "आज तो साक्षात् जगदम्बा का दर्शन हुआ। बाई साहेब तो अन्नपूर्णा की अवतार हैं।" मुनीम के लिये रोने का कोई अवसर नहीं था। उसे अभिमान था की किसी भी अवसर पर वह रो नहीं सकता।

परन्तु धर्मपाल की स्त्री की मृत्यु पर वह शुष्क मुनीम भी बालकों की भाँति रोने लगा था। आज भी उनको याद कर वह द्रवीभूत हो जाता था। ऐसे पुरुष को सोहिणी जैसी स्त्री कैसी लगती होगी ?

टेढ़ी माँग, ढीली धोती, आधा खुला सर, झड़ी भरी बात-चीत, हँसने बोलने में चपलता, और जूता मोजा पहने घूमने का शौक करने वाली सोहिणी अपनी सास के बिल्कुल विपरीत थी। यह स्वरूप मोहक अवश्य था पर नया और असाधारण था। जहाँ शिष्टता नहीं होती वहाँ पूज्य भावना नहीं उत्पन्न होती और नवीनता में शिष्टता की मात्रा नहीं रहती। इससे यद्यपि नवीनता आकर्षक और मोहक होती है तथापि पूज्य नहीं हो सकती ! इस पर भी सोहिणी पढ़ी-लिखी थी और पढ़ी-लिखी स्त्रियों के लिये मुनीमके विचारमें कोई स्थान नहीं था और उसके ऊपर भी अधिक उम्र तक कुँवारी रह कर उसका अपनी इच्छा से शिरीष से विवाह करने की बेहयाई असह्य थी।

उसे देखकर मुनीम अपना मुँह बना लेता था। उसे देखकर उसको जगदम्बा या अन्नपूर्णा का विचार नहीं आता था तथा वह सीता या पार्वती के भी बिल्कुल विपरीत थी। एक बार मुनीम ने शिरीष से कहा।

"भाई जान पड़ता है तुम मेम ब्याह लाये हो।"

शिरीष यद्यपि उच्छृङ्खल था तो भी मर्यादा पालन करना जानता था। मुनीम के ताने को उसने केवल हँसकर टाल दिया।

इस प्रकार शिरीष के मित्रों और सोहिणी को बुरी दृष्टि से देखनेवाले मुनीम ने डाक्टर सुकुमार, विभाकर तथा सोहिणी को आते देखा। धर्मपाल झूले पर बैठे अशोक को कंसवध की कथा सुना रहे थे। तीनों को देखकर उन्होंने कथा बन्द कर दी और अपने पास बुलाया। मुनीम गुमाश्तों के सिवा और किसी के रहने पर भी धर्मपाल का सोहिणी को गद्दी में बुलाना मुनीम के विचार से अशिष्ट कार्य था।

"आओ डाक्टर साहब आज कैसे कष्ट किया ?"

"अजी आपने जो चित्रकार को बुलाने के लिये कहा था वह आज आये हैं। उनसे आपकी भेंट कराने आया हूँ।" सुकुमार ने उत्तर दिया।

"आपही ने भगवान का चित्र बनाया था?" अत्यन्त मान पूर्वक धर्मपाल ने विभाकर से पूछा। "वाह जिसकी तूलिका मे ऐसा चित्र निकला उसके हृदय में तो बहुत सुन्दर चित्र होगा। बिना पक्के भक्त के और कौन ऐसा कर सकता है? आपने पधार कर बड़ा अच्छा किया।"

मुनीम को यह बात बुरी लगी। वह कुड़बुड़ाया।

"कौन जाने कितना पाप इकट्ठा करना है?"

धन व्यय कर उसका बदला धन ही में पाना सीखने वाले मुनीम के लिये गवैया, चित्रकार, ब्राह्मण, विद्वान आदि सभी भार स्वरूप ज्ञात होते थे। दवाखाना खोलकर तो सुकुमार ने एक उपद्रव खड़ा कर ही दिया था अब एक चित्रकार को भी लिये आया। उसे कुड़बुड़ाते सुनकर धर्मपाल ने पूछा।

"क्या मुझसे कुछ कहा है मुनीम जी।"

"अब मैं क्या कहने लायक रह गया?" मुनीम ने ताना दिया।

"तुम्हारा स्वभाव बदल गया क्या?" हँसते हुये धर्मपाल ने पूछा।

"तुम्हें कुछ कहना नहीं रहता पर आज तक तो बिना कुछ कहे तुम रहे ही नहीं।"

इस प्रश्न का उत्तर मुनीम ने नहीं दिया। पर जो कुछ उसने कहा उस पर धर्मपाल की टीका ठीक ही थी।

"तो फिर मैं इनका बन्दोबस्त करा देता हूँ जो दो चार चित्र बनवाना हो बनवा कर बिदा कर दिया जायगा।"

मुनीम के बन्दोबस्त में मेहमान किस प्रकार रहेंगे यह धर्मपाल खूब जानते थे उन्होंने कहा—

"आप इसकी चिन्ता न करें। सोहिणी प्रबन्ध कर लेगी और इनको

तो मैं अभी अधिक दिन तक रखना चाहता हूँ। मैं यात्रा से लौटूँ तब तक सारा भगवान् का मन्दिर चित्रित हो जाना चाहिये।"

"अच्छा आप यात्रा जाने का इरादा कर रहे हैं ? मुझे भी अपने दवाखाने में कुछ चित्र इनसे बनवाना है।" सुकुमार ने और काम बताते हुए कहा—

"हाँ विचार है। भाई लौटे तो थोड़े दिन यात्रा भी कर आऊँ। शरीर चलते प्रभु की कृपा से एकबार वह भी हो जाय।"

मुनीम ने स्थिर चित्त से धर्मपाल की ओर देखा और बोला—

"भाई को भी अब काम में लगाना चाहिये।"

१४

शिरीष गुस्से में चला गया। वास्तव में चित्र किसका था यह न तो सोहिणी ने ही ठीक-ठीक बताया और न वही निश्चय कर सका। शिरीष ने जो पत्र लिखा था उस पर लक्ष्मी का पता था यह ठीक है। उस दिन दोनों आपस में बोले तक नहीं, परन्तु दूसरे दिन सोहिणी से न रहा गया। उसने किसी प्रकार बात आरम्भ करनी चाही। शिरीष पत्नी की ओर से व्यवहार में असभ्य नहीं होना चाहता था इस कारण उसने बातें तो की पर उसकी बातों में नीरसता और जड़ता प्रवेश हो गयी थी। उसमें उत्साह का पूर्णतया अभाव था। पति के साथ किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये, सोहिणी को यह बताने के लिये वह अवसर की ताक में था। सोहिणी भी उसे समझ

गई। जरा सी बात में इतना गम्भीर स्वरूप धारण करने की पति की आदत किस काम की ? भले वह क्यों न बोलें पर जरा-जरा में बुरा लगने को आदत को छुड़ाना ही होगी।

इस प्रकार दोनों के बीच में भेद उत्पन्न हुआ। जिस प्रकार निकट रहकर गहरा प्रेम सम्भव है उसी प्रकार छोटी-छोटी बातों में नासमझी होकर भेद पड़ना भी सम्भव है। जब शिष्ट और संस्कारी जीवन में यह बात हो सकती है तो फिर सामान्य जीवन में इसका प्रभाव कितना व्यापक हो सकता है ! कदाचित सामान्य जीवन में रस की कमी के कारण प्रेमियों की पीड़ा भी जल्दी शान्त हो जाती है। परन्तु अधिक उच्च कोटि के संस्कारी जीवन की आवश्यकतायें इतनी कोमल और उनका सम्बन्ध इतना सूक्ष्म तथा तीव्र होता है कि उसकी जरा-सी शिथिलता सारे जीवन को कटु बना देती है। संस्कारी जीव दिलरुबा के समान होते हैं। दिलरुबा के सारे तार ठीक करके और स्वच्छ अगुलियाँ दौड़ाकर कोई हृदयस्पर्शी राग जब जम जाय तो उस समय किसी तार के जरा भी ढीले होनेपर उसकी सारी जमावट बिगड़ जाती है और पुनः जमना बड़ा कठिन हो जाता है। ठीक यही स्थिति संस्कारी जीवन की भी हो जाती है।

शिरीष और सोहिणी के जीवनरूपी बाजे का कोई तार ढीला हो गया और प्रवाहित संगीत में रुकावट आ गई। थोड़े दिन बाद शिरीष बाहर गया। न तो उसने किसी से कहा ही कि वह कहाँ जा रहा है और न सोहिणी ने ही पूछा।

अपने पुराने मित्र कनक के यहाँ कुछ दिन जाकर रहने की शिरीष की इच्छा थी। कनक ने शिरीष को कई बार बुलाया भी था। उसकी इच्छा थी कि उसकी व्यापारिक सफलता शिरीष अपनी आँखों से देखे और शायद उसके यहाँ आने पर लक्ष्मी का गाना भी सुनने को मिल जाय इस कारण उसने शिरीष को लक्ष्मी का पता भी दिया था। आजकल वह बम्बई में ही थी।

सेकेण्ड क्लास की यात्रा विशेषतः आरामदायक होती है। परन्तु शिरीष को अच्छा नहीं लगा। वह एकाकी अनुभाव कर रहा था। रेल में नवीन और प्राचीन युगों का मेल बहुत अच्छी तरह होता है। आधुनिक युग के युवक को पुराने लोग अछूत के समान लगते हैं, इससे किसी तरह उनसे बातें न करनी पड़ें और उसके संसर्ग में न आना पड़े इस कारण वे कोई अखबार या पुस्तक पढ़ने लगते हैं और इस प्रकार अपनी श्रेष्ठता का डंका पीटने की चेष्टा करते हैं। पुराने लोगों में भेद भाव कम होता है। वहाँ तो चाहे कोई परिचय न भी हो और यदि हो भी जाय तो चाहे उसका कभी काम भी न पड़े तो भी यदि किसी पुराने समय के आदमी को कोई नवीन युवक मिल जायगा तो वह बातें आरम्भ करेंगे।

"क्यों साहब कहाँ जायँगे ?"

"सूरत।" कहकर नवीन युवक बात समाप्त करना चाहता है।

"कहाँ से आ रहे हैं।"

"अहमदाबाद से।"

"कौन भाई हैं !"

नवीन युवक को जात-पात का भेद और बातें निरर्थक लगती है पर उत्तर देना ही पड़ता है।

"ब्राह्मण।"

"कौन ब्राह्मण ?"

"भाई मैं तो·········ब्राह्मण हूँ आप को क्या काम है ? इस प्रकार कहने की इच्छा रोककर आप अपने विभाग का ब्राह्मण नाम बताते हैं। पर इतने ही से पूछने वाले को संतोष नहीं होता।

"विवाह तो हो गया है ?"

विवाह हो गया है या नहीं यह जानकर पूछने वाले को क्या लाभ होगा यह विचार करता हुआ युवक उत्तर देने में घबराता है। विवाह हो गया हो तो इस आफत से पूछने वाला आपको छुट्टी नहीं दिला सकता

और न हुआ हो तो पूछने वाला गृहस्थ जीवन को सुखी नहीं बना सकता ; यदि आप विवाहित हुए और सच बोलने के पक्ष में हुये तो आप स्वीकृति-सूचक उत्तर देते हैं " हाँ " ।

"कोई बाल-बच्चा है ?"

अब आप को बहुत बुरा मालूम पड़ता है । आप क्रोध को भीतर ही पी रहे हैं । नास्तिक होने पर भी "हे प्रभू" का उद्‌गार आप के मुख से निकल ही आता है । पर इसकी पूछने वाले को जरा भी परवाह नहीं रहती । आप भरे गले से " हाँ " कहते हैं ।

"बहुत अच्छा मजे में रहें ।" इस प्रकार पूछने वाला आशीर्वाद देता है । आप सोचते हैं कि अब छुटकारा मिला और एक पुस्तक रखकर दूसरी उठाने का विचार ही करते हैं कि तब तक दूसरा वज्र प्रहार होता है ।

"लड़के कितने हैं ?"

अब आपकी सहनशीलता का बाँध टूटने पर ही आता है । आपके नेत्र लाल हो जाते हैं और आप पूछने वाले को गोली मार देना चाहते हैं या उठाकर गाड़ी के बाहर फेंक देना चाहते हैं ।

इस प्रकार की मुसीबत से बचना हो तो सेकेण्ड क्लास की यात्रा करनी चाहिये । पर दुर्भाग्य से वहाँ भी शिरीष के अनेक परिचित मिलने लगे इस कारण वह भी व्यर्थ ही हुआ । वहाँ से क्लास की मोह माया छोड़कर थर्ड क्लास की ओर चला । वहाँ बिल्कुल सन्नाटा था इस कारण एकान्त की इच्छा से वह उसी में घुस पड़ा । परिचित मिलते रहें फिर किसी भी क्लास में यात्रा न करनी चाहिये । सेकेण्ड क्लास में भी कोई न कोई परिचित निकल ही आवेगा ।

"वेल मिस्टर बगल वाले डब्बे में जाओ ।" बेञ्च पर सोये हुए व्यक्ति ने शिरीष से कहा । गाड़ी में दूसरे का मुख अच्छा नहीं लगता इसका

प्रमाण शिरीष को मिल गया। पर उसने कुछ कहा नहीं और चुप चाप बिस्तरा लगाकर सो गया।

गाड़ी प्रातःकाल किसी स्टेशन पर रुकी थी। शिरीष उठकर बैठा था। उसके डब्बे के सामने ही कोई आदमी चाय पी रहा था। थोड़ी देर के बाद एक साधु जल्दी-जल्दी आकर उसी डब्बे में चढ़ने लगा। पता नहीं किस कारण से चाय पीने वाले मनुष्य को साधु पर क्रोध आया कि उसने साधु का हाथ पकड़कर खींचा और दूर ढकेल दिया। साधु फुट पर पैर रख चुका था। उसका पैर डगमगा गया। हाथ का करताल गिर गया और वह स्वयं पत्थर पर गिर गया, सिर में चोट लग गई।

शिरीष को बड़ा क्रोध आया। निरपराध साधु को किसी डब्बे में बैठने न देने का जिसे कोई अधिकार नहीं था। उसका यह व्यवहार उसे असह्य हो गया। वह उसके सामने जाकर कहने लगा।

"तुम्हें शर्म नहीं आती कि एक निरपराध साधु को धक्का देकर ढकेलते हो?"

"जा-जा रात को डब्बे में बैठने दिया इसीसे क्या। ज्यादा बकोगे तो तुम्हें भी उठाकर फेंक दूँगा।" आदमी ने कहा।

शिरीष ने सोचा कि इससे बकबक करना बेकार है। बेचारा साधु चुप-चाप अपनी पगड़ी और करताल उठाकर दूसरे डब्बे की ओर जा रहा था। शिरीष ने उससे कहा—

"महाराज इसी डब्बे में बैठिये।"

"नहीं भाई लड़ाई से क्या फायदा। जगह नहीं मिलेगी तो मैं खड़े-खड़े ही चला जाऊँगा।" शिरीष ने देखा कि साधु के चेहरे पर तेज है।

"नहीं महाराज मुझे आप से कुछ काम है।" कहकर शिरीष ने उनका हाथ पकड़ लिया। इतने में कितने लोग इकट्ठे हो गये। चाय पीने वाला मनुष्य लापरवाही से दरवाजा रोके खड़ा था। शिरीष ने बिना कुछ बोले उसका हाथ पकड़ कर दूर कर दिया। दुबले पतले शिरीष के हाथों

में बल है इसका ध्यान कर और भीड़ देखकर उस आदमी ने दोनों को डब्बे में बैठने से रोका नहीं। भीड़ शिरीष के गेट के सामने खड़ी होकर साधु को नमस्कार करने लगी।

"महाराज आज ही कहाँ जाने का विचार कर बैठे? हमें तो खबर ही नहीं दी।" भीड़ में से किसी ने कहा।

"मैं ने तो किसी को सूचना देने से मना किया था? भाई प्रभु स्मरण करना इसी में कल्याण है।"

"मैंने टिकट ले लिया है आप सेकेण्ड क्लास में चलें।"

"अरे भाई तीसरा दर्जा क्या बुरा है? साधु को अधिक आराम की आदत नहीं डालना चाहिये मैं इसी में रहूँगा।"

बहुतों को खबर लग गई थी कि इस डब्बे में बैठते समय महाराज को किसी ने धक्का दिया था, बस "कौन है!" "मारो साले को" "नीचे ढकेल दो" के उच्चारण होने लगे। वह आदमी चुपचाप ऊपर के बर्थ पर चला गया। शिरीष उसकी ओर देखने लगा।

साधु ने लोगों को शान्त किया। गाड़ी चली।

"भाई कहाँ जाओगे?" साधु ने शिरीष से पूछा।

"मैं तो बम्बई जाऊँगा, आप कहाँ जायँगे?" शिरीष ने पूछा—

"मुझे भी उधर ही जाना है।" कहकर साधु शान्त हो रहे।

शिरीष साधु को देखकर बड़े विचार में पड़ गया था। धक्का खाकर भी शान्त रहने वाला साधु सभी को आकर्षित करने वाला था। उपरान्त उनके मुख पर अपूर्व मार्दव और शान्ति विराजमान थी। उनके बाल कमर तक लम्बे थे तथा कण्ठस्वर अत्यन्त मधुर था साधु ने अधिक बातचीत करने की इच्छा नहीं प्रकट की। पर धीरे-धीरे शिरीष ने उनसे कई बातें पूछीं। बम्बई से दूर साधु के परिचित कोई मन्दिर बनवा रहे थे उन्हें वहीं जाना था। शिरीष ने अपना भी परिचय दिया। वह धर्मपाल का पुत्र है सुनकर साधु के मुख का भाव एकदम बदल गया।

"ओहो भाई ! तुम तो एक परम वैष्णव के पुत्र हो। तुम्हारे में तो सज्जनता रहेगी ही। धर्मपाल तो हमारे गुरुभाई हैं।"

साधु की अवस्था धर्मपालसे बहुत कम थी। उनके मुख पर वार्धक्य का कोई चिह्न नहीं था। वह पूर्ण यौवन के बाद अधेड़ अवस्थामें प्रवेश कर रहे थे।

"आपका नाम ?" शिरीष ने पूछा।

"मेरा नाम गौरांगदास है।"

"आपका आश्रम कहाँ है ?" शिरीष को याद आया कि घर में पिता की बातचीत में कभी-कभी यह नाम उनसे सुना था।

गौरांगदास हँसे। बोले—

"देखो भाई मैं नवीन ढंग का साधु नहीं हूँ। न मेरा कोई आश्रम है और न कोई ठिकाना। मैं नर्मदा तीर पर एक टीले पर रहता हूँ।"

साधु लोग बिल्कुल बेकार हैं। भारत पर भार स्वरूप हैं। इनका सुधार होना चाहिये, इन्हें मेहनत मजदूरी करनी चाहिये इत्यादि, जमाने के अनुसार शिरीष भी सोचने लगा। उसकी इच्छा गौरांगदास से कुछ बहस करने की हुई। पर वह चुप ही रहा। इतने में गाड़ी रुकी और साधु उतर गये। उतरते-उतरते शिरीष से पूछा।

"मैंने सुना है तुम गाते बहुत अच्छा हो !"

"नहीं योंही थोड़ा शौक है।"

"कभी आओ तो तुम्हारे मुख से कीर्त्तन सुनूं। मुझे खबर है कि तुम सुन्दरदास के पद बहुत अच्छा गाते हो। कभी छुट्टी हो तो आओ।"

इतना कह और शिरीष का नमस्कार लेकर साधु चलते बने। शिरीष के मन पर एक अजीब प्रभाव पड़ा। बहुत से लोग केवल दर्शन मात्र से अपना प्रभाव डालते हैं। शिरीष जैसे बेकार और मस्त युवक पर प्रभाव डालने वाला यह कोई अद्भुत मनुष्य है। शिरीष को वैष्णव या शैव किसी मार्ग में कोई दिलचस्पी नहीं थी उसे हर प्रकार के पंथ बड़े संकुचित लगते थे और यद्यपि उसके पिता ने अपना बहुत सा

संस्कार उसमें लाने की चेष्टा की थी तथापि संसार का कोई भी धर्म उसे सन्तोष प्रदान नहीं कर सका था। यह भी ठीक था कि उसे धर्म के आश्रय की बहुत जरूरत भी नहीं पड़ी थी। उसकी धारणा थी कि धर्म या तो दुःखियों को सुख देने वाला या सुखी लोगों का क्रीड़ास्थल है। वह स्वयं दुखी नहीं था इससे उसे धर्म के द्वारा सुख पाने की आवश्यकता नहीं थी और सुखी होने के कारण क्रीड़ा के लिये उसके पास बहुत से अन्य साधन थे। इस प्रकार धर्म का निर्दोष व्यसन अपने पिता के लिये छोड़कर वह स्वयं क्रिकेट, टेनिस, संगीत और मित्र मण्डली में आनन्द ले रहा था। उसकी स्त्री ने भी धर्म के विषय में कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी थी।

पत्नी का विचार आते ही वह धर्म के विचार से दूर हट गया। वह किस लिये यात्रा करने चला है इसका ध्यान आ गया। सोहिणी द्वारा किया हुआ अपमान याद आया। उसे शिक्षा देने के लिये ही तो वह उसे छोड़ कर भागा जा रहा है। उसे सोहिणी पर पुनः क्रोध आया पर इस बार उस क्रोध में पहले जैसा आक्रोश नहीं था।

"मैं लौटूंगा अवश्य, पर सोहिणी को झुका कर" उसने मन में निश्चय किया। उसकी विचार श्रेणी रुक गई। ऊपर के बर्थ से उतर कर साधु को धक्का देने वाले मनुष्य ने शिरीष का ध्यान आकर्षित किया परन्तु लज्जित होने के कारण उसने शिरीष की ओर देखा तक नहीं।

थोड़ी देर में बम्बई आ गया। स्टेशन पर कनक आया था। परन्तु शिरीष को सेकेण्ड क्लास में खोजते हुये उसने उसे थर्ड क्लास से उतरते देखा। कितने दिनों बाद दोनों मित्र मिले थे। वह आदमी भी कनक का परिचित लगा।

"कौन राजाराम" इतनी देर कहाँ लगा दी? क्या कर आये?" कनक ने उस आदमी से पूछा। जरा संकोच से उसने उत्तर दिया "कुछ भी न हो सका लौट आना पड़ा।"

कनक ने मुँह बिचका कर कहा—

"अच्छा जाओ गद्दी पर फिर मिलना।" और शिरीष के साथ स्टेशन के बाहर आया।

—१५—

शिरीष बड़े आदमी का पुत्र था। साधारणतया, सभी जगह उसका मान होता था। कनक ने उसकी खातिरदारी की। मोहन सेठ ने भी आकर हाल चाल पूछा और व्यापार में अपना अपार ज्ञान प्रदर्शित करते हुये धर्मपाल की प्रशंसा की तथा उनकी कुछ त्रुटियां भी बताईं और शिरीष से व्यापार अपने हाथ में लेने का आग्रह किया। उन्होंने कहा—

"देखो अब तुम्हें अधिक खबरदारी रखनी चाहिये। तुम्हारा मुनीम बड़ा बदमाश है पैसा मार लेता है और धर्मपाल सेठ इतने भले हैं कि मेरी समझ में नहीं आता कि कैसे उन्होंने इतना बड़ा कारबार चलाया? आज कल की दुनिया भलाई की नहीं है, क्यों भाई कनक ठीक है न?"

मोहन सेठ के विरूद्ध एक शब्द भी न बोलने वाले कनक ने कहा—

"बहुत ठीक सेठजी, व्यापारी अगर भलाई करता रहे तो दूसरे ही दिन यट उलट दे।"

परन्तु शिरीष का ध्यान इन बातों पर नहीं था। ब्रजमोहन और कनक जैसे तुच्छ लोगों की सीख उसे रुची नहीं। उसने बात समाप्त कर दी और एकान्त में कनक से पूछा।

"तुमने मुझे लिखा था कि लक्ष्मी यहीं है क्या यह सच है?"

"अभी लक्ष्मी को तुम भूले नहीं हो!"

"कैसे भूलूँ! उसके जैसा मधुर कण्ठ तो मैंने कहीं सुना ही नहीं।"

"तुम भी क्या आदमी हो।" कहकर कनक ने आँख मटकाई 'परन्तु उसका पता मिलना मुश्किल ही है।" हँसते हुए कनक बोला "उसके तो ढंग ही दूसरे हैं।"

इस पर भी रात में लक्ष्मी के यहाँ जाना निश्चय किया गया। मोहन सेठ को भी साथ ले चलना तय हुआ। यद्यपि यह शिरीष को पसन्द नहीं था पर कनक का बड़ा आग्रह था और उसने कहा "यह मारवाड़ी है पर इन बातों में उल्लू बनाया जा सकता है पाँच छः रुपये तड़ाक खर्च कर देगा।"

शिरीष चुप हो गया। रात को तीनों ही तैयार हुये। बहुत लोगों में घूमने जाने का उत्साह राजपूतों के युद्ध में जाने के उत्साह से कम नहीं रहता। कनक ने बड़े उत्साह से तैयारी की मानों किसी बड़े महत्वपूर्ण कार्य की तैयारी हो। रास्ते में नये मास्टर की भाँति खूब समझाकर भिन्न-भिन्न गृहों की विशेषतायें बताते हुए शिरीष को एक छोटे कम्पाउण्ड वाले मकान के सामने ले गया।

"यहीं रहती है पर गाती नहीं।" तीनों भीतर जाकर द्वार पर खड़े हो गये। द्वार पर एक आदमी था। उसने पूछा।

"किससे काम है?"

"बाई से कुछ काम है।" कनक ने उत्तर दिया।

"जाकर बोलो कि कनक प्रसाद आये हैं।"

दरवान भीतर गया पर उसके चेहरे पर अनिश्चयात्मक भाव था। थोड़ी ही देर में बाहर आकर बोला "बाई आज किसी से मिल नहीं सकती काम हो तो दिन में आइयेगा।"

कनक को क्रोध आगया। बोला "मैंने कहा था कि अब इसका ढंग बदल गया है। बड़ी सती बनने चली है।"

मोहन सेठ ने समझा कि शायद उनके नाम में कुछ जादू हो और अलीबाबा के "समसम" उच्चारण के समान ही शायद उनका नाम सुनकर लक्ष्मी भीतर बुला ले। वे बोले "जाकर मेरा नाम कहो।"

कनक ने दरवान से मोहन सेठ का नाम कहने के लिए कहा। पर उसने साफ इन्कार कर दिया कि बाई इस समय किसी सेठ से नहीं मिल सकती। शिरीष अभी तक चुप था पर अब वह आगे आया और दरवान से कहने लगा।

"यह कार्ड ले जाकर दे दो।" उसने अपना कार्ड बढ़ाया।

"आप लोग कैसे आदमी हैं! एक बार कह दिया कि दिन में आइये फिर भी नाहक दिमाग खा रहे हैं?"

"अरे भाई जाकर सिर्फ कार्ड दे दो और कहना कि आदमी चला गया। मुझे मिलना नहीं है।"

"मुझे अपनी नौकरी नहीं खोनी है कि आपका कार्ड ले जाऊँ।"

"अच्छा लो यह अपनी बख्शीश और नौकरी जायगी तो मैं नौकरी दूँगा। पर कार्ड ले जाओ।" कहकर शिरीष ने एक रुपया दरवान को टिकाया। रुपये का प्रभाव साफ जाहिर है उसमें कठिन से कठिन आदमी को भी द्रवीभूत करने की शक्ति है। दरवान ने चुपके से कार्ड लिया और भीतर गया। थोड़ी देर के बाद लौटकर उसने लम्बा सलाम किया और कहा कि आइये बाई बुला रही हैं।

मोहन सेठ और कनक दोनों के अभिमान को बड़ी ठेस लगी तो भी वे शिरीष के साथ भीतर गये। भीतर जाते समय दो तीन युवतियाँ दिखाई पड़ीं। एक छोटे कमरे के द्वार पर एक सुन्दर स्त्री खड़ी थी।

उसने अत्यन्त मीठे स्वर से स्वागत किया "कौन शिरीष भाई? आओ आओ।"

उसने तीनों को कमरे में बिठाया। वहाँ केवल मृगचर्म बिछा था। वह स्वयं सामने बैठ गई और चुपचाप दृष्टि नीचे की ओर लगाकर शान्त रही। कनक की दृष्टि थम गई। उसके होठों पर मुस्कराहट दौड़ी। मोहन सेठ कनक की मुद्राओं की नकल करने लगे। इन बातों में वे कनक की श्रेष्ठता मुक्त हृदय से स्वीकार करते थे।

स्त्री काला वस्त्र पहने थी। यद्यपि वह सादा था, तथापि उसकी शोभा में कोई कमी नहीं थी। उसके अंगों पर कोई आभूषण नहीं था केवल एक सोने के मणियों वाली रुद्राक्ष की माला उसके कण्ठ को सुशोभित कर रही थी। मस्तक पर भस्म का तिलक था। जिसने लक्ष्मी को पहले कभी देखा था वह आज उसे देखकर चकित हो जाता।

"शिरीष ? मैंने कहा था कि लक्ष्मी ने अब दूसरा ही ठाठ जमाया है।" कनक बोला। लक्ष्मी ने कनक की ओर देखा। उसके नेत्रों में कनक को पहले ही की छटा का आभास हुआ। परन्तु लक्ष्मी ने पुनः अपनी दृष्टि नीचे कर ली। कदाचित् वह नेत्रों की पुरानी आदत छुड़ाने की चेष्टा कर रही थी। उसने पूछा—

"शिरीष भाई ? कब आये ?"

"आज प्रातःकाल आया।"

"क्या शिरीष के सिवा और किसी से बात नहीं करना है ?" कनक ने कुछ क्रुद्ध होकर पूछा।

"बात करने के लिये तो बहुत से लोग हैं पर शिरीष जैसा हृदय तो सबमें नहीं है ?" लक्ष्मी ने उत्तर दिया।

"तो तुम जबान से बात करती हो या हृदय से।"

"यह तो आप स्वयं ही समझ सकते हैं।"

"तुम तो जन्म से ही विद्वान हो, पर हमें तुम्हारी विद्वत्ता नहीं देखनी है। हम तो तुम्हारा गाना सुनने के लिये आये हैं।" कनक ने आने का अभिप्राय बताया।

लक्ष्मी का चेहरा लाल हो गया। हृदय की वेदना मुख पर किस प्रकार व्यक्त हो जाती है यह स्पष्ट दिखाई देने लगा। शिरीष चुपचाप लक्ष्मी की ओर देखने लगा।

"यदि यही कोई मुझे कह दे कि जन्म के समय में कौन थी तो मैं अपनी सारी जायदाद उसे पुरस्कार में दे दूँ।" लक्ष्मी ने दुःख पूर्वक कहा।

पुरस्कार और जायदाद की बात सुनकर मोहन सेठ में स्फूर्ति आ गई। उन्हें ऐसा भान हुआ जैसे व्यापार का कोई नवीन मार्ग मिल रहा हो। वे वास्कोडिगामा की भाँति हिन्दुस्तान खोजने की कल्पना में दौड़ने लगे।

"यह सब जानकर अब तुम्हें क्या करना है? तुम अपना गाना गाओ बस।" कनक ने उत्तर दिया। उसकी उद्दण्डता बढ़ती ही जाती थी। परन्तु लक्ष्मी ने तपाक से उत्तर दिया।

"आप क्या कह रहे हैं? यह किसी वेश्या का मकान नहीं है। पुरानी लक्ष्मी का विचार हो तो उसे भूल जाइये वह मर गई है।"

"हाँ हाँ मैं जानता हूँ कि यह पतिताश्रम है, पर रहने वाली तो पतितायें ही हैं?"

"पतित क्यों हैं यह जानते हैं?" जरा तेज होकर लक्ष्मी बोली। "आप मन और बुद्धि बेचते हैं। चालाकी और समझदारी बेचते हैं तो भी आप पतित नहीं हैं। आपको लोग वकील कहकर कुर्सी देते हैं, व्यापारी कहकर गद्दी पर बैठाते हैं और सरकारी नौकर होनेपर सलाम करते हैं। एक स्त्री अपना स्वर या अपना शरीर बेचती है उसे आप पतित कहते हैं? अपने अधम से अधम ज्ञण को भी आप नामका साधन समझते हैं। आप भूल जाते हैं कि शरीर से अधिक ऊँची वस्तु बेचकर आप अधिक पतित बनते हैं पहले आप अपने हृदय से पूछें, अपनी पत्नी के हृदय से पूछें फिर पतिताओं का तिरस्कार बाद में कीजियेगा।"

बहुतसे स्थानों पर यद्यपि अपमान होता है पर वह अपमान गिना नहीं जाता। कनक ऐसी बातों मे लज्जित होने वाला नहीं था।

"हीयर हीयर, अब तुम अवश्य भाषण किया करो पर तुम्हारे भाषण मे अधिक प्रभाव तुम्हारे गाने का होगा।" कनक ने कहा।

"बस बस बहुत हुआ। बेमतलब की बातो से क्या फायदा?" शिरीष बोला।

"तो फिर तुम लक्ष्मी लक्ष्मी कहते आये किस लिये हो?"

"लक्ष्मी से मिलने के लिये आया हूँ और क्या?"

"तो फिर मिल चुके अब चलो। लक्ष्मी तो बड़ी हो गई है। सात वर्षका पिछला इतिहास शायद भूल गई है?"

"कनक भाई ताना क्यों मारते हो।" लक्ष्मी बोली "मैं एक दिन का भी इतिहास भूली नहीं हूँ और जो इतिहास नहीं पा रही हूँ उसके लिये जमीन आसमान एक कर रही हूँ। आपको याद होगा कि कालेज से जब आप हमारा गाना सुनने के लिये आते थे तब भी इसी प्रकार बातें करते थे। मैं गाती थी, नाचती थी पर किसी से आँखें नहीं मिलाती थी। मेरी पहली शर्त यही थी कि यहां वही आ सकता है जो सभ्य हो।"

कनक वादविवाद में हारने वाला नहीं था। उसने पुनः कहा—

"पर इतने दिनों बाद तुम्हें सुधरना सूझा है! जानती हो आँख मिलाये बिना गाने में आनन्द ही नहीं आता।"

"यह आनन्द लेना हो तो अपनी स्त्री को हमारे पास नाचना गाना सीखने के लिये भेज दीजिये।"

कनक जैसे मनुष्य पर भी इस करारी बातका करारा असर हुआ। मोहन सेठ व्यर्थ की बकवाद सुनते-सुनते नींद लेने लगे थे, वह भी चौकन्ने हुये। शिरीष चुपचाप लक्ष्मी की ओर देख रहा था। लक्ष्मी भी समझ गई कि उसकी जिह्वा ने उग्ररूप धारण किया है। एकाएक भीतर से

एक किशोरी बालिका ने आकर सबके सामने दूध का कटोरा रख दिया। कठोर वातावरण में शान्ति हो गई।

"क्यों कनक भाई।" जरा कोमल स्वरमें लक्ष्मी ने पूछा। "६ वर्ष पहले का इतिहास स्मरण करो। कहाँ क्या होता है इसकी खबर मुझे नहीं पर आपही कहते थे कि दूसरी जगहों पर शराब मिलती है। मेरे यहाँ तो दूध मिलता है क्या इसमें भी सुधार की जरूरत है?"

"यह तो अपना अपना स्वभाव है।" कनक बोला।

दूध पीनेके बाद लक्ष्मी ने सबसे अपना आश्रम देखने का आग्रह किया। शिरीष के कहने पर सब आश्रम देखने चले। कनक और मोहन सेठ निराश हो गये। कहाँ तो वे आनन्द लेने निकले थे और कहाँ आश्रम देखने जैसा नीरस काम आगे आया। पर क्या करते अब तो फँस गये थे। उनको आश्रम या मन्दिर से कोई दिलचस्पी थी नहीं पर लाचार थे।

"अभी तो यही पाँच स्त्रियाँ आश्रम में हैं।" लक्ष्मी ने तीन युवतियाँ और दो अधेड़ स्त्रियों को दिखाकर कहा। स्त्रियों के चेहरे पर चपलता की छाया थी। सभी सुन्दर थीं, परन्तु उस सुन्दरता के साथ कोई ऐसी भयंकरता भी अन्तर्हित थी जिससे वह सुन्दरता काले सर्प की सुन्दरता जान पड़ती थी।

"यहां आपको अच्छा लगता है?" शिरीष ने एक युवती से पूछा।

उस युवती का चेहरा अत्यन्त चंचल हो गया था। उसके नेत्र निरन्तर अभ्यास के कारण हँसते हुये से हो गये थे। वह हँसने के लिये तड़प सी रही थी और उसने हँसकर ही उत्तर दिया "जी हां।"

शिरीष को संशय हुआ। लक्ष्मी ने शिरीष का भाव समझ कर कहा— "देखो शिरीष भाई छः महीने हो गये इनको यहां आये पर अभी तक पुरानी आदत गई नहीं है।"

"इनमें किसी को गाना आता है?" शिरीष ने पुनः पूछा।

"नहीं। दो एक वहाँ कुछ गजल कौव्वाली गा लेती हैं, पर वह बिल्कुल अर्थहीन गाना होता है। मैंने सिखाना आरम्भ किया है।" लक्ष्मी ने उत्तर दिया।

एक दूसरे कमरे में कुछ चर्खे पड़े थे। कपड़ा सीने की मशीन थी तथा कुछ सिले अनसिले कपड़े पड़े थे। कुछ जिल्दबन्दी तथा लिफाफे बनाने का भी सामान था।

"मैं इन स्त्रियों की जीविका का साधन तैयार करना चाहती हूँ। थोड़ा-थोड़ा काम सबको करना पड़ता है और जो पैसा आता है वह थोड़ा-थोड़ा सबके नाम रहता है। मेरा ख्याल है कि अस्सी फी सदी स्त्रियां केवल दरिद्रता के कारण ही वेश्यावृत्ति स्वीकार करने को बाध्य होती हैं।"

"तो नाचने गाने वाली इसलिये अपना धंधा छोड़ देंगी?" मोहन सेठ ने पूछा।

"यह तो शिरीष भाई से पूछिये। उन्होंने मुझे एक बार यह सलाह दी थी, उसका पालन कर रही हूँ।"

"शिरीष भाई तुम बहुत छोटी अवस्था से इन लोगों से मिले हुए हो" भर्राये स्वर से मोहन सेठ ने पूछा।

"हां सेठ साहब।" शिरीष बोला "मुझे जहां उत्तम संगीत मिलता था वहां बिना किसी की परवाह किये जाता था और अब भी जाता हूँ।"

"और यह कनक भाई जानते हैं कि मैंने गाने का धन्धा किस प्रकार किया है। विलायत में बादशाह भी गानेवालियों का सम्मान करते हैं। मैंने अपना धन्धा इस प्रकार चलाया कि कभी कोई साधु या बादशाह मेरा अपमान नहीं कर सकता। नाद को मैं ब्रह्म मानकर उसकी पूजा करती हूँ।" लक्ष्मी ने कहा—

"पर कनक तो कहते थे कि तुम नाचती भी हो।" मोहन सेठ ने पूछा।

मोहन सेठ गाना सुनने के लिये बाहर निकले थे। शायद गाने में लज्जा नहीं होती तो नाचने में तो है ही इस कारण लक्ष्मी को उसके काम की अधमता का भास कराने की इच्छा से उन्होंने ऊपर की बात कही। पर लक्ष्मी ने तुरन्त उत्तर दिया।

"जी हां मैं नाचती भी थी। यह हमारी इष्टदेवी पार्वती की प्रसादी है।" पवित्र पार्वती जैसी स्त्रीत्व के आदर्श नारी के साथ वेश्याओं के नृत्य कैसे सम्बन्धित हो सकता है। इस ताज्जुब की बात में मोहन सेठ को डालकर लक्ष्मी ने उनकी टीका का उत्तर दिया।

आश्रम देख कर लौटने पर शिरीष ने कहा "लक्ष्मी! तुम्हारा आश्रम तो हम लोगों ने देखा। हमारा तुम्हारा स्वप्न ठीक हो तो अच्छा ही है, पर आज तो हम सब तुम्हारा गाना सुनने के लिये ही आये हैं।"

"आपकी इच्छा है तो गाऊँगी, पर यह पेशा मैंने छोड़ दिया है।"

"तुम्हारी इच्छानुसार धन तुम्हें मिल गया?" शिरीष ने पूछा।

"हां। आज से दो वर्ष पूर्व ही। यह सब आपका प्रताप है और पैसा मिलते ही पेशा छोड़ना यह भी आपके ही प्रताप से हुआ।"

"सुकुमार को क्यों भूलती हो?" शिरीष बोल उठा।

लक्ष्मी हँसकर रह गई। "वह डाक्टर हो गया है तुम जानती हो?" शिरीष ने पूछा।

"जड़, अरसिक मनुष्य दूसरा क्या हो सकता है?" लक्ष्मी ने एक स्त्री को बाजा लाने की आज्ञा देते हुए कहा। बाजे के साथ-साथ सभी स्त्रियां वहां आकर बैठ गईं। किसी ने तम्बूरा लिया और किसी ने मृदंग। लक्ष्मी स्वर भरने लगी। निर्मल प्रभात का वातावरण फैलता हुआ गुणकली का राग निकलने लगा। शिरीष शान्त होकर सुनने लगा। वह आनन्दित हो उठा और ज्योंही लक्ष्मी ने गाना आरम्भ किया कि वह मस्त होकर झूमने लगा।

"डमरू हर कर बाजे बाजे..."

त्रिशूल धर अंगभस्म भूषण,
व्याल माल गले बिराजे······डमरू··········
पंच वदन पिनाक धर शिव,
वृषभ वाहन························भूतनाथ
रुण्ड मुण्ड गले विराजे
अजर अमर दिगम्बराजे·············डमरू·······"

कृष्ण और गोपियों के सम्बन्ध की कोई ठुमरी या दादरा सुनने की इच्छा से आये हुये कनक को इस भयानक देवता का वर्णन सुनकर बड़ी निराशा हुई। पर राग और स्वर का जानकार होने के कारण वह उसी पर ध्यान देने लगा। मोहन सेठ चौंके। उनके लिये संगीत शास्त्र दोहे और चौपाइयों तक ही सीमित था। वह स्वयं तो शायद ही कभी गाते थे और यदि गाते तो उनके पड़ोसी उन्हें जिन्दा रहने देते या नहीं यह भी एक प्रश्न था। उनकी प्रिय पत्नी का एक प्रिय गाना था—

"ठगा रे मने ठगी!
हाँ हाँ रे मने ठगी!
जानी रे भोली नार!·················"

कई बार सुनने के कारण यह कलिंगड़ा उनके मस्तिष्क में घुस गया था और राग स्वर के प्रदेश में कलिंगड़ा की जानकारी हो गई थी सो भी एक बार कनक से सुनने पर कि यह गीत कलिंगड़ा राग पर गाया जाता है। एक दिन सेठानी अकेले में "ठगारे मने ठगी" गा रही थी कि कनक ने सुन लिया और परपत्नी प्रशंसा में कुशल होने से तुरन्त बोल उठा—

"ओ हो सेठानी कलिंगड़ा गाती हैं।" उसी दिन से मोहन सेठ संगीत सृष्टि में कुछ आगे बढ़े थे। संगीत शास्त्र में उनके लिये कलिंगड़ा के सिवा दूसरा राग ही नहीं रह गया था इससे जहाँ कहीं भी गाना होता

उनके लिये कलिंगड़ा ही होता। लक्ष्मी का गाना भी कलिंगड़ा समझ कर उन्होंने उसे ध्यान पूर्वक श्रद्धा से सुना।

परन्तु लक्ष्मी कोई साधारण गानेवाली नहीं थी। वह एक संस्कारी स्त्री थी। नसीब के चक्कर में ही पड़कर उसे गाने के पेशे में पड़ना पड़ा था। परन्तु स्वतंत्रता पूर्वक जीवन यापन करने योग्य यथेष्ठ धन पैदा कर वह उससे अलग हो गई थी। इस पेशे में पड़कर भी वह पवित्र रह सकी थी इससे अपनी कला को भी पवित्र रखने की पूरी चेष्टा थी। वह गाती तो उसके संगीत में गौरव रहता। वह नाचती बहुत कम थी पर तो भी उसका नृत्य देखकर लोग कला के सौन्दर्य में डूब जाते थे। आज भी शिरीष के कारण उसका उत्साह बढ़ा था और गाते-गाते उसके हाथ, मुख और नेत्र संगीत का भाव प्रदर्शित करने लगे।

एकाएक उसे अभिनय की स्फुर्णा हुई। अभिनय से भावों का स्पष्ट प्रदर्शन होता है इसे कला के जानकार ही समझ सकते हैं। लक्ष्मी के हाथ और उँगलियाँ किसी अकथ्य सौन्दर्य का चित्रण करने लगीं। उसके नेत्र और मुख की सुन्दर मुद्रा से चलचित्र (Cinema) का भास होने लगा और गाना तो उसमें मानो जीवन दान कर रहा था। उसने साक्षात् शंकर की मूर्ति खड़ी कर दी। उसके पास न तो कागज था, न ब्रश था और न मिट्टी या काष्ठ ही था तथापि सभी को ऐसा जान पड़ा, जैसे लक्ष्मी लक्ष्मी न होकर शंकर हो गई है। शंकर भी भव्य जटा, उसमें प्रवाहित गंगा धारा, व्याघ्राम्बर, बालइन्दु, भस्म विभूत गौर शरीर, डमरू का बजना, चमकता त्रिशूल इत्यादि शंकर के सभी आलम्बन उसके अभिनय से स्पष्ट हो गये और उस शान्त वातावरण में साक्षात् शिव की मूर्ति खड़ी हो गई।

शिरीष कला का रसिक था। चित्र-कला का जानकार था। शिल्प मूर्ति इत्यादि कलाओं में उसका दखल था, पर आज उसे जान पड़ा कि यह सब कलायें तो अभिनय कला की अणुमात्र हैं। अजंता की गुफाओं

के चित्र, नटराज और भुवनेश्वर की मूर्तियाँ इत्यादि भारत की प्राचीन कलाओं के नमूने उसके हृदय में गर्व उत्पन्न करते थे, परन्तु आज उसने जाना कि यह सब प्रतीक किसी एक प्रभाव विशेष के अंश है। तन्मय बना देनेवाली मूर्ति या चित्र तो अभिनय कला ही में रहते हैं। इन्द्र धनुष का एक टुकड़ा देखकर आनन्द होता है, परन्तु सारे आकाश को सौन्दर्य मण्डित कर देने वाले धनुष का सौन्दर्य तो उनमें नहीं रहता। मूर्तिकला और चित्रकला उसे उसी प्रकार सौन्दर्य के टुकड़े के समान अभिनय के किसी क्षणिक अनुकरण की भाँति लगे। उसके सामने तो साक्षात् शिव का स्वरूप, शिव की किसी भी भावना से उत्कृष्ट और ज्वलन्त आकार में खड़ा था।

शिव में श्रद्धा हो न हो यह दूसरी बात है। परन्तु प्रत्येक हिन्दू-शिव की भावना तो समझ ही सकता है। मोहन सेठ और कनक दोनों विस्मित हो गये। लक्ष्मी स्वयं अपने को भूल गई थी। वह तो जैसे अपने हाथ और उँगलियों से रेखायें (outline) खींच रही थी और मुख तथा नेत्र रंग भर रहे थे। तम्बूरे का स्वर और मृदंग की ताल लक्ष्मी के कण्ठ और अभिनय के अनुकूल ही वातावरण उपस्थित कर रहे थे। सभी आत्म-विस्मृत की दशा में हो गये थे। बहुत देर बाद एकाएक शिरीष की एक आँख दबी और तत्काल लक्ष्मी ने संगीत बन्द कर दिया।

"ताल समाप्त हो गया?" लक्ष्मी ने पूछा।

"थोड़ा"·······शिरीष बोला।

"अरे बन्द क्यों कर दिया। मैं तो वाह वाह करना भूल ही गया, शाबाश-शाबास" कनक बोल उठा।

कुछ देर और बातचीत करने के बाद कनक ने चलने की इच्छा की। लक्ष्मी ने मोहन सेठ का परिचय पूछा।

"अरे यह तो सट्टा बाजार के राजा हैं।" कनक ने कहा।

"अरे नहीं भाई, मैं इस अभिमान के योग्य नहीं हूँ।" अपनी

प्रशंसा से प्रसन्न होकर तथापि सभ्यता के अनुरूप मोहन सेठ ने कहा ।

"राजा हैं तो उदार भी होंगे ! और सट्टे में तो उदारता की सीमा ही नहीं रहती" लक्ष्मी ने कहा ।

कितने ही लोग उदारता की बड़ाई पाकर प्रसन्न होते हैं, पर मोहन सेट ऐसे मूर्ख नहीं थे । उदारता की बात सुनकर उनके होश उड़ गये ।

"इससे मेरे आश्रम की कुछ सहायता तो करेंगे ही !" लक्ष्मी ने पुनः कहा ।

लोगों को पराश्रयी बनाने की सेठ की वृत्ति नहीं थी । स्वयं परिश्रम करने की आदत लोगों में पड़े इस विचार से मोहन सेठ उदारता को दूरकर बोले ।

"देखिये आश्रम का नाम ठीक नहीं है और खुले आम इसमें सहायता करना हमारी प्रतिष्ठा के खिलाफ है ।"

"वाह शरीर का रोगी औषधालय जाता है, मन का रोगी आराम करने जाता है, और नैतिक रोगियों के लिये कोई स्थान ही नहीं है ! और स्थान हो भी तो उसका नाम अच्छा नहीं है !" लक्ष्मी ने कहा । पर मोहन सेठ की समझ में कुछ भी नहीं आया ।

"यदि ऐसा है तो यह शिरीष भाई मुझसे अधिक धनवान हैं, पहले इनसे कहो, फिर मैं भी प्रमाण के अनुसार दूँगा ।" मोहन सेठ ने कहा । उनकी यह युक्ति अनेक स्थलों पर सफल हुई थी और यहाँ भी उन्होंने उसका प्रयोग किया ।

शिरीष को यह बातें अच्छी नहीं लगीं । कला के स्वर्गीय बातों से नीचे उतर कर इन पार्थिव विषयों में आते हुए उसने लोगों को रोक कर कहा—

"लक्ष्मी तुमने किसके लिये गाया है !"

"सच तो यह है कि मैंने तुम्हारे ही लिये गाया है, नहीं तो गाना मैंने कब का छोड़ दिया है।"

"ठीक है, तो फिर आश्रम में मैं अपनी ओर से कुछ धन दूँगा। अच्छा अब चलूँ" कनक और मोहन सेठ भी उठे।

"शिरीष भाई आज आप यहीं रह जाइये।" लक्ष्मी ने आग्रह किया। कनक ने लक्ष्मी की ओर देखा और फिर मोहन सेठ से आँख मिलाई। मोहन सेठ ने भी मन में कुछ समझा इस प्रकार आँख मटकाई।

"अच्छा तो कनक कल प्रातःकाल तुम्हारे यहाँ आऊँगा।"

शिरीष ने बिना किसी विचार के लक्ष्मी का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

—१६—

"यह सब क्या गड़बड़ है जी ?" बाहर निकलकर मोहन सेठ ने कनक से पूछा।

"दुनिया में सभी ऐसे ही हैं सेठ साहब। अच्छे बुरे सभी का यह काम है। पकड़ गये तो फिर कोई बात नहीं पर यह तो बड़ी पुरानी मुलाकात का मामला है।" कनक ने उत्तर दिया।

"शिरीष तो अपने पिता की निगरानी में रहा, फिर यह सब हरकतें कहाँ से सीख लिया ?"

"बाप की निगरानी की मत कहो. क्या बाप बेटे को कुछ कह सकता है ?"

"तब फिर ऐसा कैसे हुआ है ?"

"अरे बड़ी लम्बी कथा है, पर संक्षेप में तुम्हें बता देता हूँ । तुम तो जानते ही हो कि मैं, शिरीष और डाक्टर सुकुमार साथ-साथ कालेज में पढ़ते थे । मैंने एक अच्छी चाल में एक कोठरी अलग किराये पर ली थी । और अवसर होने पर या तो शिरीष के यहां जमते थे या फिर उसी कोठरी में । एक दिन उसी चाल में हमारी कोठरी के सामने एक वृद्ध गायक और यही लक्ष्मी आकर टिके । कालेज के लड़कों का क्या पूछना । हम लोग शीशे से लक्ष्मी पर प्रकाश फेंक कर उसे परेशान करते थे । वृद्ध बड़ा क्रोधित होता था । एक दिन शिरीष गाने लगा । उसका गाना सुनकर बुड्ढा बड़ा प्रसन्न हुआ और हमारी कोठरी में आया । उसने स्वयं भी गाया और जाते समय हमारे पैर पकड़ कर प्रार्थना की कि हम लोग लक्ष्मी को तंग न किया करें ।"

"सेठ साहब आपके आफिस में चोरी हो गई है" किसी ने पीछे से आकर कहा । दोनों चौंक पड़े । बिना कुछ पूछे एक दूसरे की ओर देखने लगे । फिर तुरन्त ही कनक ने एक घोड़ा-गाड़ी बुलाया ।

"पुलिस को खबर किया कि नहीं ?" मोहन सेठ ने घबरा कर पूछा ।

"नहीं साहब मैंने सोचा कि पहले आपको खबर देकर तब पुलिस को खबर दूँ ।"

"ओ बेवकूफ जा दूसरी गाड़ी लेकर पुलिस को खबर दे और उस मकान में शिरीष को भी कहता जा ।" कनक ने कहा ।

दोनों चटपट घर गये तथा कुंजी इत्यादि लेकर तुरन्त मोटर पर आफिस आये । पुलिस पहुँच कर जांच कर रही थी । मोहन सेठ ने भी पुनः घूम फिर कर सब स्थान देखा । आफिस क्या सिर्फ एक कमरा था । गद्दी तकिया और एक छोटा बकस पड़ा था दो चार कुर्सियां भी पड़ी थीं

कोई वस्तु कहीं से हटी नहीं थी केवल तिजोरी खुली पड़ी थी। यह देख कर मोहन सेठ धम्म से बैठ गये। उनकी सारी जमा उसी तिजोरी में रक्खी थी। भाव-ताव के कागज, कई दस्तावेज़, चेक बुक तथा हुण्डी इत्यादि सभी इस छोटी तिजोरी में रक्खे थे। वह आज खाली हो गई और साथ ही मोहन सेठ की सारी जमा भी गायब हो गई उन्होंने कांपती आवाज से पुलिस को बताया।

पुलिस का काम था केवल सारी बातें सुनकर नोट कर लेना। और वह उसने कर लिया। उत्तर भी लिख लिया। किसी के ऊपर कुछ संदेह है वह भी पूछा। मुनीम नौकर इत्यादि की पहचान की। घर कौन-कौन आता था, मोहन सेठ की पत्नी के पास कौन-कौन आता था इत्यादि अनेक प्रकार के प्रश्न पूछे। रात का समय था इसलिये पुलिस ने होटल से चाय मँगाकर पी और पान खाया। तथा उसका बिल सेठ लोगों से चुकाने के लिये कह दिया। चोरी पकड़ाने की उम्मीद कम है। कोई जाना-बूझा आदमी मिला हुआ है इत्यादि कहकर पुलिसवाले चलने लगे तो कनक ने चुपचाप दो नोट दरोगाजी को दिखाये जिसे उन्होंने चुपचाप जेब के हवाले किया और कहा "सेठजी जहाँ तक हो सकेगा पकड़ने की कोशिश करूँगा" और चलते बने।

मोहन सेठ और कनक भी चुपचाप घर लौटे। प्रातःकाल शिरीष कनक के घर लौटा। कनक ने रात की हकीकत बयान की। सुनकर शिरीष ने बड़ा अफसोस जाहिर किया। कनक ने कहा—

"शिरीष तुम तो जानते हो कि मोहन सेठ हमारे भागीदार हैं ?"

"हाँ क्यों ?"

"नफा, नुकसान दोनों में हमारा हिस्सा है ?"

"हाँ तो फिर ?"

"इस चोरी से बड़ा घाटा हुआ है। लगभग दो लाख का पावना डूब जाने को है।"

"ओह बड़ा भारी घाटा हुआ।" शिरीष बिना किसी विचार के सहानुभूति प्रकट करता गया।

"और आज ही एक लाख की हुण्डी भरनी है। न होने से दूकान में ताला बन्द करने की बात आ जायगी।" कनक ने दुखी होकर कहा।

"तो फिर रुपये का प्रबन्ध करो। इस प्रकार बैठने से कैसे होगा?"

"कुछ समझ में नहीं आता क्या करें। शाम तक प्रबन्ध न होने पर हम दोनों को जहर खा लेना पड़ेगा।"

शिरीष ने कनक की ओर देखा। उसके मुख पर हवाई उड़ रही थी। अपने मित्र को इस परिस्थिति में देखकर उसे बड़ी दया आई। उसने कहा—

"उधार लो, जायदाद रेहन करो।"

"पर उधार देगा कौन? सभी व्यापारी तो हमारे शत्रु हैं। जायदाद रेहन करने पर भी आज ही रुपया तो मिलेगा नहीं। सभी चाहते हैं कि हम लोग व्यापारी मण्डल से हट जायें।"

कनक की आँखों में आँसू आ गये। अपनी चालाकी छिपाने की इच्छा से उसने पीछे देखा। दो बालक भीतर से आ गये।

"आओ बाहर खेलो।" कनक ने कहा।

"तो फिर क्या करोगे?" शिरीष ने पूछा।

"सारी रात यही तो सोचते रहे। मोहन सेठ तो हिम्मत हार बैठे हैं। अब तुम्हीं इज्जत बचाओ तो बचे।"

शिरीष स्वयं नहीं जानता था कि किसी को इज्जत बचाने की भी योग्यता उसमें है। उसे जो भी रुपया मिलता था वह सब खर्च कर देता था। जरूरत होने पर और मांग लेता। मुनीम बड़ी कठिनाई से उसे रुपया देता था। व्यापार में हानि लाभ क्या है इसकी उसे कुछ भी जानकारी नहीं थी। उसे कनक की बात सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा—

"मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूँ ? किसी प्रकार यदि मैं तुम्हारे काम आ सकूँ तो बड़ी प्रसन्नता से मैं करने को तैयार हूँ। पर मेरे पास तो कुछ भी नहीं है।"

"तुम्हारे पिता के पास बहुत धन है। वह एक जबान बोल दें तो लाख रुपया तो तुरन्त मिल जाय।"

"यह बड़ी कठिन बात है। मैंने कभी अपने पिता से इस प्रकार रुपया नहीं माँगा है। और फिर हमारे मुनीम को तो तुम जानते ही हो!"

"इकलौता बेटा एक बार रुपया माँगे और पिता न दे, यह तो कभी भी नहीं हो सकता ?"

"इसके सिवा यदि ऐसा हो भी तो आज ही रुपया मंगाकर मैं दे कैसे सकता हूँ ?"

"हाँ यह कठिनाई है, पर जो तुम जमानत दे दो तो हमें छः महीने की मुहलत मिल जायेगी और बीच में हम अपना घाटा पूरा कर लेंगे, चोरी का भी पता लग जायगा और हमारा पावना वसूल हो जायगा।"

जमानत पड़ने में लोगों को ज्यादा जवाबदेही नहीं मालूम पड़ती। कनक ने शिरीष को सारी बातें समझाई। एक महीने में तो वह लाख रुपया भरकर शिरीष को जमानत से मुक्त कर देगा। विलायत से अपना कितना माल आता है, कितने माल का आर्डर मिल चुका है और यदि माल न आये तथा आर्डर न मिले तो भी व्यापार के कितने रास्ते हैं, अपनी जायदाद कितनी बड़ी है और शिरीष की जमानत का नाम ही कितना बड़ा है इत्यादि अनेक बातें कनक ने शिरीष को समझा दी।

"देख शिरीष ! केवल आज का दिन टालना है। आज हमारी और स्त्री बच्चों की लाज तुम्हारे हाथ में है। आज का दिन बीतने के बाद तो मैं राजा हूँ। व्यापारी एक दिन बच जाय तो फिर लाखों का हिसाब नहीं।"

तैरना न जानने वाले को सागर में उतरते समय अविश्वास और संकोच होता है, उसी प्रकार इस व्यापार के अनजान सागर में उतरने में शिरीष को संकोच मालूम हुआ। परन्तु सामने मित्र का करुणा पूर्ण चेहरा था, लाज रखने की विनती थी और फिर स्त्री बच्चों की लाज का प्रश्न-क्या किसी आर्य हृदय को रोक सकता है? भारत से सभी कुछ लोप हो गया है, फिर भी शरणागत की रक्षा अभी भी धर्म समझा जाता है। अभी हिन्दुओं में जानवरों को निरुपयोगी समझ कर गोली मारने की प्रवृत्ति का विकास नहीं हुआ है। शिरीष द्रवीभूत हो गया। जवाबदेही का विचार दूर होने लगा। मात्र उसके जामिन होने से यदि कनक बच सकता है तो इतनी मित्रता उसकी कनक के साथ थी, वह इतना कर सकता है। उसने जामिन होना स्वीकार कर लिया।

तत्काल कनक का मुख प्रफुल्लित हो उठा। चेहरे पर तेज आ गया। उसने शिरीष को धन्यवाद दिया। मोहन सेठ के पास जाकर सारी बातें बताई। वह बड़े खुश हुए। दोनों अपने पावनेदार के पास गये। वह सेठ बड़ा भारी आदमी था। उसके दादा ने पहले पहल बम्बई में आकर मानो किसी तिलस्मी प्रयोग से अपनी दरिद्रता दूर कर प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। उसके पिता और उसने स्वयं भी उस प्रतिष्ठा को संचित रखा था तथा उसमें वृद्धि की थी। उसने मोहन सेठ की बातें सुनी। धनी के सामने दरिद्र का कोई स्थान नहीं होता। अधिक धनी के सामने साधारण का ठिकाना नहीं होता पुराने खानदानी सेठ नवीन सेठों को तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं। उसने मोहन सेठ से कहा।

"सुनो बृजमोहन, तुम एक ऐसे आदमी की जमानत दे रहे हो कि मुझे मानना ही पड़ता है। धर्मपाल का नाम ही काफी है, पर तो भी तुम्हें रुपया देने के लिये तैयार रहना चाहिये।

"अजी यह आप क्या कहते हैं सेठ जी। वह तो अगर चोरी न होती

तो मैं स्वयं ही भरपाई कर देता । जरा धैर्य्य रखिये । हम आपके सामने कुछ भी नहीं हैं । क्यों भाई कनक ?"

"जमानत पर सही होने से पहले मैं धर्मपाल के पुत्र से मिलना चाहता हूँ ।"

"हाँ हाँ वह तो मिलेंगे ही । जमानत पर सही करने वही तो आवेंगे, उस समय आपसे मिला देंगे ।" कनक ने उत्तर दिया । उसे भय हुआ कि यह पक्का व्यापारी कहीं शिरीष को समझा बुझाकर भड़का न दे ।

"हाँ मोहन सेठ तुम्हारी चाल में कोई चित्रकार रहता है ?"

"हाँ है तो सही पर बड़ा दरिद्र है ।"

"मेरा एक चाँदी का फ्रेम ले गया है उसमें एक चित्र जड़ना है । बहुत दिन हो गया पर अभी तक आया नहीं ।"

"ऐसे आदमी का विश्वास नहीं करना चाहिये । मैं भी उसे अपनी चाल से निकालने का विचार कर रहा हूँ, पर अभी तो उसने छ महीने आगे का किराया जमा कर दिया है इससे लाचारी है ।"

"जरा उसे ताकीद कर देना । फ्रेम की कीमत की बात नहीं है पर मेरी स्त्री को वह फ्रेम बहुत पसन्द है ।"

"आज कल तो है नहीं कहीं बाहर गया है । पर तो भी मैं उसके घरवालों से कह दूँगा ।" कनक ने उत्तर दिया और दोनों उठे ।

उसी दिन शिरीष ने जमानत पर हस्ताक्षर कर दिया । उसके पहले मुरलीधर सेठ ने उसे समझाया और इस जवाबदेही में न पड़ने का आग्रह किया । पर शिरीष ने अपना निश्चय बदला नहीं । उसे विश्वास हो गया कि बृजमोहन और कनक को सब बर्बाद करने की चेष्टा कर रहे हैं नहीं तो इतनी सलाह देने की मुरलीधर को क्या पड़ी थी ? अपने मित्र को बचाने की इच्छा और भी प्रबल हो उठी और मुरलीधर सेठ के समझाने से तो जो कुछ शंका थी वह भी दूर हो गई । उसने सहर्ष जवाबदेही अपने सर उठा लिया ।

[illegible] के एक स्थान पर बड़े-बड़े वृक्षों का झुंड था। उनके नीचे एक पत्थर पर मोहिनी बैठी थी। [illegible] मस्तक पर [illegible] अवश्य [illegible] शायद [illegible] ने [illegible] था।

उसके मन में [illegible] सुन्दर बाल [illegible] अस्तव्यस्त थे। [illegible] उसके मुख और कपोलों पर भी आ रहे थे। [illegible] दोनों [illegible] कपोल टेक चुपचाप बैठी थी। उसकी आँखें [illegible] थीं [illegible] उसमें कोई [illegible] थे। वैसे वह कुछ देख भी नहीं रही थी। [illegible] उसकी लम्बी आँखों की पलकें [illegible] पड़ती थीं। उसका [illegible] रहनेवाला मुख इस समय गम्भीर हो गया था। [illegible] कभी-कभी [illegible] उसकी आँखों पर आकर मानो उसके विचार क्रम में विघ्न डालना चाहता था।

[illegible] दरवाजे के [illegible] में [illegible] खड़ा था। उसने अस्त होते हुये सूर्य के सुनहले प्रकाश में वृक्षों के नीचे मोहिनी को देखा। मोहिनी सदा से आकर्षक थी। उसके शरीर, चाल और बातों में कोई ऐसी कृपा थी कि एकबार भी देखनेवाला कभी भूलता नहीं था। विभाकर के लिये तो वह एक आदर्श प्रतीक थी। [illegible] कभी वह मोहिनी को एकटक होकर देखा करता और [illegible] में अपनी इन चेष्टा के लिये पश्चात्ताप भी

करता। एकबार तो मोहिणी को भी स्वयं आश्चर्य हुआ। बात करते-करते विभाकर बात सुनना छोड़कर उसके ही विचार में लीन हो गया।

"तुम बात नहीं सुनते हो?" मोहिणी ने विभाकर से कहा। विभाकर चौंक पड़ा। अपने आश्रयदाता नारी को निहारने में तल्लीन हो जाना इससे बढ़कर और कौन सा पाप हो सकता है? उसका मुख लज्जा से लाल हो गया वह कुछ बोल न सका पर दृष्टि पृथ्वीपर जा लगी मानो क्षमा याचना करती हो। निर्दोष बालक के समान विभाकर का मुख देख-कर मोहिणी विचार में पड़ जाती थी। कालेज में ही वह भले बुरे की दृष्टि पहचानती थी। इन दोनों में से किसी के लिये भी उसके हृदय में पक्षपात नहीं था। अपने निजी अनुभव से वह जानती थी कि भले बुरे की दृष्टियों में स्त्री के प्रति कुछ भेद होता है, परन्तु विभाकर के नेत्रों में उसने कोई दूसरा ही भाव देखा। उसमें पाप की छाया भी नहीं थी। कौतूहल पूर्वक उसने विभाकर से प्रश्न किया।

"तुम कभी-कभी मेरे सामने देखा करते हो इसका क्या कारण है।"

इस प्रकार कभी कोई युवती किसी पुरुष से नहीं पूछती, और यदि पूछती है तो उसका उत्तर भी निश्चित जानती है। पर तो भी बिना किसी संकोच के मोहिणी ने विभाकर से यह प्रश्न किया।

"मुझे क्षमा कीजिये मैं स्त्रियों के और फिर आप जैसी संस्कारी स्त्रियों के संसर्ग में अधिक नहीं आया हूँ। मेरी मूर्खता के सिवा और क्या कारण हो सकता है!"

"नहीं-नहीं इसमें घबराने की बात नहीं है। पर जब तुम मुझे देखते हो तो ऐसा जान पड़ता है मानो कोई नई वस्तु देख रहे हो?"

"ऐसी ही बात है बहन? मैं जब आपको देखता हूँ तो मेरी कल्पना में कई चित्र आ जाते हैं।"

"तुम्हारी उपस्थिति भयंकर है भाई।" हँसते हुये इस बालक जैसे

भोले युवक से सोहिणी ने कहा। देखना कहीं मेरा चित्र न बना डालना।"
विभाकर उसे देखता ही रहा और वह चली गई।

आज भी दूर से बरामदे में खड़ा विभाकर सोहिणी को देख रहा था। उसकी कल्पना में खण्डिता और विरहोत्कण्ठिता नायिका का चित्र दौड़ने लगा। एकाध बार उसे विचार भी आया कि वह सोहिणी को घूर रहा है उसे हट जाना चाहिये। पर वह हट नहीं सका। सोहिणी को देखने के बाद उसकी कल्पना और तूलिका में अपूर्व तेजी आ गई थी। मन्दिर में भागवत के चित्र इतनी शीघ्रता और सुन्दरता से चित्रित हो रहे थे कि देखनेवाले मुग्ध हो जाते थे।

एकाएक सोहिणी की शून्य दृष्टि में ज्योति आ गई। उसके नेत्र सतेज हो गये और उसके स्थिर कपोलों पर रक्त की लालिमा दौड़ गई। वह चबूतरे से उतरकर फाटक की ओर बढ़ा। गाड़ी से उतर कर शिरीष उसकी ओर आ रहा था।

शिरीष ने उतावली से सोहिणी को अपनी ओर आते देखा। बरामदे में खड़ा विभाकर एक टक इस अपूर्व दृश्य को देखता रहा।

"आ गये" भरे गले से सोहिणी ने पूछा "इतने दिनों के बाद?"

शिरीष भूतकाल की सारी बातें भूल गया। अपनी प्रियतमा को देखते ही तमाम छोटी नासमझी विस्मृत हो गई। सोहिणी ने उसके हाथ से बेग ले लिया। अशोक दौड़ता-दौड़ता आकर शिरीष से लिपट गया। उसे गोद में उठाते हुये शिरीष ने सोहिणी से पूछा।

"पर तुम्हारा चेहरा कैसा हो गया है?" वह भूल गया कि वह स्वयं चिढ़कर चला गया था।

"यह तो तुम स्वयं अपने मन से पूछो। चिढ़ कर चला जाना और फिर इस प्रकार प्रश्न करना तुम्हीं को शोभा देता है।"

"नहीं मैं चिढ़ा नहीं था केवल कुछ दिन घूमने के लिये गया था।"

"लक्ष्मी मिली थी न ?" सोहिणी एकदम भूल गई कि कितनी बातों में हास्य और व्यंग नहीं समाते।

"हाँ मिली थी। तुम्हें वह अभी तक खटक रही है ?"

"मुझे क्यों खटकेगी। यह तो जिसे बम्बई जाना हो उसे खटके।"

"वह कौन है ?" विभाकर की ओर देखते हुए शिरीष ने पूछा।

"वह एक चित्रकार आया है। मेरे रूप पर बहुत खुश है।"

सोहिणी और अशोक के साथ शिरीष भीतर गया। धर्मपाल घर में नहीं थे। मुनीम बैठे थे। उन्होंने शिरीष को देख कर कहा—

"क्यों भाई यह सब क्या किया तुमने ?" व्यङ्ग से उन्होंने शिरीष का स्वागत किया।

"क्यों क्या हुआ ?"

"तुम बम्बई जाकर किसी की जमानत दे आये हो, मिल्कियत लिखा दी है और क्या ?"

"आपसे किसने कहा !"

"मुरलीधर सेठ बिना यहाँ लिखे रह सकते हैं !"

"तो इसमें क्या बिगड़ गया ?"

"अरे भाई तुम्हें दुनियाँ की भी कुछ खबर है ?" मुनीम ने कहा "जिनकी जमानत तुमने दी है वह क्या व्यापारी है ! वह तो दोनों सट्टोरिया हैं, उनका क्या भरोसा, पैसा तो अपने माथे पड़ेगा।"

"तो पड़ा करे, समझो कि एक साल लाखे रुपया नहीं कमाया।" शिरीष ने स्वाभाविक रीति से कहा। आने ही उसे मुनीम के ताने की आशा नहीं थी। परन्तु मुनीम को यह बेकार उत्तर जरा भी नहीं रुचा। उसने रुष्ट होकर कहा।

"आप क्या कह रहे हैं। इस प्रकार लुटाने से तो सारा कोष समाप्त हो जायगा। एक बार लाख रुपया पैदा कीजिये तब कहिये तो ठीक भी है।"

शिरीष के माथे पर बल पड़ गया। सोहिणी को जिस बात का भय था वही अन्त में होकर रही। शिरीष ने कहा।

"तो मैं आप के पास से पैसा नहीं माँगता हूँ। मैंने जिम्मेदारी ली है तो खुद पूरा करूँगा।" मुनीम जरा नर्म पड़े।

"पर किस प्रकार भरियेगा यह भी तो सुनूँ।"

"मैं अपने को बेचकर भरूँगा। इस रकम की बाबत आप को चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है।" कहकर शिरीष घर में गया। पति का क्रोध देखकर सोहिणी बहुत खुश हुई।

"ठीक किया तुमने, सबको डाँटता था।" वह बोली। परन्तु भीतर जाकर शिरीष जरा विचार में पड़ गया।

"सोहिणी! मुनीम नौकर हैं इससे मैं जो कहूँगा सुन लेंगे; परन्तु उनका कहना ठीक है। उन्होंने मुझे जाग्रत कर दिया है। शिरीष ने कहा!

"किया है जाग्रत, जरा-सा मुनीम को डाँटकर अफसोस में पड़ गये। किसी को बुरा ही न लगे। एक लाख रुपया इकट्ठा करने में क्या है" मानो सोहिणी के लिये एक लाख रुपया कोई चीज ही नहीं था।

"यही विचार कर रहा हूँ। धर्मपाल का पुत्र होने के कारण शायद मुझे कठिनाई न हो, पर यदि भाग्य का दिया हुआ यह लाभ मैं अस्वीकार करूँ तो मेरी शक्ति कितनी है इसी पर गौर कर रहा हूँ।"

"उसका विचार ही मत करो, मैं चाहूँ तो एक महीने में ही लाख रुपया इकट्ठा कर दूँ! है तुम्हारी इच्छा?" शिरीष को झूले पर बैठाकर उसके वस्त्र ठीक करती हुई सोहिणी ने कहा। शिरीष को हँसी आ गई।

"स्त्रियों के लिये कठिन नहीं है यह ठीक है पर ...."एकदम शिरीष के पास आकर उसके कपोलों में चुटकी काटकर सोहिणी बोली।

"क्या! क्या कहा! फिर से तो कहना।"

"अरे छोड़ो दुखता है। कोई देखेगा तो क्या कहेगा। अशोक आ रहा।" सोहिणी ने कपोल छोड़ दिया।

"मैं तो यह कह रहा था कि तुम्हें कठिनाई नहीं होगी क्योंकि पिताजी ने बीस हजार तुम्हारे वास्ते अलग ही लिख दिया है।"

See Page 202

"मैं उसका विचार भी नहीं करती। धर्मपाल की पुत्रवधू के नाते नहीं, पर अपने गरीब पिता की पुत्री के नाते हिम्मत करती हूँ कि जिस दिन चाहूँ लाख रुपया तुम्हारे हाथ में दे सकती हूँ।"

"साधारण बात-चीत में साधारण बड़ाई छोटाई का ध्यान नहीं रहता है। शिरीष ने बात बदली और अपनी अनुपस्थिति में घर का हाल पूछने लगा।

नीचे धर्मपाल आये। उन्होंने सुना कि शिरीष बम्बई से लौटा है तो बुलाया।

अँधेरा हो गया था। मुनीम ने खाता बन्द कर दिया और गुमाश्तों को भी छुट्टी दे दी थी। उनका चेहरा उतर गया था।

"भाई को तुमने देखा प्रसन्न तो है न!" बैठते हुये धर्मपाल ने उनसे पूछा।

"हाँ प्रसन्न तो हैं, पर मैंने जरा नाखुश कर दिया है।"

"क्यों!"

"वही मुरलीधर सेठ की जमानत के बाबत मैंने कुछ कहा तो उन्हें बुरा लगा।"

"मैं तुम्हें कितनी बार समझाऊँ, भाई और भाभी के खर्चे की बाबत एक शब्द भी कभी न कहने के लिये मैंने तुम्हें कितनी बार कहा है।"

"पैसा क्या चीज है यह सीखेंगे कैसे। दोस्ती के पीछे इस प्रकार एक लाख की जिम्मेदारी खड़ी कर दी वह कैसे होगी और आप तो यात्रा पर जाने की सोच रहे हैं!"

"तुम इतने दिनों से हमारे पास हो और अभी भी नहीं समझते! मैंने यात्रा की बात किस दिन कही थी याद है!"

"हाँ हाँ जिस दिन मुरलीधर सेठ की चिट्ठी आई थी उसी दिन तो!"

"इसका कुछ मतलब तुम्हारी समझ में आता है!"

मुनीम ने विचार किया। धर्मपाल यात्रा करने जायँगे तो व्यापार का सारा प्रबन्ध शिरीष को करना पड़ेगा यह स्वाभाविक ही था।

"देखो मैं समझाता हूँ।" धर्मपाल बोले। "शिरीष को अब प्रबन्ध में पड़ना होगा। वह कितना अभिमानी है यह तुम जानते हो। यह गुण उसे अपनी माता से मिला है। मेरी उपस्थिति में वह कभी भी गद्दी पर नहीं बैठेगा। उसका स्वभाव बहुत उदार है पर इस उदारता को भी सुधारना होगा। अपने मित्र के लिये लाख रुपया फेंक देने जैसी दूसरी बड़ी बात नहीं परन्तु उस लाख रुपये को इकट्ठा करना कितना मुश्किल है यह भी उसे समझना होगा। शिरीष को इस बारे में अभी तक कुछ ख्याल नहीं था। इसी लिये मैं छः सात महीने के लिये सारा प्रबन्ध उसके हाथ में छोड़ना चाहता हूँ। इससे उसके मित्र का ऋण चुकेगा और उसे कमाने की शक्ति आवेगी। इसीलिये मैं यात्रा जाना चाहता हूँ। समझे?"

"यह ठीक रास्ता है, मैंने पहले समझा नहीं था। आप यात्रा जाने वाले हैं और शिरीष भाई एक लाख का देना स्वीकार कर आये हैं। इससे मैं जरा घबरा गया था और आते ही दो बात उनको कह दिया।"

"तुम्हारा यह स्वभाव ही पड़ गया है तो क्या करोगे!" धर्मपाल बोले।

इतने में शिरीष ऊपर से आया और पिता को प्रणाम कर बैठ गया। चिराग जल गया था दूसरी ओर से डाक्टर सुकुमार और विभाकर भी आकर बैठ गये।

"शिरीष तुम तो अच्छे निकले। यह जमानत का क्या झगड़ा उठा लिया है?" डाक्टर ने पूछा।

धर्मपाल इस विषय को एकदम नापसन्द करते थे। डाक्टर को नहीं मालूम था कि अभी इसी बात पर मुनीम से कहा सुनी हो गई है। धर्मपाल ने विभाकर से बात छेड़ी।

"क्यों भाई विभाकर यहाँ अच्छा लगता है न ?"

"हाँ साहब क्यों नहीं, आपका घर तो मुझे बहुत अच्छा लगता है।"

"दूसरे का घर क्यों नहीं अच्छा लगेगा।" धीरे से मनीम बोला–

"इन्हें यहाँ आकर दो अच्छे काम मिले हैं।" डाक्टर ने कहा।

"बहुत अच्छी बात है पर आपका काम अधूरा न रह जाय।" धर्मपाल ने कहा।

"यहाँ का काम अधूरा कैसे रहेगा। वह तो सब काम छोड़ कर करूँगा।" विभाकर ने कहा।

"मन्दिर में कहाँ तक काम हुआ।"

"आज तो बहुत नहीं कर सका। गोपीका गीत किस प्रकार चित्रित करूँ इसी विचार में पड़ा रहा।"

"वाह क्या अच्छा प्रसङ्ग है।" धर्मपालकी धार्मिक भावना बोल उठी। "दूसरा कौन सा काम मिला है ?"

"एक बड़े छापाखाने के मालिक आये थे।" डाक्टर ने कहा।

"हाँ हाँ हमसे भी मिले थे।"

"उन्होंने आपका मन्दिर और दवाखाना देखा। विभाकर उस समय कारीगरों को समझाने के लिये कागज पर एक चित्र बना रहे थे। उन्हें वह चित्र बहुत पसन्द आ गया और उन्होंने उसका ब्लाक बनाकर अपने पत्र में छापने के लिये माँगा। साथ ही प्रति सप्ताहएक चित्र कला-विभाग के लिये लेने की इच्छा प्रकट की।"

"वह चित्र दे दिया है ?" शिरीष प्रथम बार विभाकर से बोला।

"जी यहीं है।"

"देखूँ।" शिरीष ने माँगा पर उसके पहले धर्मपाल उसे लेकर देखने लगे।

"किसका चित्र है ?" उन्होंने पूछा।

' यह तो हमारी राधा की कल्पना है । कृष्ण की भावना का चित्र तो मैंने आपके पास पहले ही भेजा था ।" विभाकर ने उत्तर दिया ।

"तुम नवीन विषयों पर चित्र नहीं बनाते ? राधा और कृष्ण तो अब बहुत पुराने हो गये हैं ।" शिरीष बोला ।

"साहब अपने काव्यों और पुराणों के पात्रों में इतनी नवीनता और विभिन्नता है कि आधुनिक पात्र उनके सामने फीके और निर्जीव लगते हैं । है कोई नवीन भावना ऐसी जो चित्र में आकर चिरञ्जीव बन सके ?

"अब कहो शिरीष ? जो बात तुम संगीत के लिये कहते हो वही बात यह चित्रकलाके लिये कहते हैं ; पर मैं दोनोंमें किसी को भी नहीं मानता ।" सुकुमार ने कहा ।

"क्यों ?"

"आज के पात्र देखो तो स्वयं सजीव मालूम पड़ते हैं । डाक्टर और नर्स, बॉयस्काउट और गर्लगाइड, मिल मालिक और मजदूर, वकील और लेखक इन सबको चित्र में उतारो फिर देखो कि तुम्हारे राम और सीता, कृष्ण और राधा और गोपी टक्कर मारते हैं या नहीं ।"

शिरीष मुस्कराया । उसने धर्मपाल के सामने से चित्र उठा लिया पर देखते ही उसके मन में प्रश्न हुआ "यह राधा है या सोहिणी ?"

चित्र में सभी बातें सोहिणी की थीं । उसी की छटा, उसी की बेपरवाही उसी का सा पहनावा इत्यादि चित्र का सारा वातावरण सोहिणी का था । फिर भी कुछ ऐसी विभिन्नता थी कि वह चित्र सोहिणी का नहीं कहा जा सकता था । युवतियों को इस प्रकार की स्वभाव भरी दृष्टि से कौन देखता है ? प्रियतम या चित्रकार—और यह दोनों कितने ईर्ष्यालु होते हैं !

"तुम कोई प्रतीक (model) रखते हो ? ' शिरीष ने पूछा ।

"हिन्दुस्तान में प्रतीक कहाँ मिलेगा ? यही तो चित्रकारों की कठिनाई है और गृहस्थ स्त्रियों से प्रतीक होने के लिये कहा ही नहीं जा सकता ।"

"तो फिर तुम क्या करते हो ?"

"सुन्दर चित्र और मूर्ति देखता हूँ और फिर अपनी कल्पना की सहायता लेता हूँ।"

परन्तु इस उत्तर से शिरीष को सन्तोष तो नहीं हुआ। पर वह पूछ ही क्या सकता था? बात ही बात में धर्मपाल ने अपने यात्रा जाने की बात कह दी। इसी बात का पत्र पाकर तो शिरीष बम्बई से लौटा था। अकसर वर्ष दो वर्ष में धर्मपाल किसी यात्रा में जाते थे। पर इस बार उन्होंने अधिक समय तक यात्रा करने का विचार किया।

"तुम अब समझदार हुये सब सँभाल सकते हो, इससे मैं छः-सात महीने के लिये चारों धाम करने को जाता हूँ। मुनीम जी हैं तुम्हें कोई कठिनाई नहीं पड़ेगी।" उन्होंने शिरीष से कहा।

"हाँ साहब यह ठीक है। मुनीम जी नहीं रहेंगे तो यह सब गड़बड़ कर देंगे।" सुकुमार ने कहा। मुनीम जी को धर्मपाल की नौकरी में अपने सिवा और सभी बेकार लगते थे। उसमें यह डाक्टर और चित्रकार तो विशेष रूप से बेकार थे। इस कारण आज डाक्टर द्वारा अपनी बड़ाई सुनकर उन्हें थोड़ी प्रसन्नता हुई। आज उन्होंने शिरीष और धर्मपाल दोनों को रुष्ट किया था।

बात इस प्रकार समाप्त कर धर्मपाल जाने के लिये उठे। शिरीष डाक्टर के साथ अपने कमरे में आया। उठते समय विभाकर से पूछा।

"अपने और चित्र दिखाओगे?"

"हाँ हाँ क्यों नहीं" कहकर विभाकर ने अपने कमरे से आठ दस चित्र लाकर शिरीष को दिये। उन्हें देखने के बाद शिरीष ने पूछा।

"तुम्हारा काम कब समाप्त होगा?"

इस बात को सुनकर मोहिनी, सुकुमार और विभाकर तीनों स्तब्ध होकर शिरीष की ओर देखने लगे!

"तुम्हें इधर दो दिन से क्या हो गया है ? तुम क्या करना चाहते हो ?" आखिर अधीर होकर सोहिणी ने पूछा।

"क्यों क्या हुआ ?" शिरीष ने जानकर भी अनजान बनकर पूछा। वह जानता था कि उसके व्यवहार से सोहिणी को बड़ा कुतूहल उत्पन्न हो रहा है।

"तुम्हें कुछ नहीं जान पड़ता है क्या ?"

"नहीं तो !"

सोहिणी खिलखिलाकर हँस पड़ी और बोली "वह मेज साफ करते समय चार बार स्याही उलट दी। नहाकर धोती फैलायी तो उसमें से पानी चू रहा है ! वह फटा हुआ कपड़ा पहनते हुये और भी फाड़ डाला है।"

शिरीष को भी हँसी आ गई। सोहिणी ठीक कह रही थी। शिरीष ने अपने को एकदम सुधारने का कार्यक्रम रचा था। उसने निश्चय किया कि जमानत की रकम वह स्वयं पैदा करके देगा ! परन्तु उसकी मेहनत उसे किस प्रकार उपयोगी हो सकती है ? धनी और प्रतिष्ठित पिता के पुत्र होने के कारण उसे जो लाभ थे उस पर उसका जरा भी ध्यान नहीं था। उस लाभ से अलग वह स्वयं अपनी मेहनत से अपने सर ली हुई जिम्मेदारी पूरा करने को तैयार था। परन्तु केवल तैयारी प्रकट करने ही से तो तैयारी नहीं होती। उसने आत्मनिरीक्षण आरम्भ किया कि वह कौन सा काम कर

सकता है। वह ग्रेजुएट था, विलायत में भी शिक्षा प्राप्तकर चुका था। पर यह दोनों योग्यतायें किस प्रकार उपयोगी हो सकती थीं? इनके द्वारा पैसा कैसे प्राप्त हो! अध्यापक हो या कोई अन्य नौकरी करे। यदि विलायती शिक्षा से उसकी कीमत बढ़ सकती है तो वह अच्छा प्रोफेसर हो सकता है या कोई उच्च अफसर बन सकता है, पर तो भी अधिक से अधिक पाँच सौ रुपये वेतन पा सकता है और उसमें से एक पाई भी खर्च न करने पर वर्ष भर में केवल ६ हजार रुपये ही जमा हो सकते हैं। यह सोचते ही वह चौंक पड़ा। इतने दिन लग जायेंगे। ब्याज इत्यादि जोड़कर कोई बारह वर्षों में एक लाख रुपये हो सकते हैं। उसकी समझ में नहीं आया कि लोग किस प्रकार धनी हो जाते हैं। नौकरी तो निरुपयोगी है। इससे धन नहीं प्राप्त हो सकता।

यदि खेती करे तो कैसा हो? उसे स्मरण हुआ कि अपनी जमींदारी में वह कई बार सैर करने गया था। बड़ा आनन्द आया था। दही, मट्ठा, पापड़, चटनी, पूरी, बरफी अनेक प्रकार की वस्तुयें खाने को मिली थीं। वाह! खेती में कितना आनन्द आता है उसने एक बार पटेल से पूछा भी था कि तुम लोग नित्य इस प्रकार का भोजन करते हो?

"नहीं सरकार यह तो आप लोगों के लिए बनाया जाता है। हमारे लिये तो ज्वार की रोटी और मट्ठा बहुत है।"

"रोज यही खाते हो?"

"हाँ सरकार।"

"तुम्हारे खेत में सब कुछ होता है पर तुम खाते क्यों नहीं?"

"खेत हमारा है सरकार, पर फसल तो दूसरे की है न? हमारी खेती नहीं, हमारी तो मेहनत है।"

उस समय शिरीष की समझ में यह बात नहीं आई थी। एक बार उसने हल चलाने की चेष्टा भी की थी पर नहीं चला सका था। बरसात में कभी-कभी रेल द्वारा यात्रा करते समय उसने किसानों को पानी और

तालों में खड़े मजदूरों के समान ही मेहनत करते देखा था। यह सब स्मरण आते ही खेती के विचार को भी उनने अलग रखा।

हाँ! व्यापार में यदि किस्मत साथ दे तो आदमी बहुत जल्द लखपती हो सकता है। परन्तु व्यापारी आदमी शिरीष को आकर्षक नहीं लगता था। सेठ होकर पुकारा जाना उसे बिल्कुल नापसन्द था तो भी इस समय कनक से इस विषय में पूछताछ करने का उसने विचार किया और उसे बुलाने के लिये सुकुमार की राय ली।

"कनक के मुकाबले तुम्हारे पिता छोटे व्यापारी हैं क्या?" सुकुमार ने पूछा।

"मुझे अपने पिता के नाम का लाभ नहीं उठाना है।" शिरीष ने उत्तर दिया।

"यह ठीक है पर आखिर सम्बन्ध कैसे टूट सकता है। तुम्हारा साथ न होता तो मैं विलायत जाकर डाक्टर कैसे हो जाता? तुम्हारे कथनानुसार तो फिर समाजवाद के आधार पर संस्थायें बने तब हो।"

"मैं एक प्रयोग करना चाहता हूँ। लाख रुपये देने का भार तो है ही। उससे मुझे कमाने की शक्ति प्राप्त होगी।"

"तो फिर कनक से अधिक बुद्धिमान तुम्हारे मुनीम हैं उनसे सलाह लो।"

"मैं बिना बुड्ढों की सलाह के काम करना चाहता हूँ।"

"तो फिर किसी की राय मत लो। न जाने कैसे तुम्हें कनक की बुद्धि पर इतना श्रद्धा हो गई है? यदि उसमें या उसके मूर्ख भागीदार में कुछ भी बुद्धि होती तो तुम्हारे जमानत की आवश्यकता ही नहीं होती।"

"यह रुपया मुझी को भरना पड़ेगा। इसका भी क्या निश्चय है। रोजगार में कठिनाइयाँ आती ही हैं?"

"यह तो तुम निश्चय जानो कि यह रुपया तुम्हीं को भरना पड़ेगा

ये दोनों तो सट्टेबाज हैं इनका दिवाला निकलते जरा भी देर नहीं होती।"

"इसी सम्भावना से तो मैं तैयार होना चाहता हूँ।"

"तो कनक जैसे बेईमान से सलाह लेने पर यह तैयारी होगी ?"

"कनक बेईमान हो सकता है यह मैं जानता हूँ पर तो भी वह हमें यह तो समझा सकता है कि व्यापार क्या है और किस प्रकार हमारे काम आ सकता है।"

"मैं नहीं जानता। तुम्हारी बुद्धि फजूल बातों पर दौड़ती है। भाभी से पूछो वह क्या कहती हैं।"

"उनसे क्या पूछना है ? मैं अपने दुःख का भागीदार उन्हें नहीं बनाना चाहता।"

"तुम चाहते नहीं पर उनका हक तो है।"

"यह ठीक है पर उसका अवसर और है पर इस समय तो मैं देखता हूँ कि कनक से राय लेने की तुम्हारी राय एकदम नहीं है।"

"कनक के साथ कोई भी सम्बन्ध रखने के लिये मैं तुम्हें सदैव मना करता आया हूँ और अब भी वही कहता हूँ।"

"यह तो तुम जानते ही हो कि कठिन काम करने के लिये मैं सबसे पहले तैयार होता हूँ।"

"देखो कनक के साथ व्यापार में पड़ोगे तो निश्चय ही वह तुम्हें भिखारी बनाकर छोड़ेगा।"

"तुम उससे इतना चिढ़ते क्यों हो ? और यदि यह भी मान लूँ तो दरिद्र होने पर कष्ट न हो इसके लिये मैं अभी से तैयार हो रहा हूँ।"

"वह मैं दो दिन से देख रहा हूँ। पर दस घड़ा पानी खींच लेना जूते पर पालिस कर लेना इसको तुम बड़ा परिश्रम समझते हो इस गलतफहमी में मत रहना। दरिद्रता क्या है इसका ध्यान भी तुम्हें नहीं

हो सकता। उसमें जूता भी नहीं मिलेगा घड़ा भी नहीं मिलेगा और पानी भी नहीं मिलेगा।"

"वाह वाह" शिरीष ने ताली पीटी "तुम तो अच्छे व्याख्यानदाता हो सकते हो!"

सुकुमार कभी इन बातों में बुरा नहीं मानता था। वह भी हँस पड़ा। शिरीष की भाँति उसे भी कठिनाई में आनन्दित होने की आदत पड़ गई थी। पर शिरीष की कठिनाई धनवानों की कठिनाई थी और सुकुमार की कठिनाई एक मातृ-पितृहीन बालक की कठिनाई थी शिरीष ने मिठाई चखी थी पर सुकुमार ने कड़ुवा फल ही अधिक खाया था और इस कारण उसकी जिह्वा में कुछ तेजी थी। तथापि दोनों का स्वभाव आनन्दी था और दोनों में बचपन ही से मित्रता थी। दोनों बाल्यावस्था से ही साथ-साथ पढ़ते थे। सुकुमार की विधवा माता उसे पढ़ाने का बड़ा ध्यान रखती थी। पर हिन्दू विधवा की क्या दरिद्रता! यदि पैसा भी होता तो क्या वह तो सुकुमार के जन्मते ही विधवा हो गई थी। विधवा बालक का पोषण कैसे करती है यह वही जानती है। आनन्द के कल्लोल में बहे जाते संसार की नजरों से अपने अन्तर में धधकती हुई ज्वाला को दबाकर छिपाना और बालक को जगत के साथ कल्लोल करने के लिए छोड़ना विधवा माता ही कर सकती है। सुकुमार की माता के पास शिरीष भी जाता था और उसे भी उससे मोह था। दोनों एक दूसरे के बिना नहीं रहते थे। कभी सुकुमार शिरीष के घर रहता तो कभी वह सुकुमार के घर रहता था। पाँचवीं छठवीं क्लास तक पढ़ते-पढ़ते सुकुमार की माता भी चल बसी। शिरीष ने सुकुमार से अपने घर में रहने का आग्रह किया पर उसने स्वीकार नहीं किया। स्कालरशिप (छात्रवृत्ति) और ट्यूशन द्वारा उसने अपना अध्ययन जारी रक्खा। उसे पढ़ने की चाट थी और वह एक बड़ा डाक्टर होना चाहता था। जब उसकी माता बीमार थी तो वह एक डाक्टर के पास गया था परन्तु जब दो घण्टे बैठने के बाद भी उसने

See page 190

बिना फीस लिये न जाने की डाक्टर की भीष्म प्रतिज्ञा सुनी तो वह निराश होकर लौट पड़ा। उसने देखा कि शिरीष उसकी माता के पास बैठा है। बालक सुकुमार किससे अपनी मनोव्यथा कहे? उसने शिरीष से अपना निश्चय कह सुनाया—

"शिरीष! मैं ऐसा डाक्टर बनूँगा कि पैसा लिये बिना ही सबकी दवा करूँगा। जो डाक्टर पैसा माँगे उसे दवा करने का अधिकार नहीं है।"

शिरीष चुपचाप रहा। परन्तु संध्या को न जाने कैसे वही डाक्टर बिना बुलाये सुकुमार की माता को देखने आया। सुकुमार समझ गया कि शिरीष ने ही फीस देकर भेजा है। मानी बालक ने दवा नहीं की। डाक्टर ने भी कह दिया कि बाई बचेगी नहीं सुकुमार मातृ विहीन हो गया!

कालेज में पढ़ते समय शिरीष ने उसे उसकी प्रतिज्ञा की याद दिलाई।

"मैं भूला नहीं हूँ। उसी के प्रबन्ध की चिन्ता में हूँ।" सुकुमार ने उत्तर दिया।

"अगर तुम्हारा प्रबन्ध हो जाय तो?"

"तुम्हारा मतलब है कि तुम्हारे पिता के धन से मैं पढ़ूं।"

"यदि मेरे पिता का न होकर मेरा हो तो तुम्हें क्या आपत्ति है?"

"तुम्हारा कैसा?"

"अपने खर्च के रुपयों में से मैं तुम्हारे लिये बचाता गया हूँ।" सुकुमार अवाक होकर शिरीष का मुँह देखने लगा। उसने कभी मित्रता का उद्गार नहीं किया था। उसे बहुत दिखाने की आदत भी नहीं थी। परन्तु इस समय उसकी जिह्वा पर उपकृत होने का उद्गार आ ही गया। शिरीष समझ गया और उसे रोककर बोला।

"मैंने पिता जी से बात की थी उन्हें तुम्हारा विचार बहुत पसन्द है और तुम्हें विलायत भेजने की भी इच्छा है।"

वह सुकुमार को अपने पिता के पास ले गया। धर्मपाल ने बचपन ही से दोनों को साथ पढ़ते और खेलते देखा था। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से सुकुमार को विलायत भेजकर डाक्टरी पढ़ाने का प्रबन्ध करना स्वीकार कर लिया।

सुकुमार के जाने के बाद शिरीष ने अपने पिता से कहा—

"परन्तु सुकुमार किसी का उपकार नहीं लेना चाहता।"

"अपना उपकार रहे ऐसा होने ही नहीं देना चाहिये। सुकुमार पहले पढ़ तो ले फिर सब पैसा वापस दे देगा या कोई दूसरा उपाय होगा?"

"दूसरा क्या उपाय होगा?"

"बहुत दिनों से हमारा विचार है कि एक अच्छा औषधालय खोलूं। एक अंग्रेज कलक्टर हमारे मित्र थे उन्होंने इसके लिये मुझसे विशेष आग्रह किया था। और मैंने भी उन्हें वचन दिया है। सुकुमार डाक्टर होकर हमारा औषधालय चलावे तो हमारे उपकार के बदले में उसका उपकार हम पर होगा।"

इस प्रकार के सम्बन्ध में विचरण करने वाले इन दो मित्रों में कोई भी भेद भाव नहीं था। और इसी कारण कनक के सम्बन्ध में सुकुमार ने अपना विचार स्पष्ट व्यक्त कर दिया।

"कैसी ताली पीटी जा रही है भाई!" सोहिणी ने भीतर आकर पूछा।

"डाक्टर साहब व्याख्यान दे रहे हैं। और मैं बड़ा प्रसन्न हो रहा हूँ।"

"कैसा भाषण है?"

"आरोग्य और अकस्मात पर।"

"हां ठीक है, क्योंकि शिरीष ने एक ऐसा अकस्मात अपने सर ले लिया है कि मुझे भय है कि कहीं उसका स्वास्थ्य न खराब हो जाय।" सुकुमार ने कहा।

"ऐसी क्या बात है जो स्वास्थ्य खराब कर देगी!" सोहिणी ने पूछा।

"शिरीष सेठ होना चाहते हैं।"

शिरीष ने तीखी नजर से सुकुमार को देखा।

"क्या घूरते हो?"

"घूरने दो मैं अभी पगड़ी और वेस लाकर पहना देती हूँ।"

सोहिणी ने व्यंग में कहा। शिरीष को पगड़ी और वेस से बड़ी नफरत थी और सेठ कहलाना तो उसे बिल्कुल ही नापसन्द था। वह बड़ा घबरा गया। सुकुमार ने सोहिणी से सारी बातें कह सुनाईं। सोहिणी को तो प्रथम ही से इसमें किसी चिन्ता का कारण नहीं मालूम होता था।

"तो आखिर इसमें घबराने की क्या बात है? जल्दी से जल्दी पैसा पाने की तो बात है।"

इस प्रकार घर के लोगों में शिरीष की जमानत एक महत्त्वपूर्ण विषय हो गया था। शिरीष ने अपना स्वभाव ही बदल देने की तैयारी की। परन्तु जो काम कभी न किया हो उसे करने में हास्यास्पद होना पड़ता है। यद्यपि बड़े आदमी के लड़कों की तरह उसने कभी आडम्बर नहीं किया था और सामान्य बालकों के साथ ही खूब मिल जुलकर रहता था तो भी बचपन से सुख भोगने का अभ्यास तो हो ही गया था। नौकर द्वारा जूता पहनने वाले को नौकर के न रहने पर बड़ा कष्ट होता है। शिरीष बिना बन्द का ही जूता पहन लेता था और कपड़े के विषय में भी काफी लापरवाह था। परन्तु सोहिणी के साथ विवाह हो जाने पर वह कुछ परवशता का अनुभव करने लगा था। कपड़ा पहनना, रखना, घर द्वार सजाना, टायलेट ठीक रखना, जब जिस वस्तु की आवश्यकता हो वह यथास्थान मिल जाय इस प्रकार उन्हें रखना इत्यादि यह जीवन के छोटे-छोटे काम बड़े महत्त्वपूर्ण तथा सारे दिन का वातावरण बनाने बिगाड़ने वाले होते हैं। प्रातःकाल उठने पर यदि रखी हुई पुस्तक न मिले तो सारा दिन का कार्यक्रम बिगड़ने का अनुभव बहुतों को होगा। परन्तु सोहिणी ने यह सब भार शिरीष के सर से हटाकर अपने सर ले लिया था इस कारण शिरीष

और भी पराधीन हो गया था। प्रत्येक भली स्त्री इसी प्रकार अपने पति को अपने आधीन बना लेती है।

परन्तु अब शिरीष के जीवन में नया फेरफार हुआ। कोई वस्तु न मिलने पर सोहिणी से न पूछकर वह स्वयं ही पाने की चेष्टा करता। नया कपड़ा बदलने को होता तो वह राह भूले पथिक की भाँति सोहिणी से पूछता और तुरन्त उसे पा जाता। परन्तु अब तमाम सन्दूक और पेटी अव्यवस्थित हो जाती तब कहीं कोई चीज मिलती थी तो भी वह अपने परिश्रम से खोजने का आनन्द तो प्राप्त करता ही था। सोहिणी यही सब देख कर हँसती थी और जब अन्त में उससे नहीं रहा गया तो वह पूछ ही बैठी "दो दिन से तुम्हें क्या हो गया है?"

परन्तु इस प्रश्नोत्तर से सोहिणी को सन्तोष नहीं हुआ और तब उसने गम्भीरता धारण कर पूछा।

"तुम इस प्रकार का टालमटोल उत्तर मत दो।"

"मैं ठीक ही कहता हूँ। मुझे इसी में आनन्द आता है। मेरी विभिन्नता तो तुम जानती ही हो।"

"यह मैं जानती हूँ पर यह विभिन्नता मेरी समझ में नहीं आ रही है। साफ-साफ कहो तुम मुझसे चिढ़ते हो क्या? एक बार भागकर बम्बई चले गये और अब जैसे मैं मर गई हूँ इस प्रकार सारा काम अपने ही हाथों करने लगे हो। तुम्हें मेरी सौगन्ध है जो कुछ तुम्हारे मन में हो मुझसे स्पष्ट कहो।"

"ठीक-ठीक कह दूँ!" प्रियतमा की सौगन्ध सभी प्रेमियों को असह्य होती है इसीसे घबरा कर शिरीष ने पूछा और गम्भीरता से बोला।

"सोहिणी हम लोग—अरे नहीं मैं गरीब हो जाऊँगा। ऐसा लगता है।"

"हम लोग क्यों बदल दिया? तुम गरीब हो जाओगे तो फिर मैं क्यों

नहीं गरीब हो जाऊँगा। और फिर इसमें दुख की क्या बात है? हमारे पिता के पास तो यहां का सा वैभव नहीं है।"

"नहीं यह बात नहीं है। मैं तुम्हें गरीब नहीं देखना चाहता। स्वयं ही अनुभव करने की इच्छा है। इसमें बड़ा आनन्द आता है।"

"पर स्वयं इतना सब बोझ ले लेने की आवश्यकता ही क्या है?"

"आवश्यकता आज नहीं तो छ महीने बाद पड़ सकती है, तब अभी से तैयारी रखनी अच्छी है न?"

"छ महीने के बाद क्या ऐसी उथल-पुथल होने वाली है?"

"क्या जाने पर हो भी सकती है।"

"तुम इस प्रकार गोल-मटोल बातें करते हो कि मेरा जी घबरा रहा है। साफ-साफ सब समझाते क्यों नहीं, मुझे अब भय लग रहा है।

"भय की कोई बात नहीं है, पर यह तो जानती हो कि मैंने कनक की जमानत की है।"

"ओहो! इस बात से देखती हूँ सभी को ऐसी घबराहट हो गई है मानों आकाश फट पड़ा है और तुम भी घबरा गये हो। पर इसमें कौन सी बड़ी बात हो गई है?"

"सभी कहते हैं कि यह बड़ी बात है। आते ही मुझे मुनीम ने ताना दिया, सुकुमार भी यही कह रहा है और मैं भी समझता हूँ कि कनक रुपया देगा नहीं और जमानत मेरे सर पड़ेगी।"

"तो इससे क्या? इतनी बड़ी जायदाद से अगर एक लाख रुपया कम ही हो जायगा तो कौनसी आफत आ जायगी?"

"यह जायदाद किसकी है?"

सोहिणी चकित होकर शिरीष का मुख देखने लगी।

"यह जायादाद मेरी तो नहीं है। अब कुछ समझ में आया?" शिरीष ने पूछा।

"तो फिर किसकी है?"

"मेरे पिता की। इसमें से एक भी पैसा लेने का अधिकार मुझे कैसे हो सकता है। जब जायदाद हमारी नहीं है तो फिर उसमें से खोने का मुझे क्या अधिकार है?"

"पिता की जायदाद पुत्र नहीं ले सकता?"

"नहीं ले सकता। किस अधिकार से वह पिता की जायदाद का मालिक होना चाहता है? किसी पिता के यहां अकस्मात जन्म पाना और उससे लाभ लेना मुझे तो कायरता और निर्बलता जान पड़ती है। इस अधिकार की मान्यता भ्रमात्मक है। पिता का पैसा पवित्र वस्तु है। वह समर्पित करने और बढ़ाने की वस्तु है, न कि अपने लिये बांटने और खोने की?"

सोहिणी हँस पड़ी।

"मैं भी तुम्हें ताली पीटकर उत्साहित करती हूँ। उस दिन तुम सुकुमार की हँसी उड़ाते थे पर देखती हूँ तुम्हें भी व्याख्यान देने की आदत है। तुम्हारा कथन मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता। बाप का पैसा नहीं तो किसका पैसा बांटा जायगा?"

"अपनी कमाई का पैसा बांटा जाता है बाप की कमाई का नहीं। इस पैसे पर अन्य लोगों का हक है।"

"तब तो तुम साधू हो जाओ।"

"मैं वही रास्ता पकड़ने की चेष्टा में हूँ।"

"अच्छा! अब मैं समझी। पर मैं तुम्हें साधू होने से रोकूंगी नहीं फिर मैं भी तुम्हारे साथ ही साधू बन जाऊँगी।"

"अब मैं भी तुम्हें ताली से उत्साहित करता हूँ सोहिणी। हम सब भाषणकर्ता हो गये।" सोहिणी के सुन्दर मुख को गम्भीर बनते देख कर शिरीष ने कहा। सोहिणी ने अपनी दोनों हथेलियों के बीच शिरीष के दोनों कपोलों को दबा कर दूर से उसके अधरों का चुम्बन किया और उसे भावमुग्ध अवस्था में छोड़कर बिजली की तरह कमरे से बाहर दौड़ गई।

अधूरा अभिनय असह्य होता है। साधू बनने की इच्छा वाले शिरीष को सम्पूर्ण चुम्बन की तृप्ति की इच्छा थी। वह भी कमरे के बाहर निकला। सोहिणी विभाकर के कमरे में जाती हुई दिखाई पड़ी। शिरीष को विभाकर पर ईर्ष्या हुई। वह सोहिणी के लिये ही पीछे आया था। उसका आवेश यद्यपि स्थिर था पर भाव बदल गया। ऐसे अन्जान और दरिद्र विभाकर के पास सोहिणी बार-बार क्यों आया करती है ? गरीब होने की तैयारी करते हुये शिरीष को गरीबों से ईर्ष्या हुई। अपनी स्त्री पर उसने कभी भी शंका नहीं की थी और सोहिणी कब किससे मिलती है इसकी उसे जरा भी परवाह नहीं थी ; पर आज वह धीरे-धीरे जाकर विभाकर के द्वार पर खड़ा हो गया। चोर या जासूस का कार्य उसने कभी नहीं किया था पर आज आपसे आप यह काम उससे हो गया। उसने भीतर की बातें सुनी।

"विभाकर ! तुमने एक दिन कहा था कि यदि मैं प्रतीक बनूं तो तुम्हारे चित्र जगत् प्रसिद्ध हो जायेंगे ? यह ठीक है ?"

"हाँ- बिल्कुल ठीक है। आपके दर्शन मात्र से मेरी कला का इतना विकास हुआ है कि चित्रों की माँग बहुत बढ़ गई है।"

"तो तुम्हें इससे पैसा भी खूब मिलेगा ?"

"मेरा ख्याल तो ऐसा ही है। आज-कल तो मुझे अपनी कल्पना के अनुसार पैसा मिलने लगा है पर मुझे सन्तोष इस बात का है कि मेरी कला ठीक हो गई है और चित्र सुन्दर बनने लगे हैं।"

"मैं प्रतीक होकर बैठूँ तो तुम मुझे क्या दोगे ?"

विभाकर की बोलती बन्द हो गई। थोड़ी देर बाद वह बोला "आप जो कहेंगी दूँगा। पर मेरी कल्पना तो केवल आपको देखती है।"

शिरीष वहाँ से पीछे लौटा। उसके पाँव थरथरा गये। सोहिणी ने द्वार की ओर देखा शिरीष जल्दी-जल्दी लौटा जा रहा था। वह मुस्कुरा पड़ी।

—१६—

मोहन सेठ के दीवानखाने में कनक और सेठानी दोनों बैठे बातें कर रहे थे। एकाएक मोटर का हार्न सुनकर दोनों मुस्कुराये और सेठानी अन्दर चली गई तथा कनक एक समाचार पत्र उठाकर पढ़ने लगा। थोड़ी देर में मोहन सेठ भीतर आये।

"जिसे भोगना हो वह पुलिस के पाले पड़े। मेरा भी ख्याल नहीं! मुझसे भी इस प्रकार का व्यवहार!" कहते हुए क्रोध से मोहन सेठ झूले पर बैठ गये।

"क्यों क्या हुआ कुछ पता लगा?" कनक ने पूछा।

"अरे कहाँ का पता जी। बिना घूस के कहीं पुलिस काम करती है! मुझे तो ऐसा क्रोध आ रहा है कि दावा ही उठा लूँ पर वह भी नहीं हो सकता। फौजदार कहता है कि रिपोर्ट उठा लेने पर भी पुलिस का काम होता ही रहेगा। भाई मैं तो घबरा गया हूँ।"

"ऐसे घबराने से कैसे होगा। हाथ में काम लेने पर तो उसे पूरा करना ही पड़ेगा।"

"तो भाई अब तुम सँभालो तब ठीक होगा।"

कनक ने अखबार अलग किया और कुर्सी खींचकर झूले के पास आ गया तथा गम्भीर होकर बोला।

"मैं सँभालूँ! जो-जो काम मैंने किया है सब पूरा हुआ है पर तुम

जरा भी उपकार नहीं मानते। अब मैं तुम्हारा कोई भी काम हाथ में नहीं लूँगा।"

"तो आखिर तुम कहना क्या चाहते हो?"

"मैं यह कहना चाहता हूँ कि तुम्हें मैंने आफत से बचाया है। तुम्हें एक लाख रुपया देना पड़ता। स्त्री के नाम जायदाद चढ़ाने का अवसर भी न मिलता चोरी का झूठा तमाशा खड़ा किया और शिरीष को अपने लिये मैंने जमानत तैयार किया तब तुम देना भरने और जेलखाने जाने से बचे। यदि ऐसा न होता तो शिरीष को कभी हमारे ऊपर दया न आती और वह कभी भी जमानत न करता। इसे भूलना मत?"

"तो इससे इन्कार कौन करता है। पर यह सब करने वाले तो तुम्हीं हो?"

"हां हां मैं ही यह सब करने वाला हूँ। यह कहने में मुझे जरा भी भय नहीं है। चोरी करके जिसने छिपाया है वह हमारा आदमी है और वह हमारा नाम कभी नहीं बतावेगा। पर मैं जब तुम्हारी पोल खोल दूँ तो तुम्हें उसी दिन हथकड़ी पड़ जा सकती है।"

यह सुनकर मोहन सेठ तिरस्कार पूर्वक हँसे।

"मुझे हथकड़ी डलवाने वाला मर गया है समझा। अपने साथ मैंने तुम्हें भागीदार बनाया। जब तुम्हें कोई खड़ा भी नहीं होने देता था, व्यापार सिखाया और पैदल चलने के लिये मोटर में घूमने के योग्य बनाया और उसके बदले में तुम मुझे हथकड़ी डलवाने का भय दिखाते हो? तुम्हारे जैसे कितनों को मैं जेब में रख कर घूमता हूँ। तुम्हें जो करते बने कर लेना। बही मेरे हाथ में कभी की आ गई है।"

कनक ने मोहन सेठ की ओर देखा। उसके नेत्रों में बदमाशी और हरामखोरी की झलक दिखाई पड़ी। उसकी मुख मुद्रा विजयी पुरुष के समान बेपरवाही का भाव व्यक्त कर रही थी। उसकी इच्छा हुई कि वह मोहन सेठ की आँखें फोड़ दे, पर उसने गुस्से को दबाया। उसे विश्वास

था कि वह आज मोहन सेठ को अवश्य परास्त करेगा और इसी लिये उसने गुस्से को दबाया और बोला ।

"यह तुम्हारी भूल है मोहन सेठ । मेरे जाने के बाद तुमने जहाँ बही रखी है वहां खोजना तब तुम्हें हकीकत मालूम होगी । पर यह सब बात तो होती रहेगी लेकिन शिरीष जमानत के लिये जायदाद लिखने को कहता है मैंने दस्तावेज लिखकर दे दिया है और अपनी सही भी कर दी है । तुम्हारी सही के लिये भी वह आग्रह कर रहा है नहीं तो अगर वह जमानत वापस ले लेगा तो मैं नहीं जानता ।"

"मेरी जायदाद तो कभी लिखी जा चुकी है यह भी तुम्हें मालूम है । वह मेरी स्त्री के नाम है । अब तुम और तुम्हारे शिरीष टक्कर मारा करो ।"

"ठीक है तुम्हें अभी मालूम पड़ जायगा कि कौन टक्कर मारेगा । जिस दिन जायदाद सेठानी के नाम लिखी जा रही थी उसी दिन मेरी दरख्वास्त पड़ गई है कि यह जायदाद शिरीष के बजाय चालबाजी से सेठानी के नाम लिखाई जा रही है । अब तो यह फौजदारी का प्रश्न हो गया है..................।"

"पर इन सब पचड़ों में आखिर तुम्हारे पड़ने का क्या कारण है ? तुम हमसे अपना चार आना हिस्सा लो और चुपचाप बैठो ।"

"अब यह तो तुम समझो । मैंने किसी स्वार्थ के वशीभूत होकर ही तो अपने पुराने दोस्त को लाख रुपये की जिम्मेदारी में फँसा दिया है । और स्वार्थ की बात जाने दो तुम तो मुझे एकदम भिखारी बनाना चाहते हो । जायदाद सेठानी के नाम चढ़ाने बैठे । तुम्हें शरम नहीं आती कि जिसके कारण तुम देनदारी और जेलखाने से बचे उसे टक्कर मारने को कहते हो । आज से मैं तुमसे बिल्कुल अलग होता हूँ । अब हम और शिरीष अलग व्यापार करेंगे । यह देखो उसकी चिट्ठी ।"

मोहन सेठ ने पत्र हाथ में लिया । शिरीष जैसा धनाढ्य कनक के हाथ में आये यह कनक के लिए बड़ी सौभाग्य की बात होगी । उस दशा

में वह उन्हें भारी घाटा दे सकता है फिर जायदाद को स्त्री के नाम कर देने की बात कनक जान गया था। चतुर व्यापारी बिकने वाली जायदाद का कागज रख कर समय पर उसका उपयोग करते हैं। परन्तु यह बात कनक की दृष्टि से बाहर नहीं गई थी यह आज मोहन सेठ को ज्ञात हो गया। अदालत में बात खुलने पर क्या होगा नहीं कहा जा सकता। कनक ने ही कागज और बही चुराई जाने की युक्ति की थी। इसी के लिये उसने शिरीष को बुलाया भी था। वह स्त्रियों को परखने में बड़ा चतुर था इसी से उसने बम्बई में लक्ष्मी को ढूँढ़ निकाला था। वह जानता था कि लक्ष्मी से मिलने शिरीष अवश्य आवेगा। उसने उसे पत्र लिखा और अपने कठिन समय में उसकी युक्ति काम कर गई। लक्ष्मी के चित्र के विषय में शिरीष और सोहिणी में झगड़ा हुआ और लक्ष्मी का पता बम्बई में पाकर कनक का पत्र पाते ही शिरीष बम्बई चला आया। कितने ही वर्ष पहले वह इस निर्दोष पाप पंक में पड़ने वाली बाला से मिल चुका था। सौन्दर्य कीचड़ में रहे यह सौन्दर्योपासकों से नहीं सहन हो सकता। रूपवती स्त्री सबके सामने अपने रूप का प्रदर्शन करती फिरे यह सौन्दर्यभक्त से नहीं देखा जा सकता। लक्ष्मी का गाना और अभिनय इतना अलौकिक था कि वह लौकिक वेश्याओं में सम्भव ही नहीं हो सकता। शिरीष और सुकुमार दोनों ने मिलकर लक्ष्मी को अलौकिक रखने का रास्ता निकाला। वह अभी तक लौकिक वेश्या नहीं बनी थी। उसके पालकों और संरक्षकों ने पाप के रास्ते पर ले जाने की बड़ी चेष्टायें की थीं। पर उसने केवल कला ग्रहण कर अधमता को दूर ही रखा था। वह अनेक देशों में घूमी थी। अनेकों घर उसे याद थे पर उसका अपना घर गुजरात में है यह उसे कभी नहीं भूला था। अपने संरक्षकों को किसी प्रकार राजी कर वह गुजरात आई और बम्बई में उससे सुकुमार तथा शिरीष से भेंट हुई। कनक की ही चाल में वह ठहरी थी। कनक ने कितनी बार उसे आकर्षित करने की चेष्टा की थी। पर इसका अनुभव उसे पहले हो चुका था। संसार निरपराध

युवतियों को दूसरी दृष्टि से देख ही नहीं सकता। शिरीष का संगीत सुनकर लक्ष्मी को उस पर श्रद्धा हो गई थी। उसने अपनी कला शिरीष को बतायी और इस प्रकार दोनों में निर्मल सद्भाव हो गया। सुन्दर संगीत कभी विकारोत्पादक नहीं हो सकता। सुकुमार संगीत पर हँसता था, कभी कलाओं को वह खिल्ली उड़ाता था पर तो भी वह संगीत का शत्रु नहीं था। लक्ष्मी के संगीत में विशेषता थी। वह कभी प्रेम संगीत नहीं गाती थी। कौशल्या या यशोदा के वात्सल्य भरे गीत या ईश्वर स्तुति ही उसके गाने होते थे। गाते समय लक्ष्मी स्वयं रोती और सुनने वाले को भी रुला देती थी। एक दिन एकान्त में अपने अश्रुपूर्ण नेत्रों से देखकर उसने इन तीनों युवकों से प्रार्थना की थी।

"मेरे माता पिता का पता लगा दो।"

सुकुमार को अभिमान था कि वह कभी रो नहीं सकता। वह कभी करुणा के वशीभूत नहीं होता था पर तो भी लक्ष्मी को इस प्रकार रोते देखकर उसने क्षण भर के लिये अपना चेहरा घुमा लिया और मुँह पोंछने के बहाने अपनी आँखें पोंछ लीं। कनक बचपन ही से स्त्रियों के विषय में अनुभवी समझा जाता था। कालेज में भी स्त्रियों के सम्बन्ध के वाद विवादों में उसकी राय प्रामाणिक मानी जाती थी। लक्ष्मी की प्रार्थना सुनकर वह हँस पड़ा।

"क्यों हँसते हैं?" लक्ष्मी ने पूछा। उसकी मनोवेदना किसी का हास्य नहीं सहन कर सकती थी।

"तुम कहती तो ठीक हो पर तुम्हारे माता पिता मिले भी तो तुम्हारे किस लाभ के?" कनक ने उत्तर दिया।

"क्यों?" सुकुमार ने पूछा।

"इनके माता पिता अब इन्हें पहचानेंगे भी। और पहचानने पर अपनावेंगे कैसे?"

"क्यों अपनाने में क्या हर्ज है?"

कनक को इस जड़भरत सुकुमार पर हँसी आ गई। वह बोला "अरे भले आदमी वेश्यावृत्ति ग्रहण करनेवाली लड़की को कोई माँ बाप अपनी लड़की मानेंगे ?"

"यदि उन्हीं की लड़की हो तो भी नहीं मानेंगे ?"

"नहीं कभी नहीं मानेंगे।"

लक्ष्मी जरा शान्त हुई। उसे कनक की बातें ठीक जान पड़ीं। अपने आँसुओं को रोक कर वह बोली।

"ठीक है मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि जब तक इस काम को छोड़ न दूँगी और अपनी और बहनों को भी अलग न कर लूँगी तब तक माता पिता का पता नहीं लगाऊँगी।"

अधेड़ पुरुषों को कालेज का इस प्रकार का सम्बन्ध असम्भव ही जान पड़ेगा। यदि कालेज में पढ़ने वाले युवक अपने विचारों को नोट रखें तो अधेड़ अवस्था में कितनी ही असम्भव बातों पर प्रकाश पड़ सकता है।

कनक, सुकुमार और शिरीष की गणना कालेज के आदर्श विद्यार्थियों में नहीं थी। सुकुमार और शिरीष यद्यपि पढ़ते तो ठीक थे तथापि उनका व्यवहार विचित्र ही होता था। अनियमित उपस्थिति, इधर-उधर में समय बरबाद करना और शरारत में सबसे आगे रहने के कारण यद्यपि ये दोनों चतुर थे तथापि प्रोफेसरों और अच्छे विद्यार्थियोंका भाव इनकी ओर सद्भाव पूर्ण नहीं था। उस पर शिरीष का गाने का शौक इस शंका को और भी पुष्ट करता था। लक्ष्मी के सम्बन्ध की भी कितनी ही बातें कालेज में फैल गईं। और तीनों लपेटे गये। परन्तु इसकी किसी ने भी परवाह नहीं की। एकाएक लक्ष्मी गुम हो गई। फिर कितने ही वर्ष बीत गये और वह कहां गई इसकी किसी को खबर भी नहीं मिली। जब कभी शिरीष उसे स्मरण करता तो सुकुमार कहता कि वह तो अपनी प्रतिज्ञा पालन कर रही है। कनक को सन्देह था कि शिरीष ने लक्ष्मी की बड़ी सहायता की है। उसे यह भी मालूम था कि शिरीष को उस पर बड़ी दया आती है और उसके

संगीत तथा अभिनय पर वह मुग्ध है। बम्बई में एकाएक कनक की दृष्टि लक्ष्मी पर पड़ गई और उसने पुरानी जान पहचान चलाई तथा लक्ष्मी से मिलाने के बहाने से शिरीष को बुलाकर अपने व्यापारी संकट को टालने की युक्ति की। युक्ति सफल हो गई। शिरीष पुराने दोस्त की मदद करना अस्वीकार नहीं कर सका और उसके साथ कनक ने अब मोहन सेठ को भी शिकंजे में लाने का विचार किया। मोहन सेठ अपनी ही चाल में लगे थे पर कनक ने उन पर बराबर नजर रखी और उनकी चालों को विफल करने के लिये पहले ही से उपाय कर रखा था। मोहन सेठ ने जब यह सुना तो कुछ नर्म पड़े और जब शिरीष और कनक के व्यापार की बात सुनी तो उन्होंने एक दम से बात पलट दी।

"शिरीष कितनी रकम लगाना चाहता है?" चिट्ठी लौटाते हुये उन्होंने कनक से आगे पूछा।

"इसमें रकम की क्या बात है। पता नहीं कि पिता यात्रा करने जा रहे हैं और तमाम व्यापार सौंपते जायेंगे।"

"पर शिरीष का व्यापार तो चलता ही है?"

"वह दूसरा व्यापार करना चाहता है और इसीलिये तो मेरे पास पत्र भेजा है।"

एकाएक द्वार खुला और भैयो ने आकर मुरलीधर सेठ के आगमन की सूचना दी।

देनदार और पावनेदारका सम्बन्ध बड़ा नाजुक होता है। अच्छा लगे या न लगे और विशेष कर अच्छा ही नहीं लगता पर फिर भी पावनेदार का स्वागत करना ही पड़ता है। दोनों जल्दी से मुरलीधर सेठ का स्वागत करने के लिये उठे। शिरीष की जमानत स्वीकार करके मोहन सेठ को दिवाले से बचाकर मुरलीधर सेठ ने काफी उदारता दिखाई थी। परन्तु इस समय एकाएक कैसे पहुँच गये यह दोनों में से कोई भी नहीं समझ सका।

आदर पूर्वक अन्दर ले जाकर दोनों ने उन्हें बैठाया और मोहन सेठ ने बात आरम्भ की।

"ओ हो ! सेठ साहब आज तो बड़ी कृपा हुई। कैसे कष्ट किया?" परन्तु मुरलीधर सेठ इतने बड़े आदमी थे कि मोहन सेठ की चाटुकारितापूर्ण बातों का उन पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा। वह पुलिस कमिश्नर और गवर्नर के मिलने वालों में से थे इससे इन छोटे व्यापारियों को उत्तर देने के लिये उनको आवश्यकता नहीं थी।

"तुम्हारा कुछ प्रबन्ध अभी दिखता नहीं है। जरूर तुम लोग शिरीष को फँसाना चाहते हो।" मुरलीधर ने कहा "मैं तो सच्ची बात कहता हूँ।" बड़े आदमी सदैव सच्ची बात ही तो कहते हैं और उसी के अनुसार आचरण करने का भी दम भरते हैं। पर वे यह भूल जाते हैं कि सुनने वाले को वह पसन्द नहीं आती। सत्य कभी कटु भी हो सकता है या अप्रिय भी हो सकता है यह सच्ची बात कहने वाले भूल जाते हैं।"

"नहीं नहीं सेठ जी आधी रकम तैयार हो गई है और बाकी आधी भी शीघ्र ही तैयार हो जायगी? हम लोग एक पाई भी शिरीष के सर नहीं रहने देंगे।" कनक ने कहा।

"अगर ऐसी बात होती तो फिर शिरीष हमारे साथ व्यापार करने क्यों आता। यह देखिये उसका पत्र। हमारे साझे में रोजगार करना चाहता है।" मोहन सेठ ने कहा।

कनक को इस चालाक व्यापारी पर एकदम से अश्रद्धा हो गई। अभी ही उसे बिल्कुल अलग करनेवाला मोहनसेठ एक बार ही शिरीष के धन से लोभित होकर साझे में पड़ने की योजना प्रकट करने लगा यह कनक की समझ में अब आया।

"यह तो तुम लोग जानो और शिरीष जाने। मुझे तो अपने पावने से काम है। पर इस समय मैं दूसरे ही काम से आया हूँ। देखो इस नाम

का आदमी तुम्हारे यहाँ रहता है?" कहते हुये सेठ ने एक कार्ड कनक को दिया।

"हाँ हाँ वह यहीं रहता है।" कनक ने कहा—

"कौन है जी?" मोहन सेठ ने पूछा।

"अजी वही विभाकर की बात है। बहुत अच्छा चित्रकार है।"

"अरे क्या अच्छा है जी। कितने दिन हुये हमारे यहाँ से एक चाँदी का फ्रेम ले गया है पर देता नहीं। आदमी भेजे तो कहता है घर में नहीं है। मुझे फ्रेम की परवाह नहीं है पर मेरे घर में उसकी बड़ी जरूरत है। मेरी स्त्री की ज़िद है कि जैसे हो फ्रेम आना चाहिये। खास कटक का बना है। नहीं मैं केवल फ्रेम के लिये कभी भी नहीं आता।"

"उसे" और "उसको" जैसे दर्शक सर्वनाम हिन्दू कुटुम्ब की लज्जा और मर्यादा की ध्वजा हैं। अठारह वर्ष की नववधू का नाम कहना लज्जास्पद होता है और उसी प्रकार पति का नाम लेने के अवसर पर हृदय कम्पित हो जाता है तथा स्त्रियों के मुख से उपरोक्त सर्वनाम "उन्हें" या "उनको" निकल आता है। यह मानस शास्त्र और रस शास्त्र का सर्वमान्य नियम है। परन्तु अस्सी वर्ष के विधुर भी जब अपनी स्वर्गीया पत्नी का परिचय सर्वनाम द्वारा कराते हैं तब वहाँ रस शास्त्र और मानस शास्त्र का क्या अभिप्राय है यह केवल हिन्दू समाज को समझने का ही अधिकार है यह मानने को बाध्य होना पड़ता है।

"पर आजकल वह यहाँ है नहीं कहीं बाहर गया है।" कनक बोला।

"वह नहीं है तो उसके घर में जो भी हो उसे बुलाओ। आज बिना कुछ निश्चय किये मैं नहीं जाऊँगा।"

कनक ने भैयो को भेजा कि विभाकर के घर से किसी को बुला लावे पर वहाँ से सुधा के सिवा और कोई आ ही नहीं सकता था। भैयो उसे समझा बुझाकर ऊपर ले आया। इतने दिनों से रहने पर भी सुधा को

मोहन सेठ के घर किसी ने नहीं बुलाया था इससे उसे जरा संकोच हुआ। वह डरती हुई भैयो के साथ आई। उसके विचार में विभाकर का संसार के साथ केवल कर्जदार का ही सम्बन्ध रह गया था। उसने सोचा कि मोहन सेठ भी भाड़े के विषय में कुछ कहने के लिये बुलाते होंगे।

कमरे में अजनबी पुरुषों को देख कर वह संकुचित होकर भैयो के पास ही खड़ी रही। भैयो ने उसका परिचय देकर कहा कि यह विभाकर की बहन है।

"तुम्हारा भाई फ्रेम ले आया है वह कहाँ है?" मुरलीधर ने पूछा।

"मुझे नहीं मालूम।" सुधा ने उत्तर दिया। उसका स्वर मीठा और सम्मान भरा था। पर इससे इस त्रिपुटी पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा।

"सभी चोर हैं क्या! तू नहीं जानती तो कौन जानता है!" मुरलीधर ने धमका कर कहा।

"चोर-चोर मत कीजिये। आपका फ्रेम भाई ले गया है तो कुछ खा नहीं जायगा।" सुधा ने भी उग्र होकर उत्तर दिया।

"तो फिर फ्रेम गया कहाँ!"

"भाई आवेगा तो उससे पूछना।"

"तुम्हारा भाई तो न जाने कब आवेगा और मुझे अगर आज फ्रेम नहीं मिलेगा तो मैं पुलिस को बुलाकर तलाशी लूँगा।"

सुधा पुलिस और चोरी का नाम सुनकर भयभीत हो गई। उसके नेत्रों में आँसू छलक पड़े परन्तु वह कुछ बोली नहीं।

"लड़की से यह सब बातें करना बेकार है उसे आप क्यों डराते हैं। आप उसके भाई को खत लिखिये लड़की क्या जवाब दे सकती है!"

भैयो भूल गया कि वह नौकर है सलाहकार नहीं। शायद दूसरा नौकर होता तो उसकी इस धृष्टता के लिये डाँट पड़ जाती, परन्तु शरीर

तथा बल का रोब मालिक पर भी होता है। लम्बे-चौड़े जवान भैयों के आगे बोलने की हिम्मत किसी को भी नहीं हुई। मुरलीधर सेठ सुधा को धमका रहे थे। पर उसे ध्यान से देख भी रहे थे। उन्होंने पुनः कहा—

"देख लड़की अपने भाई को आज ही चिट्ठी लिख दे। दो तीन दिन में अगर क्रेम का पता नहीं लगेगा तो फिर मैं नहीं जानता।"

सुधा चली गई तब उन्होंने पूछा।

"इस लड़की का विवाह हो गया है?"

भैयों ने यह सुनकर जाते-जाते मुरलीधर को तीक्ष्ण दृष्टि से देखा। कनक भी समझ गया। उसे याद आ गया कि मुरलीधर सेठ को कोई संतान नहीं है। उनकी अवस्था भी पचपन वर्ष की हो गई थी। उन्हें उत्तर मिला कि गरीबों का विवाह आसान नहीं है और सुधा का भाई गरीबी है। मुरलीधर सेठ ने इस प्रकार सर हिलाया जैसे किसी बात का ध्यान कर रहे हों।

नीचे सुधा अपनी कोठरी की ओर चली गई। वह सोचने लगी कि उसके भाई के सर एक न एक आफत लगी ही रहती है इसका क्या कारण है। कोठरी में जाते ही उसने विभाकर को सामने खड़ा देखा। भाई को देख कर उसके नेत्र प्रफुल्लित हो उठे।

"भाई! भाई!! तुम आ गये।" कह कर वह उससे लपट पड़ी। "कितने दिन हो गये। मुझे तो यहाँ तुम्हारे बिना कुछ अच्छा ही नहीं लगता था। अब मैं कभी तुम्हें अकेला नहीं जाने दूँगी।"

अपनी प्यारी बहन के सर पर प्यार से हाथ फेरते विभाकर अवाक् हो गया। संसार में किसी भी स्थान पर उसका आदर नहीं होता था। केवल इस छोटी कोठरी में उसने भावों के अथाह महासागर का अनुभव किया। वह संसार और उसकी कठिनाइयाँ भूल गया। बहन के निःस्वार्थ प्रेम में सारी दुनियाँ डूब गई।

द्वार पर खटखटाहट सुन कर वह इस तन्द्रा से जाग्रित हुआ वह चौंक पड़ा सुधा भी चौंकी। उसे भय हुआ कि कहीं फ्रेम माँगने वाला सेठ तो नहीं आया है ! भाई के आते ही पुनः कोई परेशान करेगा क्या ? वह विभाकर को छोड़ कर द्वार पर आई और जरासा खोलकर बाहर देखा कि कहीं सेठ भाई को देख न ले ? पर उसका भय व्यर्थ था। एक किशोरी द्वार पर खड़ी थी। सुधा ने पूरा-पूरा द्वार खोल दिया साथ ही विभाकर चकित हो गया। वह बोलना ही चाहता था। "कौन सोहिणी ?"

"आप अभी ही आ रहे हैं ?" किशोरी ने अन्दर आकर पूछा।

"हाँ अभी ही आ रहा हूँ।"

"बहन ने तो दो दिन पहले के लिये ही लिखा था। मैं समझती थी कि मुझको ही विलम्ब हुआ।"

"मुझे रास्ते में दो दिन की देर हो गई। बहन ने क्या लिखा था ?" विभाकर समझ गया कि यह सोहिणी नहीं वरन् उसकी बहन वीणा है। इसी ने कृष्ण का चित्र लेकर धर्मपाल के कुटुम्ब में विभाकर का परिचय कराया था।

"बहन ने लिखा है कि आप चित्र को पूरा न कीजियेगा। उनकी अनुपस्थिति में चित्र ठीक नहीं उतरेगा। आप के पास खास तौर से आकर कहने के लिये लिखा था।"

विभाकर मुस्कराया "आप मेरी ओर से बहन को धन्यवाद लिख दीजियेगा। मेरे चित्रों की उन्हें इतनी चिन्ता न होती तो मैं कुछ भी न कर पाता।"

सुधा चुपचाप वीणा को देख रही थी। जब वह जाने लगी तो विभाकर ने पूछा।

"आप तो सोहिणी की बहन हैं न ?"

"हाँ।"

"आप इतना और पूछ लीजियेगा कि अगर सोहिणी बहन के जैसा प्रतीक मुझे मिल जाय तो मैं अपना चित्र पूरा कर लूं ?"

वीणा में उसने अपने सामने सोहिणी के सम्पूर्ण विकसित सौन्दर्य का छोटा नमूना अपने सम्पूर्ण होने का परिचय देता हुआ दिखाई पड़ा। सम्पूर्णता से अधिक आकर्षक सम्पूर्णता पाने की अवस्था होती है। पूर्ण विकसित पुष्प से अधिक सुन्दर विकसित होता हुआ पुष्प होता है। सौन्दर्य की यही दार्शनिकता है। स्थित, निश्चित और आत्म गौरव-पूर्ण सौन्दर्य पूजनीय होता है। खिलता हुआ विकसित होता हुआ तथा पूर्णता को पहुँचता हुआ सौन्दर्य प्रिय होता है। कली, अर्ध विकसित और पूर्ण विकसित पुष्प यह सौन्दर्य की तीन अनिर्वचनीय अवस्थायें होती हैं !

लौटती हुई वीणा को बार-बार ध्यान से देखते हुये विभाकर को सुधा ने धक्का देकर पूछा "क्यों कहो इस चंचल बालिका का चित्र तो नहीं बनाना है ?"

और वास्तव में विभाकर वीणा के चित्र का ही विचार कर रहा था।

———

—२०—

मुरलीधर सेठ की उदारता निःस्सीम थी। उन्हें पैसे की परवाह नहीं थी। उसकी कोई कमी भी नहीं थी। इतनी बड़ी सम्पत्ति के भोक्ता केवल दो प्राणी थे। मुरलीधर और उनकी स्त्री गौरी। परन्तु इन्हीं दो आदमी के लिये एक पूरा महल सा मकान छोटा था और तीन हवेलियाँ भी बन

थी। एक मोटर से काम नहीं चला तो चार मोटरें खरीदी गईं। मुरलीधर का सम्मान भी बहुत था। शाहखर्चों में उनका नाम सबसे पहले लिया जाता था। इसका एक भी अवसर वे नहीं जाने देते थे। उनके अनेक मित्र और आश्रित थे। उनका बहुत सा समय मित्रों की खातिरदारी में निकल जाता था। यूरोपियन लोग विशेषतः भारतीयों के साथ कम मिलते हैं, परन्तु मुरलीधर की पार्टियों में उनकी काफी संख्या रहती थी। इस बात का मुरलीधर को बड़ा अभिमान भी था।

युवावस्था में उनके विचार बड़े अग्रणी थे। उनका विवाह बाल्यावस्था ही में हो गया था पर इसमें उनका दोष नहीं था। उनकी बाल पत्नी बाल्यावस्था ही में मर गई थी इससे उन्हें बाल विवाह से बड़ी चिढ़ थी। स्त्री शिक्षा के भी वह बड़े पक्षपाती थे।

दर्शन पूजा को वह पचड़ा समझते थे और उसके झगड़े से दूर ही रहते थे। फिर इससे अधिक और क्या अग्रगामी विचार हो सकते हैं?

समयानुसार उनके विचारों में मृदुता का प्रवेश हुआ। पढ़ी-लिखी स्त्री होना ठीक है पर उसे गृह-कार्य में लगाना चाहिये। बाल विवाह अच्छा नहीं परन्तु पति पत्नी के सम्बन्ध में बड़ों की सम्मति लेनी चाहिये। खानदान में अधिक भेद नहीं परन्तु आरोग्यताका विचार होना ही चाहिये। इस प्रकार उनके विचारों में परिपक्वता आने लगी।

उनकी दूसरी स्त्री भी मर गई। धनी, सम्मानित और प्रतिष्ठित कार्य-शील जीवन बिताने वाले का घर कौन सँभाले? दुखी हो कर उन्होंने तीसरा विवाह किया। उनकी पत्नी गौरी और उनमें बीस पचीस वर्ष का अन्तर था। दोनों सुखी जीवन व्यतीत कर रहे थे। गौरी को भी कभी किसी प्रकार की तकलीफ नहीं हुई, परन्तु तो भी दोनों को जीवन शून्य सा जान पड़ता था। घर में कोई बच्चा नहीं था इस कारण जीवन रसहीन था इस कारण जीवन का कटु होना स्वाभाविक है। मुरलीधर के जीवन में भी

कटुता का समावेश होगया था। पैसे का गर्व तो कुछ था इस कारण कभी-कभी उनके व्यवहार में अजीब तीखापन आ जाता था। परन्तु तो भी उनका स्वभाव बुरा नहीं था। अधिक दिनों तक आरामसे रहने वाले तथापि मृदुता पूर्ण कौटुम्बिक जीवन का कम अनुभव पाने वाले जीवन में एक प्रकार की कटुता और चिड़चिड़ापन आ ही जाता है। मुरलीधर की स्थिति इसी प्रकार की थी।

उनकी पत्नी सुशिक्षित और सुशील परन्तु कम बोलने वाली और शांत थी। साधन सम्पन्न कुटुम्बों में भी पत्नी को पति की आज्ञानुसार ही चलना पड़ता है। गौरी कुँवर पति की आज्ञापालन भली भाँति करती थी। उनके व्यवहार में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं थी तथापि मुरलीधर को पत्नी के प्रेम में उष्णता का अनुभव नहीं होता था। पतियों को इस बात की शिकायत हमेशा ही रहती है और पत्नी की ओर से प्रेम की उष्णता का प्रत्युत्तर न मिलने में स्त्री सुलभ स्वभाव और संकोच को कारण रूप जानकर मुरलीधर सन्तोष करते थे।

शान्त गौरीकुँवर को आवेश में देखकर मुरलीधर को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसके चेहरे और आँखों में व्यग्रता झलक रही थी। उसके सामने एक बहुत ही सुन्दर नकाशीदार चाँदी का फ्रेम पड़ा था और पास ही एक दूसरे फ्रेम में मुरलीधर का चित्र जड़ा था। इस समय परस्पर विरोधी स्त्री स्वभाव देखकर सेठ जी बड़े खुश हुये। उन्होंने सोचा "अकेली रहती है तो मेरा चित्र देख कर कितनी प्रसन्न होती है। मेरे आने पर भी प्रसन्न होती है।" प्रत्यक्ष होकर उन्होंने पूछा।

"क्या कर रही हो?" बड़े भाव से पूछ कर वे पास बैठ गये।

"कुछ तो नहीं।" साधारण रूप से गौरी ने उत्तर दिया।

"झूठ बोलती हो? तुम्हारे चेहरे पर इतनी व्यग्रता क्यों दीख रही है?"

अपनी मुस्कराहट को रोक कर गौरी बोली।

"आपकी तस्वीर इस फ्रेम में कैसे लगे यही विचार कर रही थी। मुझे यह फ्रेम बहुत पसन्द है!"

"तो इसमें क्या है आज ही लगवा देता हूँ।"

"ऐसे नहीं। यह तो मेरी इच्छानुसार लगाया जायगा।"

चतुर स्त्री ने इस प्रकार बात छेड़ कर पति का ध्यान दूसरी ओर फेर दिया और वह फ्रेम की बात एक दम भूल गये। पति से अधिक पति के चित्र पर मोहित होना स्त्रियों का स्वभाव होता है। एक बार पुनः फ्रेम देखते हुये पत्नी को देख कर उन्होंने सोचा कि शायद उनकी तस्वीर फ्रेम में जड़ गई होगी। परन्तु फ्रेम खाली ही था।

"अभी मेरा चित्र इसमें लगा नहीं!"

"अभी तो नहीं लगा। आज दराज खोलने पर फ्रेम पुनः दिखाई पड़ा इससे फिर विचार कर रही हूँ।"

"तो दो न आज ही तैयार करा दूँ।"

"नहीं तुम्हारी दूसरी तस्वीर और अच्छी बनेगी तब जड़वाऊँगी।" इस बात को भी कितने ही दिन हो गये। दूसरी तस्वीर बनी भी पर जड़ी नहीं गई। मुरलीधर सभी कामों में दिलचस्पी रखते थे तथा सभी को उत्साहित करते थे। विभाकर ने उनका नाम सुनकर उन्हें अपना परिचय दिया। जहाँ बिना किसी शौक के किसी को उत्साहित करने की बात होती है वहाँ उसमें मेहरबानी का भाव आता है। इसी भाव से प्रेरित होकर मुरलीधर ने विभाकर से कई चित्र लिये और कई की फ़रमाइश की कुछ रुपये दिये तथा कुछ बाकी रखे। परन्तु गौरी को यह चित्रकार बहुत पसन्द आया। उसने इसके बारे में पूछताछ की और अन्त में विभाकर कौन है आदि बातों का पता लगाया। बड़े आदमियों के सहानुभूति प्रदर्शन का यह भी एक कायदा समझ कर विभाकर अपने विषय में सभी बातें बता गया। छिपाया तो उसने केवल अपनी गरीबी और लाचारी।

"तुम्हीं एक लड़के हो?" गौरी ने पूछा।

"जी आज कल तो मैं ही हूँ।"

"तो तुम्हारे और भी भाई थे ?"

विभाकर को बहुत बड़े-बड़े दुख थे। उसके मुख पर दुःख की छाया प्रकट होने लगी, परन्तु उसके दूसरे भाई की बात पूछ कर गौरी के मुख पर भी दुःख की एक रेखा दौड़ गई मानों कोई असाध्य दुःखी उसकी मुखकान्ति को उड़ाये जा रहा है।

"जी हमारे एक बड़े भाई थे परन्तु उनको मरे कई वर्ष हो गये।"

"कैसे मरे ?"

"मैं तो उस समय छोटा था परन्तु सुनता हूँ कि नाव उलट जाने से डूब गये। बरसात के कारण उनकी लाश भी नहीं मिली।"

विभाकर अधिक नहीं बोल सका। उसका कण्ठ अवरुद्ध हो गया। गौरी ने शान्ति पूर्वक उसकी बातें सुनीं। थोड़ी देर बाद पुनः पूछा।

"तुम्हारे पास इनकी तस्वीर है ?"

"किसकी सेठ जी की।"

"हाँ।"

"मैंने एक बार माँगा था। उसे देख कर एक और अच्छी तस्वीर बनाता पर अभी तक मुझे मिली नहीं।"

गौरी ने मुरलीधर का एक चित्र उसे दिया तथा दूसरा बढ़िया चित्र बनाने को कहा। विभाकर ने एक बढ़िया चित्र बनाया जो गौरी और मुरलीधर दोनों को पसन्द आया। केवल उसका दाम देना तथा उसे फ्रेम में लगा देना बाकी था। कितने दिनों बाद जब विभाकर दाम माँगने आया तो उसे दाम तो नहीं पर काम मिला। उसे आशा हुई कि चित्र फ्रेम में लगा दे। दाम न मिलने से चिढ़कर विभाकर ने उसे बन्धक रखने का विचारकिया तथा पठान के पास बन्धक रखकर रुपये ले लिये।

गौरी ने फ्रेम के लिये उतावली मचाई। वह कभी किसी वस्तु की इच्छा नहीं करती थी इससे फ्रेम के लिए उसकी उतावली देखकर सेठ जी बड़े प्रसन्न हुए। दो चार बार उन्होंने आदमी भेजा तो विभाकर ने देने का वादा कर टाल दिया। मुरलीधर सेठ ने मोहन सेठ की चाल में रहता है। जब मुरलीधर के कर्ज का समय आया तब विभाकर बम्बई से बाहर चला गया था। गौरी की घबराहट बढ़ गई। उसके शान्त और निर्विकार जीवन में व्याकुलता का प्रवेश हुआ। वह मुरलीधर से बार-बार फ्रेम माँगने का आग्रह करने लगी। जब कभी वह भीतर आते तो वह पहले फ्रेम की फरमाइश करती, मुरलीधर कुछ चिढ़ गये। फ्रेम अच्छा है तो उसके लिये इतनी घबराने की क्या जरूरत है। उससे अच्छी फ्रेम मँगाई जा सकती है। पर गौरी ने उसी फ्रेम के लिए जिद पकड़ ली थी।

दोपहर का समय था मुरलीधर भोजन कर किसी व्यापारी सभा में सभापति होकर गये थे। गौरी भी लेटी हुई कोई पुस्तक पढ़ रही थी। इतने में ड्योढ़ी की बातचीत ने उसका ध्यान आकर्षित किया।

"बाई साहब घर में हैं?"

"क्या काम है?"

"बहुत जरूरी काम है, खबर करो।"

"इस समय तो बाई साहब आराम कर रही हैं। किसी दूसरे समय आना तो भेंट होगी। खाँ साहब।"

"भले आदमी, काम होने पर ही तो आने का समय होता है।"

"तो इस समय नहीं खबर कर सकता हुकुम नहीं है।"

"अच्छा तो मैं बैठ जाता हूँ समय होने पर खबर करना।"

"ऐसे बैठने से नहीं होगा कितने ही आया जाया करते हैं। मियाँ लोगों की बात, न घर देखें न समय, चलो निकलो।"

"वाह भाई तुमने तो हमारा बड़ा आदर किया।" हँसते-हँसते खाँ

साहब बोले । अच्छा तुम्हारी मरजी है तो मैं बाहर बैठता हूँ पर देखो बाई साहब उठें तो खबर करना कि फ्रेम लेकर पठान आया है ।"

फ्रेम की बात सुन कर गौरी चौंकी । उसने नौकर को अन्दर बुलाया. पठान खुश हुआ । थोड़ी देर बाद नौकर उसे भीतर ले गया । पठान सलाम कर खड़ा हो गया । उसके नेत्रों में शरारत चमक रही थी ।

"क्या है भाई कोई काम है ?" गौरी ने पूछा ।

"आप से मिलना था ।"

"मुझसे !"

"हाँ ।"

गौरी ने नौकर को बाहर जाने का इशारा किया और बोली " हाँ कहो क्या काम है ?"

"मेरे पास एक फ्रेम आया है । मुझे खबर मिली कि वह आप का है ।" पठान ने कपड़े से फ्रेम बाहर निकला ।

"हाँ हाँ यह हमारा ही है । लाओ तुम्हारे पास कहाँ से आया ?" गौरी ने उतावली से पूछा ।

"मेरे पास बिकने को आया है पर बाद में मालूम हुआ कि यह आप का है और यह बात सेठ जी से कहनी नहीं है ।" कहकर पठान ने गौरी की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा ।

"यह सब तुमसे किसने कहा ?" गौरी ने क्रोध से पूछा ।

"यह तो मैं नहीं कह सकता पर आप चाहें तो मैं आप के हाथ बेच सकता हूँ ।"

"मेरी ही चीज़ मैं खरीदूँ ?"

"यह तो आप की मरजी है पर अगर इसके भीतर छिपाई हुई तस्वीर मैं सेठ साहब को दे दूँ तो वह मुझे काफी रुपया दे सकते हैं ।" इतना कहकर पठान ने फ्रेम के किसी गुप्त खटके को दबाकर फ्रेम गौरी के सामने किया । उसके खुले भाग में एक चित्र था । फ्रेम की मोटी बारी

ढकने द्वारा एक चित्र छिपाया था। गौरी के फीके चेहरे पर लाली आ गई। नेत्रों में व्याकुलता दौड़ गई जैसे कोई अजीब बात हो गई हो। पठान ध्यान से यह परिवर्तन देख रहा था। उसने सोचा कि गौरी झपट कर फ्रेम छीन लेगी पर वह शान्त और स्थिर होकर बैठ रही।—पठान ने पूछा।

"यह चित्र आप लेंगी या सेठ जी लेंगे।"

गौरी ने देखा कि यह मुझे धमका कर कुछ रुपया लेना चाहता है। "यदि वह चित्र मुरलीधर को दे दे तो।" उसे क्षोभ हुआ। भले आदमियों के जीवन में भी छिपाने की कोई बात होती ही है। गौरी को बचपन से जानने वाला और उसके निकट रहने वाला भी यह नहीं जान सकता था कि कभी गौरी को भी इसका अनुभव होगा।

यौवन के दो किनारे हैं। चढ़ते हुए यौवन का किनारा तथा शान्त यौवन का किनारा; इन दोनों फूलों के बीच यौवन की महानदी बहती है। संसार के युवक और युवतियाँ उसमें लहर उत्पन्न करते हैं, डुबकी लेते हैं और शान्त किनारे की ओर बहते हैं? जीवन की यही महान जल-क्रीड़ा है। इसमें कितने साथी मिलते और छूटते हैं। किसी के साथ केवल पानी का छुपा-छुप होता है, किसी की ओर केवल दो एक अँजुली जल फेंका जाता है किसी के साथ तैरने की शर्त होती है तो किसी के साथ डुबकियाँ लगाने की। कोई केवल आनन्द के लिये साथी ढूँढ़ता है, किसी को थकने के भय से साथी की आवश्यकता होती है तो किसी के सर जबरदस्ती साथी पड़ जाते हैं। यौवन की महानदी एक दिन शान्त रहती है, दूसरे दिन उसमें पूर्णता आती है और तीसरे दिन वायु वेग से लहरें उठकर पहाड़ों की श्रेणियों के सदृश ऊँची हो जाती है। ऐसे अनिश्चित प्रवाह वेग में क्या नहीं हो सकता? और जो हो सकता है उसका वर्णन नहीं हो सकता। प्रत्येक मनुष्य को इच्छा रहते न रहते भी इस प्रवाह में पड़ना पड़ता है। परन्तु पड़ने पर भी क्या सभी का प्रवाह एक मार्गी हो जाता है? शान्त और स्थिर एक मार्गी स्त्री पुरुष वास्तविक हो जाते हैं?

खैर चाहे जो हो इस चित्र की विशेष चर्चा गौरी को पसन्द नहीं आई। उसने पठान से कहा—

"यह चित्र मुझे दो मैं लूँगी!"

"क्या देगी?" बदमाश पठान बोला।

"तुम्हें क्या चाहिये?" गौरी ने उसी भाव से पूछा।

"दो सौ में खरीदा है मुझे कुछ फायदा होगा तो दे दूँगा।"

"दो सौ रुपये का तो फ्रेम नहीं है।"

"परन्तु चित्र का तो मूल्य अधिक है।" पठान ने निर्लज्जता से कहा।

"तो दो सौ और ले लेना?" गौरी ने लापरवाही से उत्तर दिया।

"ठीक है मैं आपसे कल सोच कर बताऊँगा।" कह कर पठान ने पुनः फ्रेम छिपा लिया और तेजी से बाहर चला गया।

गौरी चाहे जैसे हो फ्रेम को लेना चाहती थी। पर पठान के इस व्यवहार से वह समझ गई कि फ्रेम हाथ से गया। एक साधारण पठान उसकी अपनी वस्तु के विषय में ऐसी उदण्डता का व्यवहार कर चला गया। पर इसका इलाज क्या है! वह यह सोचकर बड़ी दुःखी हो गई कि इस विषय में वह स्वयं असहाय ही नहीं है वरन किसी से सहायता भी नहीं माँग सकती इसी विचार में वह पड़ी थी कि बाहर की आवाजों ने उसे चौंका दिया।

"क्यों कोई आया था?" घर में प्रवेश करते ही मुरलीधर पूछते थे। बड़े आदमियों से मिलने आने वाले बहुत से लोग होते हैं। वह चाहे उससे मिलें या न मिलें पर आने वालों की संख्या में कमी नहीं होनी चाहिये। जिस दिन कमी हो जाती थी उस दिन मुरलीधर को कुछ क्षोभ होता था और इस कारण वह अपने इस प्रश्न का उत्तर बड़े ध्यान से सुनते थे। परन्तु आज गौरी इस नित्य कर्म के प्रश्न को सुनकर विशेष जाग्रत हुई और नौकर क्या उत्तर देता है इसे ध्यान पूर्वक सुनने लगी।

"और तो नहीं हुजूर पर एक पठाग फ्रेम लेकर बाई साहब को देने आया था।"

रोज मुरलीधर को अपने प्रश्न के उत्तर के लिये विशेष दिलचस्पी नहीं रहती थी यद्यपि वह उसे ध्यान से सुनते थे पर आज वह उत्तर सुनकर रुक गये, बोले।

"अच्छा फ्रेम आ गया ?" कह कर अन्दर गये।

गौरी के मस्तिष्क में अनेकों विचार दौड़ गये। उसका मुख व्याकुल हो गया पर उसने तुरन्त अपने को सँभाला।

"तुम्हारा फ्रेम आ गया ?" मुरलीधर ने पूछा।

"नहीं" गौरी ने शान्ति पूर्वक उत्तर दिया। सत्य कहने में कभी घबराहट नहीं होती तथा फ्रेम वास्तव में घर में नहीं आया था।

"तो फिर वह बेवकूफ क्या कहता था ?"

नौकरों को आधी तनख्वाह गाली खाने के लिये भी मिलती है। क्रोध और गाली में बड़ा भारी सम्बन्ध यह है कि गाली से क्रोध शान्त हो जाता है।

समाजवादी वर्ग सभी को बराबर करना चाहते है परन्तु यदि नौकर वर्ग नहीं रहेगा तो फिर इस महान सम्बन्ध की पूर्ति कैसे होगी इस पर उन्हें विचार करना चाहिये।

गौरी की समझ में कुछ नहीं आया। पर उसने देखा कि मुरलीधर के प्रश्न में कुछ घबराने की बात नहीं है।

"कोई पठान आया था और फ्रेम लाया था ? यह सब क्या है ?" बैठते हुये मुरलीधर ने पुनः अपना प्रश्न छेड़ा।

"एक पठान एक चांदी का फ्रेम बेचने आया था। वह फिर आवेगा।" गौरी ने उत्तर दिया।

"अभी तुम्हारे फ्रेम का पता तो नहीं लगा ?"

"नहीं ?"

"अच्छा अब मैं उचित कार्यवाही करूँगा। इतने दिन हो गये अभो तक फ्रेम लौटाने की फुर्सत न मिली।"

"थोड़ी देर में चाय आई और दोनों पीकर अपने काम में लगे।"

मुरलीधर ने फ्रेम के लिये उचित कार्यवाही की। कनक और मोहन सेठ उनके कर्जदार थे ही और विभाकर उन्हीं के चाल में रहता था। उन्होंने कनक और मोहन सेठ से ही कहा। परन्तु उनकी उस चेष्टा के समय तक विभाकर लौटा नहीं था।

—२१—

शिरीष के घर आज चहल-पहल थी। कान्तागौरी नाम कोई स्त्री शहर में आई थी। उन्होंने अपने व्याख्यान से नगर की स्त्रियों को मुग्ध कर लिया था। सोहिणी भी एक दिन उसका व्याख्यान सुनने गई थी और उसी दिन लौटने में देर होने के कारण शिरीष से झगड़ा हुआ था। सोहिणी ने उन्हें अपने घर बुलाया था। उसी दिन सोहिणी ने शहर के और भी प्रतिष्ठित स्त्री पुरुषों तथा अपने सगेसम्बन्धियों को निमंत्रित किया था। बाग में व्याख्यान का प्रबन्ध था तथा सजावट की गई थी। ठीक समय पर कान्तागौरी आई। सोहिणी ने उन्हें आदर पूर्वक बैठाया।

कान्तागौरी की दृष्टि नीचे थी तथापि उसमें किसी जादू जैसी चपलता

का भास होता था। बिना इधर-उधर हिले ही वह अपनी लम्बी आँखों से सभी को देख सकती थी। उनके मस्तक पर भस्म का त्रिपुण्ड लगा था। गले में रुद्राक्ष की माला सुशोभित थी कलाइयों में भी रुद्राक्ष के कंकड़ पड़े थे। सौन्दर्य और पवित्रता की मूर्ति कान्ता मानो स्वर्ग की किसी वैराग्य धारण करने वली अप्सरा के समान लगती थी। सोहिणी उन्हें देखकर चकित हो गई। थोड़ी देर के लिये वह स्वयं विचार करने लगी कि वह यदि भस्म और रुद्राक्ष धारण कर ऐसी ही बने तो कैसा हो।

धर्मपाल भी आकर बैठे। सभी ने उठकर उनका सम्मान किया। एक ही दृष्टि से सभी को नमस्कार करते हुये उन्होंने कान्ता को भी देख लिया।

यद्यपि धर्मपाल पुराने विचारों के मनुष्य थे तथापि नवीन विचार के लोगों में बड़ी आसानी से अपने को मिला लेते थे। उन्होंने कान्ता के साथ बात आरम्भ की।

"आज आपने पधार कर बड़ी कृपा की। हमारी सोहिणी तो आपके सिवाय दूसरी बात ही नहीं करती थी।"

"आप के दर्शनों की बहुत इच्छा थी और सोहिणी तो हमारी बहन ही है वह क्यों न हमें चाहेगी?" कान्ता ने उत्तर किया।

धीरे-धीरे बात का रुख कान्ता के कार्यों की ओर होने लगा। और लोग भी उसमें शामिल हो गये।

"कान्ता बहन ने स्त्री जाति के उद्धार का भारी प्रश्न उठाया है।" एक सज्जन बोले।

"बेशक।" धर्मपाल बोले।

"आज कल संसार में स्त्री जाति का ही प्रश्न मुख्य हो गया है। युरोप में भी समानता के लिये झगड़ा चल रहा है।" एक अपटुडेट स्त्री ने कहा।

उनका मुख देखने से जान पड़ता था जैसे समानता से भी अधिक कोई विशेष सुख का अनुभव कर रहे हों।

"वास्तव में हमारे यहाँ स्त्रियों का स्थान बहुत नीचा है। इसमें प्रथम सुधार होना चाहिये।" एक आधुनिक विचार के वकील नेकहा।

"हर तरह से तो स्त्रियों को दबाया जा रहा है। स्त्रियों ने इतने दिनों तक उस दशा को सहन किया पर अब इस प्रकार नहीं चला सकता" पहली अपटुडेट नारी ने कहा। उनका स्थूल शरीर मानो स्त्रियों के उद्धार की मांग का उदाहरण दे रहा था। यह सत्य है कि इतने दिनों तक स्त्रियां कुछ बोली नहीं। चाहे निष्ठुर पुरुष जाति भले ही इसे स्वीकार न करे और स्त्रियों को लगाम की जरूरत समझता ही रहे।

"ठीक है। अच्छा प्रयत्न है।" धर्मपाल बोले।

"हमारी चेष्टा तो नम्र है महाशय।" कान्ता ने देखा कि बात का रुख बदल रहा है। उसने कहा—"मैं समानता की बातें नहीं करती। न मुझे कायदा ही सुधारना है और न स्त्रियों को बकवादी ही बनाना चाहती हूँ। मैं तो केवल गरीब निराधार और भगी हुई स्त्रियों के रोटी और झोपड़ी का सवाल करती हूँ। समानता मिले तो अच्छा ही है पर इस समय तो भूख से मरती, लालच में पड़ी नीच रास्ते पर भटकती हुई बहनों और बेटियों को केवल आंसू पोंछने का प्रयत्न हो यही बहुत है।"

धर्मपाल जरा अस्थिर से हो गये और कान्ता की ओर देख कर बोले—

"यही परम वैष्णव मार्ग है।"

"वैष्णव मार्ग?" नवीन समुदाय में खुले आम घूमने वाले तथापि आर्यधर्म और आर्यधर्म की हर एक बात का अभिमान रखने वाले पुरुष ने पूछा। धर्मपाल जैसे धार्मिक पुरुष चाहे जिसकी सहायता करें परन्तु ऐसी प्रवृत्ति को पवित्र वैष्णव मार्ग में मिला देने की उनकी उक्ति इन सज्जन को अच्छी नहीं लगी। उन्होंने और भी कहा "ठीक है कितनी ही बातों को जमाने के अनुसार करना पड़ता है यह दूसरी बात है। परन्तु उन्हें धर्म के साथ जोड़ना धर्म का सत्यानाश करना है।"

"देखो भाई जब तक कोई बात धर्म के साथ सलग्न नहीं होती या धार्मिक भावना से नहीं चलाई जाती तब तक वह सफल नहीं हो सकती। आज कितने लोगों ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया और नाइटिंगेल और बूस जैसे धर्म परायण लोगों ने इसे सारी दुनिया में फैला दिया। हिन्दू धर्म में भी इस प्रकार का कुछ करना आवश्यक है। जहाँ तक हो अपने धर्म में इसको स्थान देना चाहिये!" धर्मपाल ने उत्तर दिया।

"आप क्या कहते हैं!" गृहस्थ ने चकित होकर पूछा। उनकी दृष्टि में ऐसे विचार नास्तिक और सुधार वाद के बवन्डर से भरे थे तथा धर्मपाल जैसे वैष्णव स्तम्भ पुरुष भी इस प्रकार बातें करेंगे यह असह्य था।

"फिर अपने धर्म की विशिष्टता क्या रह जायगी?"

"अपने धर्म में विशिष्टता ही क्या है?" धर्मपाल ने पूछा—"अपने धर्म का मूल तत्व है कि सब बराबर हैं। यही भूलना अपना धर्म भूलना है। अपना धर्म जितना पुण्यात्माओं का है उतना ही पापियों का भी है। इसी लिये तो हमारे भगवान पापमोचन पतितपावन हैं।"

उक्त धर्माभिमानी सज्जन की आँखें लाल हो गईं। क्रोध से उनका मस्तक ऊपर उठ गया और हाथ की मुट्ठियाँ बंध गईं। यदि धर्मपाल के स्थान पर और कोई होता तो वे उसे पुरस्कार में मुट्ठी का प्रहार देते परन्तु धर्मपाल पर इसका प्रयोग जरा कठिन था इससे मुट्ठी को जोर से पृथ्वी पर पटक कर वे बोले—

"यहीं तो आप भूल करते हैं। धर्म को जितना ही पाश्चात्य रंग में रंगियेगा उतना ही वह बिगड़ता जायगा। हमारा धर्म पापियों के सम्पर्क में नहीं आया है इसीसे तो शुद्ध रह सका है।"

सोहिणी को यह धर्मान्धता देख कर बड़ी प्रसन्नता हुई। सनकी पुरुषों को छेड़ने में उसे बड़ा आनन्द आता था। उसने कहा—

'हमारे मन्दिर में एक नया चित्र बना है जिसमें एक पतित स्त्री का चित्र है। ऐसा भावपूर्ण चित्र है कि·······

"मन्दिर में!" धार्मिक पुरुष की धर्मान्धता चौंक पड़ी। प्रभु के जगत में चाहे भले ही पतिता स्त्रियां हों परन्तु प्रभु के मन्दिर में तो वे कभी हो ही नहीं सकती। और लोगों को भी आश्चर्य हुआ। सोहिणी के परिचितों ने समझा कि वह केवल चिढ़ा रही है पर वास्तव में बात ठीक थी।

"हाँ हाँ मन्दिर में। सुग्गे को पढ़ाती हुई गणिका का उद्धार भगवान ने किया था यह आप नहीं जानते? परन्तु यदि यह धर्म लड़ाई झगड़े का कारण है तो जितनी जल्दी यह संसार से उठ जाय उतना ही अच्छा है।" सोहिणी बोली।

"धर्म लड़ाई झगड़े का विषय नहीं है जान देने का है। उसके लिये प्राणों की बाजी लगाई जाती है।" गृहस्थ सज्जन बोले। यद्यपि धर्म के लिये प्राण देने का काम अभी उन्होंने अलग रक्खा था।

दूर से कोई व्यक्ति आता हुआ दिखाई पड़ा। निकट आने पर सोहिणी ने पहचान कर स्वागत किया। "ओहो कनक भाई मजे में तो हो, मैंने तो पहले पहचाना ही नहीं।"

चारो ओर नज़र दौड़ा कर यह देख कर कि कौन-कौन उपस्थित हैं, कनक एक खाली कुर्सी पर धर्मपाल के पास बैठा।

"कौन कनक! बहुत दिनों के बाद दिखाई पड़े। कनक विद्यार्थी अवस्था में अक्सर धर्मपाल के यहाँ आता जाता था। कनक की जरा भी इच्छा नहीं थी कि धर्मपाल से भेंट हो। वह जानता था कि शिरीष को जमानत के झंझट में फँसाने के कारण धर्मपाल उसका स्वागत नहीं करेंगे। इस कारण वह धर्मपाल के सिवाय सभी से मिलने की इच्छा से आया था। पर क्या करता। कुछ घबरा कर उसने उत्तर दिया।

"हाँ बहुत दिन हो गये इससे जरा भेंट करने चला आया। अशोक के लिये और भी तबीयत लगी थी।" किसी माता का अनुग्रह प्राप्त करना हो तो उसके बच्चे को प्यार करना या नहीं तो उसका कुशल समाचार पूछना चाहिये। इस उत्तर से मोहिणी को कनक के प्रति जरा सद्भाव हुआ और धर्मपाल का तो पूछना ही क्या? अशोक का नाम लेते ही उन्हें परम सुख हुआ। यदि कोई राक्षस भी उनके अशोक को प्यार करे तो वे भगवान से उसको क्षमा कराने के लिये प्रार्थना करने को तैयार हो जाते फिर कनक की क्या बात थी।

"अशोक तो इतना बड़ा हो गया है।" उन्होंने कहा—"जाओ जी बुला लाओ वह फुहारे के पास खेल रहा है।" नौकर को आज्ञा दी। धर्मपाल का वश हो तो वह दुनियाँ में सभी को अपना अशोक दिखाने को तैयार थे परन्तु अशोक को दुनिया के किसी आदमी से परिचय प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं थी। तब तक उसके सुख दुख के साथी दादा तैयार थे तब तक तो उसे साथी की आवश्यकता नहीं थी। चुपचाप बैठना उसे सहन नहीं था। आज मोहिणी ने उसे यहाँ बैठने के लिये बड़ी कठिनाई से अच्छा-अच्छा वस्त्र पहनाया। परन्तु अनजान मनुष्यों का तिरस्कार कर वह सबसे अलग ही रहा और जब लोग धर्म और समाज की बड़ी-बड़ी बातों में लगे तो वह हौज़ में नाव तैरा रहा था। जब नौकर उसे बुलाने आया तो वह बड़ा चकित हुआ। नाव तैराने का आनन्द छोड़ कर बेजाने मनुष्यों के बीच में जाने की उसकी जरा भी इच्छा नहीं थी। उसकी समझ में नहीं आता था कि बेकार बैठे-बैठे बकबक करके समय का दुरुपयोग करने वाले लोग उसके नाव तैराने जैसे उपयोगी काम में क्यों नहीं मदद करते? उसने जाने से एकदम इन्कार कर दिया इससे मण्डली को उसकी उपस्थिति का लाभ न मिल सका।

कनक ने कान्ता की ओर कई बार देखा पर कान्ता ने एक बार भी कनक की ओर न देखा। वह चारों ओर अन्य लोगों से इस प्रकार बातों

में लगी रही जैसे कनक की उपस्थिति का उसे ज्ञान ही नहीं था उससे बातें न करने का ही निश्चय कर लिया हो। सोहिणी ने देखा कि कनक बार-बार कान्ता की ओर देख रहा है तो उसने दोनों का परिचय कराना चाहा—

"कान्ता बहन एक नया परिचय कराती हूँ।" उसने कहा। कान्ता ने सोहिणी की ओर देखा परन्तु उसके नेत्रों में जरा भी जिज्ञासा नहीं थी।

"मैं कालेज में पढ़ती थी तो यह कनक भाई मुझसे ऊपर पढ़ते थे। आज कल बम्बई में व्यापार करते हैं। हमारे कुटुम्ब से बहुत प्रेम रखते हैं।"

"अच्छा।" कह कर केवल सभ्यता के विचार से कान्ता ने केवल एक बार कनक की ओर देखा और पुनः अपनी बातों में लग गई। कनक का चेहरा लाल हो गया। उसके नेत्रों से ज्वाला निकलने लगी। चेहरे पर किसी दृढ़ निश्चय का भाव प्रकट हुआ। पर किसी ने इस पर ध्यान नहीं दिया। सोहिणी को बड़ा आश्चर्य हुआ कि सभी से ममता पूर्वक मिलने वाली कान्ता कनक से क्यों नहीं मिली?

सभा में जलपान का भी अच्छा प्रबन्ध था। धर्मपाल ने कान्ता के कार्य में सहायता देने का वचन दिया। वह किसी भी उत्तम कार्य में आर्थिक सहायता देना अस्वीकार नहीं करते थे। कान्ता का वास्तविक कार्य क्या था यह किसी ने नहीं समझा था। स्त्रियों की रक्षा, लालच से उनका बचाव, उनके लिये जीविका का प्रश्न यही बातें वह कहती थी। धर्मपाल की सहायता की बात सुनकर वह धार्मिक गृहस्थ बड़े दुखित हुये परन्तु जलपान की दिव्य मिठाइयों ने उनका क्षोभ दूर कर दिया। जलपान कराने की रीति बहुत से स्थानों पर है और शायद धार्मिक मनोमालिन्य को दूर करने के लिये ही इसका प्रादुर्भाव भी हुआ है।

इस मण्डली में शिरीष की अनुपस्थिति सभी को खटक रही थी। ऐसी एक प्रतिष्ठित स्त्री अपने घर आवे और उस समय मालिक का न

रहना वास्तव में ताज्जुब का विषय था। सोहिणी को भी यह बुरा मालूम हुआ। उसकी बड़ी इच्छा थी कि वह कान्ता की विद्वता और सुजनता का शिरीष से परिचय कराये। एक सज्जन ने पूछा भी कि शिरीष कहाँ है ? तो उत्तर दिया—

"मैंने तो डाक्टर से भी कहा था। दो एक बार आदमी भी भेजा था पर न जाने कहाँ दोनों आदमी चले गये हैं। डाक्टर का नौकर तो कहता है कि कोई बहुत बीमार है वहाँ गये हैं समय पर आने को कह गये हैं पर अभी तक नहीं आये।"

"होगा। काम पहले देखना चाहिये। फिर हमारे स्वागत में आपने कौन सी कमी की है ?" कान्ता ने कहा।

"कनक सबसे अलग होकर एक आराम कुर्सी पर पड़ गया। थोड़ी देर में सब लोग विदा होने लगे। कान्ता के साथ परिचय प्राप्त कर सभी को आनन्द हुआ। केवल वह धर्मप्राण पुरुष चाय पीते-पीते मुँह बिचका कर रह गये।

धर्मपाल और सोहिणी कान्ता को कुछ दूर तक पहुँचाने के लिये उठे। कान्ता ने धर्मपाल को रोककर कष्ट न करने के लिये कहा। इतने में मोहिणी किसी दूसरे को विदा करने लगी तो धर्मपाल ने कान्ता से पूछा।

"कान्ता तुम किसकी पुत्री हो ?"

कान्ता चौंक पड़ी। उसका चेहरा उतर गया। पर तो भी उसने समयानुसार हँसकर कहा।

"मुझे अपनी ही पुत्री समझिये।"

"वह तो है ही पर मैं केवल तुम्हारे पिता का नाम जानना चाहता हूँ।" कान्ता ने एक ठण्डी सांस ली। धर्मपाल चकित हुये।

"मुझे नहीं मालूम, मैं भी अपने पिता का नाम जानना चाहती हूँ।" कान्ता ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा।

इतने में सोहिणी तथा कई आदमी आ गये। कान्ता विदा लेकर गाड़ी में बैठ गई। गाड़ी चली गई तो सोहिणी पीछे लौटी। सामने कनक खड़ा था। उसके चेहरे पर तिरस्कार पूर्ण मुस्कराहट थी।

"क्यों सबको विदा कर दिया?" उसने पूछा।

"हाँ चलो अब हमलोग बातें करें।"

"आपने मुख्य मेहमान को पहचाना?"

"हाँ हाँ क्यों नहीं कान्ता गौरी की बात कहते हो?"

"हाँ हाँ उन्हीं की? कान्ता कौन है जानती हो?"

"नहीं? ऐसे क्यों पूछते हो?"

"लक्ष्मी का नाम सुना है?"

सोहिणी चौंकी। कनक को इस नाम लेने का क्या कारण है यह पूछने की इच्छा हुई। उसी समय कनक ने एक अजीब बात की।

"वही लक्ष्मी यह कान्ता है।

"क्या कहा?" आश्चर्य में घबराकर सोहिणी ने पूछा।

"मैं ठीक कहता हूँ।" "सत्तर चूहे खाकर बिल्ली भगत बनी है।"

द्वार से सुकुमार और शिरीष आते हुए दिखाई पड़े। कनक ने धीरे से सोहिणी से कहा।

"शिरीष और सुकुमार क्यों नहीं आये ये समझा?

———

—२२—

दोनों को आते देख कर सोहिणी भीतर चली गई। उसका चित्त अशान्त था। लक्ष्मी और कान्ता दोनों एक ही हैं? एक सामान्य वेश्या और दूसरी विदुषी नारी? उस दिन जो कीर्तन किया था वह कितना सुन्दर था जो एक बार नास्तिक भी भावमय हो जाय।

यद्यपि उसका स्वर वेश्या के समान था पर ऐसा तो और भी बहुत सी स्त्रियों का कण्ठ मधुर होता है। स्वयं सोहिणी के गले की कितनी तारीफ होती थी। यद्यपि उसको गीत में दखल नहीं था तथापि कभी-कभी शिरीष जैसा संगीत का पारंगत भी उसकी प्रशंसा करता था। इस कारण मधुर कण्ठ के लिये तो किसी स्त्री को दोष नहीं दिया जा सकता?

तो फिर कान्ता है कौन? वह बहुत सुन्दर थी। उसके नेत्रों में चपलता थी, उसके हास्य में कला थी। परन्तु ये सभी बातें स्वयं सोहिणी में वर्तमान थीं। सोहिणी को भी अपने हास्य और नेत्रों का अभिमान था। इसी के कारण तो कालेज में कितने युवक दीवाने हो गये थे और अभी भी कौन दीवाना नहीं हो सकता? यह विचार आते ही सोहिणी जरा शर्मा गई।

परन्तु फिर शिरीष और सुकुमार दोनों ही आज के समारोह से गायब क्यों थे? कदाचित् दोनों को अपना सम्बन्ध खुल जाने का भय तो नहीं था? कनक क्या कह रहा था उसे झूठ कहने का कोई कारण नहीं है। वह भी उसी टोली में पढ़ता था। शिरीष ने लक्ष्मी को पत्र लिखा था।

यह मोहिणी ने स्वयं देखा था। इसी विषय में लड़कर तो वह बम्बई चला गया था। उसने लौटने के थोड़े ही दिन बाद कान्ता आई थी। उसका व्याख्यान सुनने वह गई थी उसमें देर होने का बहाना उठाकर शिरीष कितना नाराज हुआ था। उसने समझ लिया कि अवश्य ही इसमें कुछ भेद है कान्ता सधवा है या विधवा यह भी कुछ समझ में नहीं आता। उसके सम्बन्धी कौन हैं यह भी किसी को नहीं मालूम। पर इसमें कान्ता का क्या अपराध। उससे इसके विषय में कुछ पूछा भी तो नहीं। पूछने पर उत्तर न मिलता तो बात भी थी। बिना समझे किसी के विरुद्ध अनुमान कर लेना गलती है।

वह इन्हीं विचारों में पड़ी थी कि किसी की पदध्वनि उसे सुनाई पड़ी। शिरीष की पदध्वनि वह खूब पहचानती थी, सुकुमार से भी परिचित थी। यह नया कौन है। उसने द्वार पर देखा कनक खड़ा था।

"अन्दर आऊँ ?" कनक ने पूछा—

"हाँ हाँ आओ।" सोहिणी ने बुलाया। कनक के लिये सोहिणी को कोई सद्भाव नहीं था। कालेज में यद्यपि वह सोहिणी के मित्र के समान उसके साथ रहता था तो भी कुछ ही दिनों में वह समझ गई कि इस मनुष्य से दूर रहना ही अच्छा है। परन्तु शिरीष और कनक में मित्रता होने के कारण निकटता हो ही जाती थी। बहुत दिनों से मिलने का प्रसंग न आने के कारण केवल सभ्यता के ख्याल से भी स्वागत तो करना ही पड़ता है और आज तो उसने एक बड़ी महत्वपूर्ण बात बताई थी और उसी पर विचार करती हुई सोहिणी बैठी थी। इस कारण इस समय उसका आना बुरा नहीं लगा।

कनक को बुलाकर सोहिणी ने उसकी स्त्री बच्चों और घर की बातें पूछी। सन्ध्या हो गई थी सोहिणी ने बिजली जलाई। कनक अशोक की बातें करने लगा। अशोक की सुन्दरता, उसकी होशियारी, वाचलता इत्यादि की उसने खूब तारीफ की। अपने बच्चे की प्रशंसा सुनने के लिये

प्रत्येक माता तैयार रहती है। मातृत्व की इस कमजोरी का लाभ लेकर बहुत से चतुर मनुष्य अपना काम बना लेते हैं। कनक ने भी यही रास्ता लेकर सोहिणी के मन में अपने विषय में बहुत कुछ सुधार कर लिया। इतने ही में बाहर सुकुमार का स्वर सुनाई पड़ा।

"मैं झूठ नहीं कहता आज कल साधू बनने में ऐसा ही आनन्द है। हम तुम भगवा वस्त्र पहन कर थोड़ी अंग्रेजी बोलने लगे और पश्चिम के सब सिद्धान्त अपने दर्शन में समाविष्ट हैं इस प्रकार का उपदेश देने लगे तो सारी हिन्दू प्रजा चरणों में लोटने लगे।" कहते हुये सुकुमार शिरीष के साथ अन्दर आया। कनक को देख कर सुकुमार बोल उठा।

"लो देखो तुम कनक कनक कर रहे थे तो कनक यहीं है। भाई कनक व्यापार में घाटा होने पर पैसा मिलने का अच्छा रास्ता निकाला है।"

कनक को डाक्टर के प्रति बड़ा तिरस्कार हुआ। उसने समझ लिया कि इस वाक्य में उसके प्रति व्यंग है। शिरीष और सोहिणी को भी यह बात बुरी लगी। कनक ने उत्तर दिया।

"केवल व्यापार की क्या बात करते हो? बिना पैसे के पैसा पैदा करने की कला तो तुम्हें बचपन से मालूम है।"

सुकुमार ने शिरीष के आश्रय में रह कर पढ़ा था इस बात का खुला व्यंग इस बात में था। सुकुमार ने कुछ ध्यान ही नहीं दिया। वह कुछ कहना ही चाहता था कि सोहिणी बीच में बोल उठी।

"अरे भाई अभी तो बिचारा चला आ रहा है कुछ खातिर बात तो पूछो।"

"खातिर बात क्या पूछना है? कुछ दिन हुआ अभी तो पहले भी आये थे। क्यों भाई कनक तुम बिना किसी से मिले ही क्यों चले गये थे?" सुकुमार बोला।

"मैं कब आया था? कनक ने पूछा—

"लाला जी तो हमसे कह रहे थे। क्यों भूल गये?"

"बिल्कुल झूठ। भाँग पीकर मस्त रहता है उसकी बात का कुछ ठिकाना!"

सुकुमार ने स्वयं अपनी आँखों से कनक को देखा था। वह जानता था कि शिरीष के धन पर कनक की दृष्टि बहुत दिनों से लगी है। शिरीष को बम्बई बुलाकर व्यापार में बझाने की उसकी बड़ी इच्छा थी और इस प्रकार वह कालेज में सोहिणी द्वारा किये गये अपमान का बदला लेना चाहता था। मोहन सेठ के साथ यह युक्ति सफल हो गई थी। वह मोहन सेठ का साझीदार ही नहीं वरन् साथ ही सेठानी का कृपापात्र भी बन गया था इससे उसकी महत्वाकांक्षा और भी बढ़ गई थी। शिरीष के पास साधन का अभाव नहीं था और साथ ही शिरीष के साथ सम्बन्ध बढ़ाने में सोहिणी का सौन्दर्य कारण रूप था। उसने शिरीष के साथ पत्र व्यवहार बढ़ाया। किसी विशेष काम के न होने से शिरीष ने भी पत्र जारी रखा। उसने शिरीष को कई बार बम्बई बुलाया था। शिरीष का संगीत प्रेम प्रसिद्ध ही था। प्रसंग वश कनक को लक्ष्मी का पता लग गया। शिरीष उसका संगीत सुनने की इच्छा से अवश्य ही आयेगा यह सोच कर उसने पत्र में लक्ष्मी का भी उल्लेख किया। अन्त में उसकी युक्ति सफल हो गई।

लक्ष्मी शिरीष के कालेज जीवन में ही प्रकट और अस्त हो गई थी—उसका परिचय सुकुमार ने कराया था। "तुम गाना-गाना किया करते हो एक बार इस छोकरी का भी गाना सुनो।" कह कर उसने लक्ष्मी का संगीत शिरीष को सुनाया था। फिर तो कनक की चाल ही में लक्ष्मी का रहना भी होने लगा। कनक को इस बात की खबर नहीं थी। वह केवल मनोरंजन के लिये लक्ष्मी को परेशान करता रहा।

परन्तु शिरीष और सुकुमार के समभाव के कारण उसकी शरारतें बन्द हुईं। शिरीष की संगीत लिप्सा में लक्ष्मी के मधुर स्वर ने योग दिया और उसके अभिनय से तो वह मानो किसी स्वर्गीय आनन्द का

अनुभव करता था। संगीत का प्रभाव सदैव ही उच्च होता है। संगीत सुन कर शिरीष के मन में कभी गन्दे विचार आये नहीं थे बल्कि वह इसमें स्वयं अपने विकास का अनुभव करता था। अभिनय देख कर तो वह जैसे सारी पार्थिव भावनाओं से मुक्त होकर किसी स्वर्गीय वातावरण में हिलोरें लेने लगता था।

परन्तु कुछ ही दिनों बाद लक्ष्मी अन्तर्धान हो गई और किसी को उसका पता नहीं लगा। शिरीष और कनक ने भी बड़ी खोज की पर कोई पता नहीं लगा। लक्ष्मी केवल संगीत कला विशारदा ही नहीं थी बल्कि एक संस्कार पूर्ण भली स्त्री भी थी। उसने गुजराती भाषा सीखने का बहुत प्रयत्न किया था और शीघ्र ही सीख भी लिया था। वह कलापि के ग़ज़ल तथा नान्हालाल के भावपूर्ण गीतों को अद्भुत रूप से गाती थी। अपने आसपास उसने सभ्यता का ऐसा शुद्ध वातावरण बनाया था कि कभी किसी को असभ्यता करने का साहस ही नहीं होता था। उसके पेशे में सम्मान नहीं है यह विचार उसे हर समय काँटे के समान खटकता और जब शिरीष जैसे संस्कारी युवक भी उसका गाना सुनने आते तो उसका मानसिक क्षोभ बहुत बढ़ जाता था तथा संगीत उसके आत्म तिरस्कार का कारण हो जाता था।

शिरीष को भी लक्ष्मी की यह स्थिति बहुत खटकती थी। नारी और संगीत ये दोनों पूज्य भावना के उत्पादक हैं। बिना इसके संसार कठोर, पापी तथा बीभत्स बन जाता। मनुष्य मजा चाहता है परन्तु वह पूज्य भावना का सत्कार नहीं करता? जहाँ पूज्य भावना भोग की वस्तु हो जाती है वहीं मनुष्य का पतन हो जाता है और मनुष्यत्व का लोप होने लगता है। लक्ष्मी का आत्म तिरस्कार इतना तीव्र था कि वह सभी का ध्यान आकर्षित करती तथा शिरीष को लक्ष्मी तथा संसार दोनों पर करुणा आती थी। संगीत पैसे द्वारा खरीदा जा सकता है यह विचार उसे असह्य था परन्तु उस समय जब कनक जैसा कोई आदमी यह कहता कि पैसे के

लिये संगीत क्या शरीर और आत्मा भी बेचनी पड़ती है तो उसे महान कष्ट होता था। लक्ष्मी का अलौकिक सङ्गीत खोकर भी वह उसे संसार में आदर प्राप्त नारी बनाना चाहता था और उसके लिये इधर-उधर की अस्पष्ट योजना भी तैयार करता था ? उसकी योजना सुनकर लक्ष्मी चौंक उठी।

"शिरीष भाई! हमारे तुम्हारे हृदय के से विचार कौन करता है।"

एक रात अपने उस्ताद के साथ बाहर कहीं गाने जाकर लक्ष्मी वापस नहीं लौटी। शिरीष और लक्ष्मी दोनों के हृदय में एक दूसरे के प्रति सम्मान था। दुःखी बहन का दुःख दूर करने के लिये व्याकुल भाई की सी स्थिति शिरीष की थी। उसका यह भाव लक्ष्मी समझती थी और अपने प्रति ऐसा पवित्र भाव रखने वाला भी इस पापी संसार का प्राणी है यह सोचकर उसे अपनी अवस्था और भी दारुण लगती थी। इसी कारण वह अपनी स्थिति को बदलने का प्रयत्न और भी लगन के साथ करती थी।

लक्ष्मी का गुम होना सभी को बुरा लगा। पता लगाने की चेष्टा सभी ने की पर व्यर्थ। एक दिन कनक और शिरीष बातें करते बैठे थे कि सुकुमार ने आकर एक पत्र दिया। पत्र लक्ष्मी का था जिसमें उसने लिखा था कि जब तक वह अपने और अपने पेशे की सम्मान रक्षा कर गृहस्थ वर्ग में स्थान नहीं पायेगी तब तक किसी से नहीं मिलेगी। शिरीष के उच्चभावों के लिये उसने उसका उपकार बोला था।

कनक हँसा और बोला —

"सुकुमार! मुझे नहीं। शिरीष को नहीं पर यह पत्र तुम्हें क्यों लिखा गया। उसका गाना हम सुनते थे, बातें हम करते थे पर पत्र का लाभ तुम्हें प्राप्त हुआ।"

वास्तव में लक्ष्मी के गाने के समय शायद ही कभी सुकुमार उपस्थित रहा हो। यदि कभी रहता भी तो उदासीन सा किसी कोने में तकिया लेकर पड़ा रहता।

सुकुमार ने इस टीका का उत्तर दिया।

"तुम्हें इस बात से शिक्षा लेनी चाहिये कि जो स्त्रियों की ओर से उदासीन रहता है उन्हीं की ओर वे आकर्षित होती हैं।"

परन्तु कनक को इस शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। अपने जाति अनुभव के बल पर वह यह मानने को तैयार नहीं था कि यह शिक्षा सदैव ठीक होती है। लक्ष्मी से इसका परिचय बहुत गुप्त और कम समय तक रहा पर उसका सबसे अधिक प्रभाव शिरीष पर पड़ा था। वह लक्ष्मी को कभी भूल नहीं सका।

परन्तु वह गुप्त और थोड़ा परिचय भी विद्यार्थियों की दृष्टि से छिपा नहीं रहा सका। विद्यार्थी अवस्था में शारीरिक स्फूर्ति के साथ ही साथ कल्पना भी तीव्र होती है। अनेक प्रकार की अफवाहें विद्यार्थियों में फैल गईं और विद्यार्थियों की टीका से बच ही कौन सकता है! परिणाम यह हुआ कि शिरीष और सुकुमार भयङ्कर युवक समझे जाने लगे। सुकुमार को पूरा विश्वास था कि इन सब बेमतलब की बातों को फैलाने वाला कनक है, परन्तु शिरीष की भाँति वह भी इसकी कुछ परवाह नहीं करता था। इतना ही नहीं बल्कि इन दोनों को अपनी टीका सुनकर बड़ा मजा आता था और कोई कुछ पूछता था तो वे वैसा ही उत्तर देते थे।

"क्या भाई लोग कहते हैं कि तुम किसी वेश्या के घर जाते हो!"

शिरीष उत्तर देता—

"अजी एक ही नहीं शहर की सभी वेश्याओं के घर हम लोग जाते हैं।"

"पर इसमें तुम्हारी कितनी निन्दा हो रही है।"

"बस निन्दा ही हो रही है।" शिरीष उत्तर देता और सुकुमार अपने बेसुरे स्वर में अलाप लेता।

"बदनाम तो हो चुका हूँ,

चाहे बोलो या न बोलो।"

इस बदनामी ने शिरीष के विवाह में अड़चन पैदा कर दी थी। उसकी चाल चलन के विषय में सोहिणी के पिता ने बड़ी जाँच पड़ताल की थी और चाहे कैसा भी चतुर और धनी युवक हो चाल चलन के विषय में बेपरवाह रहने वाले किसी युवक से वह अपनी पुत्री का विवाह नहीं करना चाहते थे। परन्तु सोहिणी की जिद और आग्रह के सामने उन्हें झुकना ही पड़ा।

इस प्रकार लक्ष्मी को स्मरण रख कर शिरीष अक्सर उसके विषय में बातें करता था। लक्ष्मी के माता पिता को खोज निकालने की प्रार्थना उसे बराबर बेधा करती थी और जब वह गुम हो गई तो जैसे उसका कोई निकट सम्बन्धी ही गुम हो गया है इस प्रकार की वेदना का अनुभव उसे हुआ। वर्षों बीत गये एक दिन उसने सुकुमार को कोई पत्र ध्यान से पढ़ते हुये देखा। सुकुमार के लिये यह नई बात थी। शिरीष ने पूछा—

"किसका पत्र है?" सुकुमार सँभल गया।

"अजी यह तो हमारी एक परिचित स्त्री है उसी का पत्र है।"

"क्या नाम है?"

"कान्ता!" सुकुमार ने बात समाप्त करने की इच्छा से संक्षेप में उत्तर दिया —

"क्या करती है?"

"स्त्रियाँ क्या करती हैं! रसोई बनाना घर का काम करना और इसके सिवा हिन्दू स्त्री क्या कर सकती है?"

शिरीष भी चुप हो रहा। वह जानता था कि सुकुमार को कभी किसी की परवाह नहीं रहती। स्त्रियों के विषय में वह बड़ा उदासीन था और उन पर कठोर कटाक्ष करता था। उसने अपना विवाह न करने का निश्चय कर लिया था। अपने जैसों के लिये उसे अविवाहित रहना अनुकूल लगता था। वह कहता—

"यदि मैं विवाह करूँगा तो पैसा कमाना होगा। स्त्रियाँ पुरुष से नहीं वरन् पैसे से विवाह करती हैं और मैंने अपने लिये एक पाई भी न कमाने का निश्चय किया है क्योंकि बिना इसके मैं अच्छा डाक्टर ही नहीं हो सकता। इसलिये या तो मैं डाक्टर बनूँ या संसारी बनूँ और मैंने डाक्टर बनने का प्रण किया है तब फिर मेरे लिये विवाह का तो प्रश्न ही नहीं उठता।"

जहाँ तक सम्भव होता वह स्त्रियों से दूर ही रहता था। सोहिणी से तो केवल शरीफ के कारण उसका परिचय था। उत्सव में कान्ता से मिलने सुकुमार नहीं आया इसमें सोहिणी को कोई आश्चर्य नहीं हुआ परन्तु शिरीष की अनुपस्थिति वास्तव में विचित्र थी। कनक के कथनसे सोहिणी को और भी उत्कण्ठित कर दिया था। कनक का आगमन सुनते ही सुकुमार और शिरीष दोनों सोहिणी के पास दौड़ गये। धर्मपाल द्वारा आर्थिक सहायता के वचन पर टीका करता हुआ तथा अपनी अनुपस्थिति का किसी को कुछ सन्देस न हो इस कारण कान्ता के साधु वेश पर कटाक्ष करता हुआ सुकुमार सोहिणी के पास आया। कनक को देख कर उसकी टीका करने की इच्छा और भी तीव्र हो गई तथा शिरीष और सोहिणी की परवा किये बिना ही उसने कनक पर प्रहार करना आरम्भ कर दिया।

परन्तु कनक भी इस प्रकार हारने वाला कच्चा खिलाड़ी नहीं था। उसने बड़ी सफाई से शिरीष को अपने जाल में फँसाया था। उस दिन केवल सुकुमार के डर से जो वह केवल लाला जी से बातें कर लौट गया था इसका अस्वीकार करने से सुकुमार को उस पर बड़ा क्रोध आया और जब उसने लाला जी को भाँग पीकर अनर्गल बात कहने का दोष लगाया तो उससे नहीं रहा गया। वह बोला—

"क्यों झूठ बोलते हो ? मैं तुम्हें खा तो जाऊँगा नहीं। शिरीष ने ही मुझसे कहा था कि तुम आये थे और मैंने स्वयं तुम्हें अपनी आँखों से देखा था तथा यह भी जानता हूँ कि क्यों आये थे ?"

शिरीष को यह व्यर्थ का झगड़ा पसन्द नहीं आया। वह हँस कर बोला —

"अरे भाई, कनक को तो मैंने ही बुलाया था तुम क्यों बिगड़ते हो ?"

"मैं जानता हूँ। और आज भी तुम्हीं ने बुलाया है यह भी जानता हूँ पर मेरे सामने यह झूठ क्यों बोलते हैं ?"

"मैंने ही किसी से न कहने के लिये मनाकर दिया था।" शिरीष ने ने कहा। सुकुमार जोर से हँसा।

"सुनती हो भाभी ! कोई बड़ा भारी भूकम्प जैसा उथल-पुथल करने के लिये दो मित्र इकट्ठे हुये हैं। तुम्हें कुछ खबर है या तुमसे छिपा है ?

सोहिणी अभी तक कान्ता और लक्ष्मी का भेद न समझने के कारण जली तो थी ही और उस पर इस प्रकार की बातें सुन कर बोल उठी।

"मुझसे सभी कुछ छिपा रहता है। तुम या ये कभी मुझसे कोई बात खुल कर कहते हैं ! पर मैं भी इतनी मूर्ख नहीं हूँ कि कुछ समझती नहीं।"

यह उत्तर शिरीष को पसन्द नहीं आया। परन्तु वास्तव में सोहिणी को ऐसा मालूम पड़ता था जैसे वह बहुत सी बातें उससे छिपाता हो और अब पहले जैसा व्यवहार नहीं रह गया है। एक के बाद एक प्रमाण मिलता ही जाता था। चित्र के विषय में चिढ़ कर वह बम्बई चला गया और वहाँ से सोहिणी को एक पत्र भी नहीं लिखा। कनक की जमानत करने के विषय में कभी उससे पूरी बात नहीं की। पिता का पैसा न लेने का अजीब सा निश्चय कर लिया और अपनी गरीबी में सोहिणी को भी भागी बनने के लिये उत्साहित नहीं किया। विभाकर को भी काम समाप्त करने के पहले ही विदा कर दिया और यहाँ तक की स्वयं उसके ऊपर भी जासूसी करने पर तैयार हुआ। कान्ता के व्याख्यान में जाने के कारण उस पर रुष्ट हुआ और जब कान्ता को अपने यहाँ बुलाया तो उसके बड़े आग्रह करने पर भी अनुपस्थित रहा। उस पर आज कनक ने कहा कि कान्ता और लक्ष्मी एक ही हैं। इन सब विविध प्रकार की बातों से सोहिणी

को अनुभव हुआ कि उसका पत्नी अधिकार पूरा नहीं हो रहा है। पति पत्नी से कोई भी बात गुप्त रखे तो पत्नी का बड़ा अपमान होता है और इस कारण सोहिणी को अपना गौरव नष्ट होता हुआ दिखाई पड़ा।

जब पति अपनी अजीब से अजीब कल्पना भी पत्नी के सामने कहता है तो पत्नी को परियों की कहानी सुनने का सा मजा आता है। वह सम्भव असम्भव का विचार ही नहीं करती। वह आलोचक नहीं होना चाहती। उसे तो एक सुन्दर उपन्यास का सा आनन्द आता है। पति का दुख सुन कर पत्नी का हृदय करुणा का सागर बन जाता है। वह पति के विश्वास को अपने हृदय में स्थान देती है और उसके मस्तक तथा शरीर पर हाथ फेर कर जैसे किसी यांत्रिक या हिप्नाटिस्ट की भाँति उसका सारा क्लेश हरण कर लेती है। अपने पति के आँसू देखते ही उसे चूम कर अश्रु रहित करती हुई उसका समस्त क्लेश अपने सर ले लेने का महान अनुष्ठान करती है। पत्नी के सामने पति का अपने अपराध को खुले दिल से स्वीकार करने पर जैसे वह एक अत्यन्त लाड़-प्यार से पाले हुये तूफानी बालक की शरारतें सुनती हुई औदार्य और गर्व की मूर्ति माता के समान हंस कर टाल देती है।

परन्तु तब क्यों इतना होने पर भी संसार में पतिवर्ग पत्नी से कोई बात छिपाता है ? पति के सभी दोषों के भूलने के लिये पत्नी सदैव तैयार रहती है। केवल एक दोष ही उसे असह्य होता है और वह है पति की जुदाई तथा पति का कपटाचरण।

और इस समय सोहिणी की धारणा थी कि यही दोनों दोष शिरीष में आ गये हैं। सोहिणी का उत्तर सुनकर शिरीष की भृकुटी तन गई। सुकुमार ने भी चौंक कर सोहिणी की ओर देखा तथा कनक की ओर दृष्टि दौड़ाई। कनक उसे इस प्रकार हँसता हुआ दिखाई पड़ा जैसे कोई विजेता अपने प्रति-पक्षी की पराजय पर हँसता हो। इस सुन्दर जोड़ी के बीच शान्ति रखने का प्रयत्न सुकुमार सदैव करता रहता था इससे इस

समय कनक की इस दृष्टि पर ध्यान न देकर उसने अपनी स्वाभाविक हँसी से बात बदलने के लिये कहा।

"तुम्हें मूर्ख कह कर हम लोग कहाँ जा सकते हैं भाभी? पर यह तो बताओ कि शिरीष और कनक क्या करना चाहते हैं यह तुम जानती हो?"

"मुझे जानने की आवश्यकता नहीं है जिसे जो अच्छा लगे सो करे।"

"पर तुम्हें बताना जरूरी है क्योंकि यह बात जानने योग्य है और कोई लेखक उसे सुन कर शायद उन्नीसवाँ पुराण लिख डाले। सुनो, सारी दुनिया का गेहूँ इकट्ठा करना और फिर सारी दुनिया का घी एक तालाब में भरना तथा जैसे हो सारी दुनिया का चीनी इकट्ठा कर उसका ढेर लगाना है।"

यह सुनकर सोहिणी को कुछ हँसी आ गई। सुकुमार आगे बढ़ा—

"हँसी नहीं अभी तो आरम्भ ही हुआ है। हिन्दुओं की दृष्टि तो सिवा मिठाई के और कहीं जाती नहीं। हाँ तो फिर सारी दुनिया की भाप और बिजली एक जगह भरी जायगी और फिर सारी दुनिया की चक्कियाँ जब्त कर ली जायँगी और गेहूँ पीस कर आटा बनेगा। फिर घी और चीनी मिला कर लड्डू बनेगा। बस यहाँ तक तो शिरीष और कनक की राय मिलती है। इसके आगे दोनों में मतभेद हो गया है।"

शिरीष भी यह बे सिर पैर की बातें सुनकर हँसा और बोला—

"क्या बे सिर पैर की बातें करते हो।"

"बे सिर पैर की बातें! मैं अभी पत्र से यह बातें साबित कर सकता हूँ। और शिरीष का यह कहना है कि सारी दुनिया की गाड़ियाँ इकट्ठी करके सबके घर यह लड्डू पहुँचाया जाय और कनक गाड़ी इकट्ठा करने के पक्ष में है पर कहता है कि जिसे गरज हो वह गाड़ी में भाड़ा देकर आवे और पैसे देकर लड्डू ले जाय। शिरीष बाँटना चाहता है और कनक बेचना अगर इसमें से एक भी बात झूठी हो तो मेरी जबान काट लो।"

शिरीष और कनक दोनों हँसने लगे। सोहिणी बोली—

"किसी ब्राह्मण या मिठाई वाले को यह कल्पना सुनाओ ?"

"अरे अभी तुम इसे कल्पना ही समझती हो ? बोलो न शिरीष मैंने जो कहा वह सब झूठ है ? तुम्हीं कहो कनक ?"

"नहीं जी बिल्कुल सच है।" कनक ने उत्तर दिया।

इस प्रकार हास्य का वातावरण बना कर पति पत्नी को अकेला छोड़ देने के विचार से सुकुमार कनक से बोला—

"चलो कनक तुम्हें अपना दवाखाना दिखावें। तुम्हारी सेठानी के लिये मैंने दवा बनाई है।"

"नहीं अभी मुझे शिरीष से कुछ काम है और भूख लगी है।"

"मैं भी भूखा नहीं रखूंगा। थोड़ी आयोडिन और टरपेन्टाईन वगैरह चखना। चलो अभी फिर लौटते हैं।"

"फिर तुम दोनों लड़ने लगोगे ?" सोहिणी बोली।

पर सुकुमार ने उसकी बात पर ध्यान न देकर कनक को जबरदस्ती उठाया और हाथ पकड़ कर बाहर ले गया। अब शिरीष और सोहिणी अकेले रह गये। दोनों को ऐसा जान पड़ा जैसे दोनों के बीच में कोई काला पर्दा पड़ गया हो। थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे। आखिर शिरीष आकर सोहिणी के पास खड़ा हो गया। सोहिणी बैठी रही। शिरीष उसके सर से साड़ी हटा कर उसके बाल सुलझाने लगा। सोहिणी ने नीचे दृष्टि कर पूछा—

"मेरे इतना कहने पर भी तुम नहीं आये आज।"

"मेरी बड़ी इच्छा थी। पर क्या करता सुकुमार के कारण बझ गया।"

"और सुकुमार तो कहता है कि तुम्हारे कारण वह रह गया।"

शिरीष मुस्कुराया। सोहिणी पुनः बोली।

"एक बात पूछूँ ?"

"पूछो ?"

"कान्ता कौन है ?"

शिरीष चौंक पड़ा। उसका हाथ रुक गया। सोहिणी ने उससे नजर मिलाकर पुनः पूछा—

"तुम्हारी लक्ष्मी ही कान्ता है या दूसरी कोई ?"

"तुम्हारे कहने का मतलब क्या है ? "तुम्हारी लक्ष्मी" इसका क्या तात्पर्य है ?"

"अच्छा तुम्हारी लक्ष्मी नहीं सही पर यह बताओ कि कान्ता ही लक्ष्मी है या नहीं ?"

"हाँ कान्ता ही लक्ष्मी है।"

"तो तुमने मुझसे कहा क्यों नहीं ?"

"मुझे स्वयं इसकी खबर नहीं थी। आज ही सन्ध्या को तो मुझे भी मालूम पड़ा है।"

"हूँ ! तुम्हें न मालूम हो ऐसा भी कभी हो सकता है ?"

शिरीष ने स्थिरता से सोहिणी को देखा।

"तुम्हारी धारणा है तो ऐसा ही समझो।" कह कर वह झूले पर जा बैठा। एक घंटे तक दोनों चुपचाप बैठे रहे। एक दूसरे की ओर देखा भी नहीं। यदि देखता तो शिरीष को मालूम हो जाता कि रोते-रोते सोहिणी की आँखें लाल हो गई हैं।

इतने में धर्मपाल का नौकर शिरीष को बुलाने आया। जाते समय भी उसने सोहिणी की ओर नहीं देखा। धर्मपाल की उपस्थिति में भी चोरी से सोहिणी को देखने वाले शिरीष को इस प्रकार लापरवाही से जाते देखकर सोहिणी को बड़ा क्रोध आया। यह क्रोध किसके ऊपर आया इसका उसे पता नहीं, कान्ता, कनक, शिरीष या स्वयं अपने ऊपर। एक प्रकार से सभी उसके क्रोध का कारण हो गये। अपने ऊपर क्रोध आते ही वह एकदम उठकर खड़ी हो गई और इससे एकाएक ऐसा धक्का लगा कि पास में टेबुल पर रखा लैम्प खड़खड़ाता हुआ गिर कर

चूर चूर हो गया। शिरीष शब्द सुनकर लौटा। अन्धकार देखकर उसने पूछा—

"क्या हुआ?"

"कुछ भी नहीं लैम्प गिर गया है।"

सोहिणी बाहर जाती हुई दिखाई पड़ी। कोई विशेष बात न जानकर बिना कुछ और पूछे शिरीष भी लौट गया। बराण्डे की रेलिंग पर खड़ी सोहिणी ने कितना आँसू बहाया इसका स्वयं उसे भी ध्यान नहीं हुआ।

—२३—

धर्मपाल ने यात्रा के लिये पूरी तैयारी की। परन्तु उनके जाने में एक महान व्यक्ति ने अड़चन डाली। अशोक ने एकदम अस्वीकार कर दिया। सारी दुनिया भले ही यात्रा पर जाय पर दादा जी को नहीं जाना है और यदि जाँय तो फिर उसे भी साथ ले चलें। किसी राज्य के संधि-विग्रह में भी ऐसी कठिन समस्या न पड़ी होगी। धर्मपाल के सामने अनेक टेढ़े अवसर आये थे पर अशोक की इस शर्त को वे कैसे हल करें यह उनकी समझ में नहीं आ रहा था। उन्होंने उसे फुसलाने के लिये ढेर के ढेर सुन्दर कपड़े तैयार कराये। अच्छे-अच्छे खिलौने से एक पूरा बाजार ही भर दिया एक घोड़ा गाड़ी भी अलग से मंगाई गई और जो भी वह मांगे वह अटल रहा। किसी भी लालच में वह नहीं आया। उस

चार वर्ष के दुनिया के सर्व-श्रेष्ठ व्यक्ति को नाखुश करने की शक्ति धर्मपाल में नहीं थी।

और वास्तव में अशोक को छोड़ने को भी इच्छा नहीं थी। यात्रा से बड़े-बड़े लाभ हैं पर अशोक को अपने नेत्रों के सामने रखने का लाभ उससे बढ़कर था। अनेक लोगों से उन्होंने फरियाद की। छोटे बड़े सभी से इस महत्वपूर्ण कार्य के लिये सलाह ली। परन्तु किसी के भी निराकरण से उनका सन्तोष नहीं हुआ। सभी चकित थे कि एक छोटे बालक के निमित्त धर्मपाल इतने व्याकुल क्यों हैं ? परन्तु वात्सल्य-हृदय की गहराई अथाह है। बाह्य व्याकुलता किस हृदय प्रवाह का परिणाम है यह कोई नहीं कह सकता।

प्रेम ईर्ष्यालु होता है, विषैला होता है, तथा कीनाखोर होता है। प्रेमी जिस प्रकार सर देने में नहीं डरता उसी प्रकार सर काटने से भी नहीं डरता परन्तु वात्सल्य में यह ईर्ष्या, विष, और कीना नहीं रहता। इसकी उदारता में सदैव सर देने का ही प्रसंग रहता है। उसमें सर लेने का अवकाश ही नहीं मिलता। बेवफा पुत्र, दोषी पुत्री और पौत्र माता पिता के वात्सल्य के सिवा और कहाँ आश्रय पा सकते हैं ? कैद से छूटे हुये लुटेरे को चाहे दुनियाँ भूखों मार डाले परन्तु उसकी क्षुधा के निवारणार्थ वृद्धा माता को पत्थर की चक्की चलाने में अपने वृद्धत्व का भान नहीं रहता। खूनी को न्यायाधीश फांसी देता है, परन्तु यदि यही न्याय पिता के पास कराना हो ! प्रेम का अत्यन्त विस्तार यही वात्सल्य है, प्रेम की यही पराकाष्ठा वात्सल्य है। इसमें रूप गुण का भेद भूल जाता है, लिंगीय आकर्षण (Sex attraction) को इसमें स्थान नहीं है। अगत स्वार्थ का अंश इसमें लुप्त हो जाता है। स्त्रियों के प्रेम में वात्सल्य होता है और इसलिये वे पुरुष के अनेक दोष क्षमा कर देती हैं। पुरुष ने अपने प्रेम में वात्सल्य का विकास नहीं किया है इसलिये उसके प्रेम में दोष के लिये क्षमा का स्थान नहीं है।

सोहिणी धर्मपाल की वात्सल्य भरी लाचारी समझती थी। वह जानती थी कि अशोक की ममता में वे अपनी यात्रा न कर सकेंगे। उसने कहा कि अगर वह अशोक को लेकर कुछ दिन के लिये अपने पिता के यहाँ चली जाय तो शायद वे अशोक के बिना यात्रा में जा सकें। सोहिणी के साथ जाने में अशोक को रुकावट नहीं होगी तथा सोहिणी के पिता कुन्दनलाल ने भी कई बार अशोक को बुलाया था। वीणा भी अशोक के लिये बिगड़ी बैठी थी इस कारण थोड़े दिनों के लिये सोहिणी को मायके जाना ही था तो फिर वह अभी ही क्यों न चली जाय जिससे इस अवसर से लाभ लेकर धर्मपाल यात्रा चले जा सकें।

धर्मपाल को यह योजना ठीक तो लगी पर अशोक को छोड़ कर जाने के विचार से उन्हें बड़ा दुःख हुआ। आज तक तो अशोक का बड़ा अपराध था। यह छोड़ कर मुझे जाने नहीं देता। इस प्रकार वे कहते थे। अब उनके जाने का रास्ता निकला पर वह उन्हें रुचा नहीं। मैं जाऊँ और वह यहाँ आवेगा तो उसे कैसा लगेगा? मुझे न देखकर उसे कितना दुख होगा, फिर कैसे रहेगा इत्यादि अनेक बहाने धर्मपाल निकालने लगे।

परन्तु कुन्दनलाल के आग्रह भरे पत्र बराबर आने लगे। शादी के बाद वह सोहिणी को एक बार भी नहीं बुला सके थे। सरकारी नौकर को एक स्थान से दूसरे स्थान पर बिना किसी हीले हवाले के जाना पड़ता है और इसी फेर फार के कारण वह अभी तक सोहिणी को नहीं बुला सके थे। शिरीष को भी उन्होंने निमन्त्रण दिया। धर्मपाल अस्वीकार नहीं कर सकते थे इससे उन्होंने एक रास्ता निकाला।

कुछ दिनों तक नर्मदा किनारे घूम कर सोहिणी और शिरीष बम्बई जायेंगे और वह अपनी यात्रा को चलेंगे।

उसी के अनुसार प्रबन्ध हुआ। शूलपाड़ के पीछे से लेकर नर्मदा संगम तक जलयात्रा का कार्यक्रम बना। डाक्टर सुकुमार ने साथ जाना

एकदम अस्वीकार कर दिया। उनकी धारणा थी की मित्रों के पीछे लगने से भी मित्रता में टूट आ जाती है। इससे उन्होंने सोहिणी और शिरीष के आग्रह पर भी जाना स्वीकार नहीं किया।

"सभी जगह हम लोग सभी इकट्ठे हों इसका भी कोई कारण है क्या ?"

"इसमें कारण क्या तुम्हारे रहने से मजा आयेगा और क्या ?" शिरीष ने कहा।

"अब जरा हमारी अनुपस्थिति में कैसा मजा आता है उसे भी।। देखो भाभी का श्राप मुझे अपने सर पर नहीं लेना है।"

"तुम्हें स्वयं नहीं जाना है तो मेरा नाम लेते हो।" सोहिणी बोली। सुकुमार ने तो अस्वीकार कर दिया। पर शिरीष ने कनक को बुलाया। इधर कुछ दिनों से उसका आना जाना बढ़ गया था। सुकुमार को कनक की उपस्थिति बहुत बुरी लगती थी। सोहिणी और शिरीष के बीच कोई बात पड़ गई थी। संस्कारी दम्पति जहाँ तक होता है अपनी बाह्य रीति को स्पष्ट ही रखते हैं। देखने वालों को शायद ही जान पड़ता हो कि दोनों में कोई विक्षेप है। तो भी दोनों का उच्च संस्कार, मानी स्वभाव, स्वयं सिद्ध हक सँभालने का विचार दोनों को स्पष्ट रीति से दोष आरोप करके उसका निराकरण कर लेने से रोकते थे।

ऐसे वातावरण में किसी मित्र की उपस्थिति आवश्यक थी। सुकुमार ने अस्वीकार किया इससे कनक बुलाया गया। यह शिरीष और सोहिणी दोनों के अनुकूल था। और कनक तो जैसे तैयार ही था क्योंकि उसे तो शिरीष से सम्बन्ध बढ़ाने के अवसर की प्रतीक्षा ही रहती था। अपने व्यापारी जीवन में उसने अनेक कलायें सीखी थीं। अशोक को बार-बार गोद में खिलाकर उसने सोहिणी की सहानुभूति प्राप्त की थी। कभी-कभी अवसर देखकर सोहिणी की रुचि के अनुसार सुकुमार और शिरीष की निन्दा भी किया करता था। शिरीष यह सब समझता था पर मैत्री अनेक

दोषों को सहन कर लेती हैं। जिसकी आप आराधना करते हैं उसका चित्र देखकर आप अक्सर चौंक उठते हैं। दोनों के आचार व्यवहार में आकाश पाताल का अन्तर था तो भी ये विरोधी आचरण वाले मित्र एक साथ रह सकते हैं मैत्री का भाव अत्यन्त सूक्ष्म होता है जो कभी समझ में नहीं आता।

फिर कनक की मित्रता का उपयोग करने की शिरीष की अभिलाषा थी वह अनेक स्वप्न रचता था और उस स्वप्न सृष्टि में कनक एक महत्व पूर्ण पात्र था। इससे कनक की आवश्यकता और भी बढ़ गई थी।

पांच नावें किराये की गईं। एक में धर्मपाल उनकी पूजा का सामान और एक शास्त्री जी चले। एक में सोहिणी, शिरीष और कनक बैठे। रात को कनक तीसरी नाव में चला जाता था। इस तीसरी नाव में लाला जी और रसोईदार रहते थे वहीं रात में कनक भी सोता था बाकी दोनों नावों में नौकर और सर सामान था।

इस प्रकार की यात्राओं में धर्मपाल के साथ लाला जी अवश्य रहते थे यह मौजी ब्राह्मण धर्मपाल के काम आता था। वह बड़ा भारी स्वाद परीक्षक था। अपने किसी एक आश्रित का एक मात्र पुत्र होने के कारण धर्मपाल की उस पर विशेष कृपा थी और उसे भर पेट खिला कर वे बड़े प्रसन्न होते थे। धर्मपाल की अंगत सेवा का अवसर बहुत कम आता था तथापि उनकी देव सेवा की सामग्रियां को एकत्रित करने में लाला जी अपने शुद्ध ब्राह्मण होने का दावा आगे रखते थे। माला बनाना, चन्दन घिसना, धूप देना इत्यादि अनेक काम लाला जी करते थे। आवश्यकता पड़ने पर धर्मपाल के लिये भोजन भी बना देते थे। उनकी धर्म भावना भी बड़ी उदार थी। भांग पीने की इच्छा में शिव भक्ति सुहाती थी। पकवानों की इच्छा पर विष्णु भक्ति करते थे तथा माता जी की प्रसादी की अवज्ञा करने में पाप का भय लगता था। जो देवता उन्हें पसन्द आ जाता था उसके मन्दिर में बड़ी भक्ति से जाकर जो आठ दस श्लोक उन्हें

याद थे उसीके द्वारा उसकी स्तुति करने लगते थे। हनुमान जी के मन्दिर में 'यं ब्रह्मा वरुणेन्द्र' का उच्चारण करते तथा शिव मन्दिर में 'भज गोविन्दे' की रट लगाते थे।

इसके सिवा लाला जी एक अच्छे उस्ताद थे। बचपन ही से अखाड़े के लड़ने वाले थे और एक अच्छे कुश्तीबाज समझे जाते थे। शिरीष और सुकुमार के साथ बहुत कुश्ती लड़ाई थी। धर्मपाल ने उन्हें पढ़ाने की बड़ी चेष्टा की थी पर पढ़ने से तन्दुरुस्ती खराब होती है तथा अन्त में मृत्यु हो जाती है ऐसे बहुत से युवकों के उदाहरण उनके सामने थे। अतएव पढ़ने का हानिकारक कार्य उन्होंने अलग ही रक्खा था। यद्यपि लाला जी गुण्डे नहीं थे तो भी शहर के सभी गुण्डों से उनका परिचय था। रमजान जुआरी, कीका पहलवान, गनी गाड़ीवान इत्यदि शहर के अनेकों से उनकी जान पहचान थी। उन्होंने कभी फौजदारी नहीं की थी तो भी उनकी लम्बी मजबूत, साफ और सदैव साथ रहने वाली लाठी से सभी भयभीत होते थे।

उन्हें संगीत का भी बहुत शौक था। यदि कभी कोई गाने वाला न मिले तथा संगीत का अकाल पड़ जाय तो लाला जी आगे आते थे। पता नहीं संगीत कला उनकी लाठी से डरती थी या प्रेम करती थी पर उनके संगीत सुनने वालों को बड़ा मजा आता था तथा हास्य का स्रोत फूट पड़ता था।

सोहिणी उनसे गाने का अधिक आग्रह करती थीं। उनका गाना सुन कर हँसते-हँसते उसके नेत्रों से पानी निकलने लगता था परन्तु लाला जी अपने संगीत का ऐसा प्रभाव देख कर बिना घबराहट के गाते ही जाते थे।

"अच्छा लाला जी बहुत गाया अब बस करो मेरे पाठ में बाधा पड़ती है।" धर्मपाल कहते।

"क्या करूँ भाई साहब ! भाभी बहुत आग्रह करती हैं।"

"तो बेवकूफ तुम्हें इतना भी नहीं मालूम कि वह तुम्हें बनाती है।" धर्मपाल भी हँस कर उत्तर देते।

"देखो ऐसी बात है तो भाभी चाहे कितना भी कहेंगी मैं अब नहीं गाऊँगा!" सोहिणी हँसती हुई चली जाती। पर फिर कभी यह कहती तो लाला जी तुरन्त गाने लगते।

फिर ऐसे उपयोगी मनुष्य के बिना यात्रा करना तो बिना चिराग अंधेरे में भटकने के समान होता। पाँचों नावें साथ ही चलती थीं। धर्मपाल की नाव या तो सबसे आगे रहती या सबसे पीछे। युवकों के साथ वृद्धों को नहीं रहना चाहिये और और यदि रहना ही पड़े तो फिर आँख कान से परे हो कर। बरसात बीत चुकी थी इससे शरद् का आभास हो रहा था। हवा में मीठी और गुलाबी ठंडक थी। जिसकी इच्छा होती वह नदी के किनारे-किनारे चलता या इच्छा होने पर नाव में बैठ जाता। इच्छानुसार एक नाव से दूसरी में भी आ सकते थे। अशोक को पाँचों नावों में घूमने की छूट थी और इस रियासत का उपयोग भी वह मजे में करता था। रात को भी नाव धीरे-धीरे चलती थी। धीरे-धीरे जाती हुई चारों ओर का सन्तोष जनक सौन्दर्य बिखेरती नाव आनन्द का अलौकिक साधन है। यह आनन्द तेजी में कहाँ है? समसम पानी काटता हुआ स्टीमर तथा एक क्षण में एक लहर काटती हुई नाव दोनों में कौन अधिक आनन्ददायक है?

और नर्मदा का किनारा? गुजरात में प्राकृतिक सौन्दर्य नहीं है कहनेवाले को केवल नर्मदा की परिक्रमा कर लेने ही से अपनी भूल मालूम हो जायगी। नर्मदा दोनों तट पर पवित्र समझी जाती है। जहाँ देखिये सौन्दर्य बिछा है। एक ओर पहाड़ों को भी लज्जित करनेवाले टीले खड़े हैं तो दूसरी ओर दौड़ते-दौड़ते लोट पड़ने की इच्छा जाग्रत करने वाली रेती है बसन्त में फाग खेल कर उद्धत किसी नायिका के समान रंग उछालती, धक्का धुक्की करती, इधर-उधर दौड़ती, रुकती,

पकड़ती पुनः हँसते-हँसते छूट कर भागती हुई मर्यादा रहित भाव से खिलखिलाती पहाड़ों को चिढ़ाती नर्मदा, शूलपाड़ के घोघ और मोखड़ी के घाट में अत्यन्त मनोहर और भयंकर चपलता धारण करती है। यहीं में व्यास के बेट के पास भयानक गम्भीरता धारण कर, मानो, बहना रोक कर समाधि धारण कर लेती है तो दूसरे क्षण कंकड़ पत्थर पर पारदर्शक नृत्य करती हुई अनुसूया के पास जलदेवी का रूप धारण कर बहने लगती है। नीचे दृष्टि करते ही शंकर के कथन को सत्य करनेवाले तथा स्फटिक को भी लज्जित करनेवाले कंकड़ तथा जड़ और अरसिक मनुष्य को भी ललचाने वाले पत्थर पड़े दिखाई देते हैं आप देखकर उन्हें उठाते-उठाते थक जाते हैं। हीरे मानिक में ही सौन्दर्य निहारने वाले जड़ जगत् को उसकी भूल समझाने वाले अनेक कंकड़ इकट्ठा करते हैं और उनकी चिकनी स्वच्छ छटा का आनन्द पूर्वक अवलोकन करते हैं तथा उन्हें अपने गालों पर फेर कर एक अद्भुत सुख का अनुभव करते हैं। ऊपर देखने पर अपने प्राचीन धर्म भावना को जाग्रत करने वाले तथा स्थूल रूप धारण कर त्याग में रहने वाले महान सौन्दर्य को प्राप्त करते हुए हिमालय के समान ऊँचे किले दिखाई पड़ते हैं। इस प्रकार धर्म और सौन्दर्य के प्राचीन वातावरण में बहती हुई नर्मदा अपने इन यात्रियों को जगत् की कटुता भूलने का पाठ पढ़ाती थी। परन्तु एका-एक धर्मपाल को यह सब छोड़ कर चला जाना पड़ा। किसी गोस्वामीजी और बहूजी के बीच जायदाद के विषय में झगड़ा बढ़ा और मुकदमा चला। दोनों पक्ष की दृष्टि गवाही के लिये धर्मपाल पर पड़ी। तार द्वारा उन्हें सूचना मिली। गोस्वामीजी महाराज का कार्य था इससे भावुक वैष्णव धर्मपाल अस्वीकार नहीं कर सके। एक रात अशोक को सोता छोड़-कर दुःखित हृदय से वे विदा हुये। साथ-साथ लालाजी तथा शास्त्रीजी भी गये। वृन्दावन, कृष्ण के राजस्थान में कृष्ण भक्त का प्रचार करने वाले गुरु के झगड़े का निवारण करना था। यात्रा के लिये आनाकानी

see page 316

करने पर प्रभु ने यह मार्ग निकाला यही सोच कर धर्मपाल को सन्तोष करना पड़ा। वह चले गये और सोहिणी शिरीष तथा कनक शेष परिक्रमा पूरी करने के लिये आगे बढ़े।

—२४—

TB Thuss

शिरीष इस जल यात्रा में बहुत शान्त था। उसके जैसे तूफानी मनुष्य की इस शान्ति का क्या कारण था? सामान्यतः वह स्फूर्ति का अवतार ही था। घूमने निकले तो दिन का विचार ही नहीं रहता। टहलने में उसके साथी थक जाते पर वह नहीं थकता था। पानी देखते ही तैरने के लिए कूद पड़ता और इसका विचार नहीं कि कपड़े बदलने का साधन है या नहीं। पर आजकल सोहिणी को यह देख कर बड़ा आश्चर्य लग रहा था कि रात दिन नर्मदा के स्वच्छ जल पर विहार करते रहने पर भी वह एक बार भी तैरने के लिये नहीं उतरा। पानी में शिरीष का गौरवर्ण और भी सुन्दर दिखाता था। अपनी लम्बी भुजाओं से वह बड़ी शीघ्रता से पानी काटता हुआ तैरता था। परन्तु सोहिणी को पानी से बड़ा भय लगता था और वह शिरीष को तैरने से मना करती थी। पर एक दिन उससे नहीं रह गया तो उसने पूछा।

"पानी देखकर तो तुम बड़े प्रसन्न होते थे पर आजकल शान्त क्यों हो?"

"ऐसी कोई बात तो नहीं है। अच्छा चलो कनक हम लोग आज नर्मदा पार करें ?

"नहीं भाई मुझे तो ज्योतिषी ने पानी से घात बताया है। मैं इसीलिये पानी से दूर ही रहता हूँ। जो कुछ तैरना जानता था। वह भी भूल गया हूँ।" कनक ने उत्तर दिया।

"तैरना कभी भूलता है ! चलो नहीं तो मैं तो धक्का मार कर गिरा दूँगा।"

"नहीं भाई मैं डूब जाऊँगा। मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता।"

कनक शारीरिक परिश्रम और खतरे का काम नहीं पसन्द करता था।

"अच्छा तो मैं अकेले ही तैरूँगा।"

सोहिणी के होश उड़ गये। बोला।

"नहीं भाई बीच में कूदने का काम नहीं है। किनारे तैरना हो तो तैरो।"

"किनारे क्या तैरना ! बीच में तैरा जाता है।" कहकर शिरीष कुछ विचार में पड़ गया मानो इन दो वाक्यों में कोई गूढ़ अर्थ है। पर पुनः कुछ सोच कर कपड़े उतारे और धोती बाँध कर नाव की छत पर से पानी में धड़ाम से कूद पड़ा। छपाक सा शब्द हुआ और बड़ी-बड़ी लहरों के नीचे उनका शरीर दब गया। सोहिणी की स्वाँस रुक गई। मुश्किल से शिरीष पाँच सेकेण्ड पानी के भीतर रहा होगा पर वे ही सोहिणी के लिये पाँच युग के समान बीते और शीघ्रता से कई प्रकार के विचार उसके दिमाग में दौड़ गये थोड़ी देर बाद शिरीष पानी के ऊपर आया। सोहिणी ने चिल्लाकर कहा।

"अरे इतनी दूर नहीं नाव के पास ही तैरो।"

परन्तु शिरीष आगे बढ़ता ही गया। पानी का प्रवाह साहस को और भी उत्तेजित करता है। पानी का आकर्षण ऐसा होता है जैसे कोई मायावी अप्सरा मुग्ध मनुष्य को अपने पीछे दौड़ा रही हो और मनुष्य उसे अपने

हृदय से लगाने के लिये हाथ बढ़ाकर खींचता है परन्तु बार-बार हाथ बढ़ाने पर भी देखता है कि हाथ खाली है और अप्सरा उतनी ही दूर पर मुस्कुरा रही है इससे पुनः वह नवीन उत्साह से आगे बढ़ता है। बार-बार मनुष्य हाथ मारता है पर अप्सरा उतनी ही दूर पर हँसती सी दिखाई देती है। मनुष्य का हाथ केवल वायु की लहरों को काटकर ही खाली रह जाता है। इस बार-बार के प्रयत्न से अप्सरा की मोहकता और भी बढ़ जाती है तथा मनुष्य और भी प्रयत्नशील होता है। पर इस प्रयत्न में पीछे का किनारा दूर छूटता जाता है। यद्यपि सामने का किनारा पास आता है पर पानी को विजय करने की इच्छा इतनी तीव्र होती जाती है कि किसी के पीछे ताकने की फुर्सत नहीं रहती। वास्तव में अप्सरा पानी से ही पैदा हुई होगी नहीं तो दोनों में इतनी समानता कैसे हो सकती है?

एकाएक नाव की छत पर बैठे हुये मांझी खड़े हो गये। सीधे जाती हुई नाव का पाल घुमाकर एक ने शिरीष की ओर घुमाया तथा दूसरों ने डाँड़े चला कर उसकी चाल तेज कर दी। इस तेजी से नाव आगे बढ़ी कि छींटे उड़ने लगे और उसमें बैठे हुए लोग भी हिलने लगे। देखते-देखते नाव शिरीष के पास पहुँच गई। सोहिणी और कनक की समझ में नहीं आया कि क्या हो गया। दो एक बार उसने पूछा भी पर किसी गम्भीर कार्य में लगे हुये माझियों ने कुछ उत्तर ही नहीं दिया। सभी की दृष्टि शिरीष की ओर लगी थी। नाव जब शिरीष से पन्द्रह हाथ दूर रही होगी तभी एक माँझी ने अपना डाँड़ा तेजी से शिरीष की ओर फेंका। यदि शिरीष एक हाथ आगे न बढ़ गया होता तो अवश्य उसे लगता। साथ ही माझी चिल्ला उठे।

तीन मांझी पानी में कूद पड़े और शिरीष को चारों ओर से घेर लिया। सोहिणी घबरा गई थी? उसकी कुछ समझ में नहीं आ रहा था। क्यों नाव तेज की गई। डाँड़ा क्यों फेंका गया? माँझी क्यों कूदे? आखिर

क्या बात है ? नाव शिरीष के पास आकर रुकी। सोहिणी ने चाहा कि वह शिरीष का हाथ पकड़ कर खींच ले। मांझी बोला—

"भाई ! अब चढ़ जाइये !"

एक छलांग मार कर शिरीष नाव में आया। वह हँसने लगा। उसका विशाल वक्षस्थल पानी की बूंदों से सुशोभित था और कमर तो और भी पतली हो गई दिखती थी। उसके स्नायु फूल उठे थे तथा भँवरदार गरदन दब सी गई थी। तौलिया देते हुये सोहिणी ने पूछा—

"यह सब क्या था ? तुम्हें डाँड़ा क्यों मारा था ?"

"मैं क्या जानूं इन्हीं से पूछो ?" हँसते हुये शिरीष ने कहा।

"अरे वा ! मुझे बड़ा अफसोस है कि साहब को मारना पड़ा।"

पर तुमने फेंका तो इन्हीं की ओर था।"

"अरे वह तो मगर बहुत नजदीक आ गया था। डाँड़ा लगा कि वह पीछे लौट गया।"

"मगर था ? हाय हाय !" कहकर सोहिणी एकदम बैठ गई। उसने अपनी आँखें बन्द करलीं। अब सब उसकी समझ में आ गया कि क्यों नाव तेज की गई और क्यों शिरीष तेजी से भागता जाता था। मगर पास आ गया था अगर शिरीष को पकड़ लेता तब !

वह आगे नहीं सोच सकी। उसके नेत्रों से आँसू गिरने लगे। उसका हृदय भर गया। सभी के सामने शिरीष कैसे समझावे। कनक उसे समझाने लगा। माँझी भी समझाने लगा। उन्होंने शिरीष की जान बचाई थी। सोहिणी अपने गले से सोने का हार निकाल कर प्रधान मल्लाह को देने लगी।

"नहीं बा कौन सा काम ही किया है कि लूं। बेचने जाऊँ तो जाते ही पकड़ा जाऊँगा कि चोरी कर लाया है।"

सोहिणी फिर सौ रुपये देने लगी। उसे भी उसने अस्वीकार कर दिया। वह बोली—

"तुमने भी तो अपनी जान पर खेल कर इनकी जान बचाई है।"

शिरीष ने भी लेने के लिये आग्रह किया पर वे बोले—

"इसमें जान पर क्या खेलना ? हम तो खुद आधे मगर हैं हमारा क्या करेगा।"

अन्त में सभी के आग्रह करने पर माँझी ने पुरस्कार ले लिया। उसी समय से सोहिणी नर्मदा का किनारा छोड़ने को तैयार हो गई। मगर का दृश्य बराबर उसके नेत्रों के सामने चौंकने लगा। वह बार-बार माँझियों से बातें करने लगी।

"तुमने कैसे जाना कि वहाँ मगर है ?"

"हमारी आँखें पहचान लेती हैं ?"

"पर अगर न देखा होता तब ?"

"ऐसा हो ही नहीं सकता। हमलोग पानी के जीव हैं।"

"पर मान लो ऐसा हुआ होता तब ?"

"अरे इसका तो विचार ही नहीं करना है। माता जी को एक नारियल चढ़ा देना। रेवा माई आप लोगों का भला करेंगी।"

"और जो तुम्हारा डाँड़ इनको लगा होता तब ?"

ऐसा हमलोग फेंकते ही नहीं कि लगे। और फिर साहेब तैरनेवाले कैसे हैं ! हमलोग रोज के तैराक हैं पर इन्हें देखकर दांतों उँगली दबानी पड़ती है। कैसा सुन्दर हाथ फेंकते हैं। मगर को देखा और समझे। वहीं से हमलोग भी चौंके। नाव तब तक पास आ जायगी यह सोचकर ही तो वे मगर से भागने लगे कोई दूसरा इतनी देरतक हिम्मत कर सकता है !"

"तुम लोगों में से किसी ने मगर पकड़ा है ?"

"हाँ हाँ क्यों नहीं। मैं जब छोटा था पन्द्रह बरस का तब मुझे पकड़ा था। यह देखिये अभी तक उसके दाँत का निशान है। मैंने तो एक झाड़ पकड़ लिया और चिल्लाया मेरे काका दौड़ते आये और एक डाँड़ा ऐसा

मारा कि तुरन्त मेरी टाँग छोड़कर भाग गया। मुझे मगर का डर नहीं है। पर यह जानवर बड़ा हरामी होता है अभी भी तैर रहा है।"

"अरे राम रे पकड़ लिये होता तो क्या होता।"

"वाह ऐसा तो हम होने ही नहीं देते। और अगर पकड़ कर हरामी-पना ही करता तो फिर जान ही से मार डालते।"

"पर तुम लोग मगर का क्या कर सकते हो?"

"यह हमारा लड़का है।" एक तन्दुरुस्त युवक की ओर इशारा कर माँझी ने कहा "यह मगर की दुम पकड़ कर जहाँ हो वहाँ से खींचकर ले आने वाला है।"

युवक लज्जित हो गया। शिरीष लेटा हुआ सोहिणी की बातें सुन रहा था वह हँसकर बोला।

"तुम तो एक नया मगर पुराण ही लिखना चाहती हो जान पड़ता है।"

"तुम्हें तो हँसना ही आता है।"

"तो इसमें रोने की क्या बात है। मगर मेरे पीछे लगा था और रोती हो तुम।"

यह बात सोहिणी को बुरी लग गई। इतनी बड़ी बात हो जाय और रोने का भी उसे अधिकार नहीं! परन्तु रोने का अधिकार ही कितना! वह स्त्री थी इससे केवल रोना ही है? पुरुष होती तो नदी में कूदकर मगर के साथ युद्ध करती। वह पति के किस काम आई। जान जोखिम पर भी पति के उपयोग में न आ सकती। पैसे की बात में भी पति के उपयोग नहीं। तो फिर उसका क्या उपयोग? केवल पति के मनोरंजन के लिये ही उसका स्थान है या और कुछ। अत्यन्त दुःख और तेजी के साथ उसे अपनी निरुपयोगिता का भास हुआ।

"मैं किस काम आ सकती हूँ! उनके घर को अपना घर मानती हूँ यह बड़ा भारी स्वार्थ है। मैं उनकी सहायता नहीं कर सकती फिर उनका

घर हमारा कैसे हो सकता है ? मैं ही घर बनाऊँ, उसे सजाऊँ और अच्छे-अच्छे कपड़े पहनाकर शिरीष को उमदा भोजन कराऊँ तो क्या नहीं हो सकता ? और यदि हो तो कितना आनन्द हो ?'' इसी प्रकार के विचारों में वह तल्लीन हो गई। उसकी कल्पना ने नवीन सृष्टि रचना की। पति के पालन करने का भार रखना प्रेम का मर्यादा है। सम्पूर्ण प्रेम सम्पूर्ण आत्मभोग की याचना करता है। मैं वैसा ही आत्मभोग दूँगी। पर अभी तो तुम्हें रुपये की झंझट से छुड़ाने का निश्चय किया था उसके विषय में तो कुछ किया ही नहीं।''

उसे अपने ऊपर क्रोध आ गया, नदी पर क्रोध आया और नाव पर भी क्रोध आया। बड़ी तीव्र कल्पना से एक बार उसने अपना कार्य-क्रम बनाया था "तुम्हारे जैसा प्रतीक मिले तो देखते-देखते लाखों रुपया जमा हो जाय।'' ऐसा विभाकर ने एक बार उससे कहा था इसमें क्या हरज है ? मैं भी वही काम क्यों न करूँ ? इसमें लज्जा की क्या बात है ? विवाह कर पति के सर पर भार स्वरूप होने से तो अच्छा ही है कि कला की पूजा कर पति को सुखी बनाऊँ बस अब यहां से चल देना चाहिये। इस निरुपयोगी जीवन में क्या रस है ? एक बार पैसा इकट्ठा कर तब शिरीष को पुनः लेकर नर्मदा में जल पर्यटन करूँगी।''

पूर्णिमा का चन्द्र उदय हुआ। इस प्रकार धीरे-धीरे चन्द्र उदय हुआ जैसे किसी ने आकाश में सोने का स्तम्भ गाड़ दिया हो। सोहिणी ने कनक से मजाक किया।

"कनक भाई पानी से घात तुम्हें था पर आया इनके सर !''

कनक ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह आज सुस्त हो गया था। शिरीष भी थक कर दोपहर को सो गया था। तब तक सोहिणी को मांझियों से बातें करने की छुट्टी मिल गई थी। आज नदी में व्यायाम करने से शरीर में स्फूर्ति आ गई थी। मगर को देख कर शिरीष जिस तेजी से तैरा था

उससे उसका थक जाना स्वाभाविक ही था। एक दम से वह किनारे की ओर भागने लगा था। नाव वालों को भी अपनी ओर आते देखा ही था। उसे मगर की जरा भी चिन्ता नहीं थी। यदि पकड़ेगा ही तो बल आजमाने का अवसर मिलेगा। फिर भी वह तेजी से तैरने लगा। यदि कालेज के दिन होते तो वह मगर के सामने आ जाता। पर वह तो एक जिम्मेदार व्यक्ति था। सोहिणी, अशोक, धर्मपाल और अपने जमानत की याद आ गई। उसने सोचा कि संसार मनुष्य को कितना निर्बल बना देता है। वह यदि अकेला होता तो मगर के जबड़े में हाथ डाल देता। धड़ पकड़ कर लिपट जाता। डाँड़ा पानी में तैर रहा था और मगर के लौट जाने से पानी में पड़ा हुआ डाँड़ देखा। अभी किनारे आने में दो चार हाथ मारने की जरूरत थी! उसने समझा कि वह मगर से बच गया है। पर यह बचने न बचने जैसा भी अविचार उसको आया क्यों?

वह सोकर उठा तो आकाश में पूर्णिमा का चन्द्र हँस रहा था। आज उसने अपनी प्रकृति के अनुसार एक साहस पूर्ण काम किया था। पानी में तैरने और मगर के साथ रेस करने से उसका दिल प्रसन्न था। उसका विचार हुआ कि कुछ संगीत होना चाहिये। पर स्वयं गाने के लिये तैयार न था। बिना श्रम के कुछ आनन्द लेना चाहता था। उसने कनक से गाने के लिये कहा पर कनक को आज सोहिणी का व्यंग लगा था इससे उसकी गाने की इच्छा नहीं थी और सोहिणी तो शायद ही कभी शिरीष के सामने गाती थी। लाचार शिरीष ने ग्रामोफोन बजाना आरम्भ किया।

कनक ने कहा कि प्यारे साहब का प्लेट बजाना चाहिये। कई प्लेट बजाये गये। चन्द्रमा आकाश में चढ़ता जाता था पर आज सोहिणी की इच्छा कुछ सुनने की नहीं थी। उसे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। नाव अपनी नहीं थी। ग्रामोफोन भी उसका कैसे कहा जा सकता था! उसे सभी में बेगानापन दिखाई पड़ा। अपनी मालिकी नहीं होने से ही परायापन का भास होता है और इस भाव को व्यक्त न करने का अनुभव

हो रहा था। उसे चन्द्रमा भी बेगाना ही जान पड़ा, चाँदनी भी अपनी नहीं जान पड़ी और शिरीष भी दूसरे का मालूम हुआ। वह शिरीष की है पर क्या इससे वह भी शिरीष को अपना कह सकती है। अनेक नई वेदनायें और वृत्तियाँ उसके मन में उदय होने लगीं। उसका वश हो तो वह चन्द्रमा की नई सृष्टि करे और शिरीष की उस नवीन चन्द्र की चाँदनी में स्नान कराये। आज तो वह अपनी नहीं बल्कि शिरीष की चन्द्र छाया में थी।'

''शिरीष को वह अपना सर्वस्व क्यों नहीं दे सकती? उसके लिये नवीन नयी दुनिया की सृष्टि नहीं कर सकती? और अपनी मेहनत से प्राप्त प्रिय से प्रिय वस्तु भी वह उसके ऊपर क्यों नहीं निछावर कर सकती!'' इस प्रकार के विचार उसे परेशान कर रहे थे पत्नी में इन विचारों का आना स्वाभाविक है। इसी से उसे प्यारे साहब का गाना भी पसन्द नहीं आया। कनक ने कहा ''देश लगाओ।''

''अरे यह तुम्हारा देश क्या कोई दूसरा गाता है? जय देश कहो कि छुब दिखला जा·········निकलने लग जाता है।'' सोहिणी बोली।

तो भी शिरीष ने देखकर प्लेट रखा और संगीत आरम्भ हुआ सोहिणी ऊब गई थी। प्यारे साहब की तेज आवाज उसे बुरी मालूम हुई और वह बोला।

''अरे अब बन्द करो। कान फट गया। कैसी कड़ी आवाज है!'' आखिर शिरीष ने एक शर्त पर ग्रामोफोन बन्द रखना स्वीकार किया।

''एक शर्त पर बन्द कर सकता हूँ। तुम गाओ तब!''

पर इस समय वह कुछ भी गा नहीं सकती थी। शिरीष को इस समय आनन्द सूझा था। ग्रामोफोन के सिवा इस समय किसी चीज में आनन्द था नहीं। आखिर आधी रात को ऊब कर सोहिणी ने कहा।

''अच्छी बात है चलो।'' शिरीष ने कहा।

ग्रामोफोन बन्द किया गया, नाव किनारे लगी और तीनों नीचे उतरे। साथ में एक मांझी भी ले लिया। धवल चाँदनी भी टहलने के लिये आमन्त्रित करती थी। जाड़े के आगमन की सूचना देता हुआ शीतल पवन मन्द-मन्द चल रहा था परन्तु सोहिणी के पैर आगे नहीं बढ़ते थे। उसकी दृष्टि बम्बई की ओर लगी थी। पैसा पैदा करने की शक्ति उसमें कितनी है यह अजमाने के लिये वह व्याकुल हो गई थी।

एक टीले पर एक छोटा सा मन्दिर दिखाई पड़ा। पास ही एक छोटा सा मकान भी था। किनारे से चाँदनी में उसका दृश्य बड़ा सुन्दर लग रहा था। किसी से धीरे-धीरे बातें सुनकर शिरीष ने मांझी से पूछा।

"सामने कौन रहता है?"

"एक महाराज हैं। अभी तक भजन कर रहे हैं।"

"तब तो कोई वैष्णव मालूम होते हैं?"

"यह तो नहीं मालूम कि कौन हैं।" मांझी को हिन्दू धर्मके विभागों का क्या पता।

"इनका नाम क्या है?"

"नाम कौन जाने पर सब लोग इन्हें गोरा बाबा कहते हैं।"

शिरीष को जैसे कुछ याद आया।

"कितनी अवस्था है?"

"कुछ अधिक नहीं है चालीस के करीब होगी।"

"तब तो इनसे मिलना होगा। नाव पास ही ठहराओ कल सबेरे दर्शन करूँगा।"

और अब सोहिणी को एक क्षण ठहरना असम्भव था। वह तो बम्बई जायगी ही। रेलवे स्टेशन निकट ही था। उसने वहीं से दूसरे दिन जाने का निश्चय किया था। इससे शिरीष का किसी साधू से मिलने के लिये रुकना उसे पसन्द नहीं आया।

See Page 216

"तुम्हें साधुओं की ओर कब से प्रेम हो गया है ? मुझे तो उनका मुँह ही नहीं अच्छा लगता।"

"यह तो दर्शनीय पुरुष हैं।" शिरीष बोला।

"हाँ हाँ बचन सिद्ध हैं जिसपर प्रसन्न हो जायँ उसका बेड़ापार है।" माँझी ने भी दाद दी।

"बहुत देखे हैं ऐसे साधू। साफ कपड़ा पहनना, भगवा लपेटना, अंगरेजी बोलना और ज्योतिष और वैद्यक का ढोंग रचकर लोगों को ठगना तथा स्वयं मजा उड़ाना ही तो उनका काम होता है। मुझे ऐसे साधू से नहीं मिलना है मैं तो बम्बई जाऊँगी। अब एक क्षण भी मैं यहाँ नहीं रह सकती।"

"पर मैं तो मिलूँगा ही। तुम्हें बम्बई जाना हो तो जाओ मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

"तो मैं कल जाऊँगी अकेली ही ?"

दोनों में से किसी की भी इच्छा एक दूसरे को छोड़ने की नहीं थी; परन्तु जो एक बार कह दिया वैसा ही हो यह सभी की इच्छा होती है। चाहेवह आग्रह अच्छा हो या नहीं पर उसका पालन करना ही पड़ता है।

अन्त में सभी को उदास बनाकर सोहिणी अशोक को लेकर गई। साथ में एक नौकर गया! पर शिरीष को सन्तोष नहीं आया। उसने कनक से कहा!

"कनक तुम भी जाओ तो कैसा हो ? मैं परसों आऊँगा।"

"मेरी भी यही इच्छा है। यहाँ का काम खराब हो रहा है।"

अस्तु कनक भी साथ गया! सुन्दर स्त्रियों के साथ रहने में भी एक प्रकार की मौज होती है तथा बहुत से लोग उसका अवसर ढूँढा करते हैं।

शिरीष स्टेशन तक पहुँचाने गया सोहिणी हृदयहीन होकर विदा हुई। जाते-जाते उसने पूछा—

"तुम कब तक आओगे ?"

"मैं जल्दी ही आऊँगा।" शिरीष ने उत्तर दिया। उसकी तो इच्छा हुई कि वह भी गाड़ी में बैठ जाय, परन्तु आग्रह भी क्या चीज है ? जीवन में उसका कितना ऊँचा स्थान है !

गाड़ी खुल गई। सोहिणी के नेत्रों से आँसू गिरने लगे। शिरीष के पैर पृथ्वी पर चपट गये। आखिर भरे हृदय से वह पीछे लौटा और किनारे आकर गौरांगदास के आश्रम की ओर चला।

—२५—

अत्यन्त दुखी हृदय से शिरीष वापस लौटा। मांझी भी स्टेशन पहुँच गये थे। सोहिणी के स्वभाव से वे बड़े खुश थे। वह सबकी परवाह रखती थी। सबके साथ बातें करती थी, अपने भोजन में से सबको खिलाती थी, तथा पुरस्कार आदि देने में बड़ी उदार थी। गरीब आदमी के साथ मुहब्बत दिखाने से वे भी मुहब्बती हो जाते हैं। सोहिणी का स्वभाव उनके लिये नया था। बड़े आदमियों में ऐसा स्वभाव उन्होंने कभी नहीं देखा था। "बा" कहलाने में जो प्रेम का अनुभव होता है वह सोहिणी को उन्होंने कराया था। इस कारण मांझी भी उदास हो गये थे। शिरीष ने खाली नावों को लौटा दिया और किनारे आया।

टीले पर चढ़ने के लिये कोई बना हुआ रास्ता नहीं था केवल आने जाने से बनी हुई पगडण्डी ही थी। नर्मदा के करारे पर बिना जाने आदमी को चढ़ने में कठिनाई होती है। पर शिरीष किसी प्रकार ऊपर चढ़ गया।

पास ही एक छोटा मंदिर था और उसी से सटा हुआ धर्मशाला जैसा एक छोटा मकान भी था। मन्दिर के सामने चबूतरे पर दो तीन मृगछाले बिछे थे तथा उन पर तुलसी माला, करताल और दो एक पुस्तकें और तकिये पड़े थे। दूर पर एक बड़ा कुआँ था जिस पर एक विशाल पीपल के पेड़ ने अपनी छत्र-छाया लगा रखी थी। मन्द-मन्द पवन में उसके पत्ते हिलकर शब्द कर रहे थे। दूर क्षितिज से सूर्योदय हो रहा था अन्धकार पर प्रकाश की प्रभुता दौड़ रही थी।

गौरांगदास मन्दिर में हैं सुन कर शिरीष मन्दिर में गया। कृष्ण की सुन्दर मूर्त्ति के सामने वे साष्टांग दण्डवत कर रहे थे। शिरीष को यह मुद्रा देखकर जरा बुरा मालूम हुआ। "देवता के सम्मुख ऐसी दीनता!" वह सोचने लगा। सभी धर्म के विषय में मध्य युग की ही बातें चली आ रही हैं कृष्ण की मूर्ति में उसे वही अभिमान दिखाई पड़ा जो झुक-झुक कर सलाम करने वाले दरबारियों के बीच रत्न जटित सिंहासन पर बैठे किसी युवराज को होता है। वह बिना नमस्कार किये ही पीछे लौटा और इधर-उधर टहलने लगा। भीतर से दो ग्रामीण बाहर निकले। उनसे पूछा—

"गौरांगदास बाहर कब निकलेंगे!"

गौरांगदास मानो कोई साधारण आदमी हैं इस प्रकार का सम्बोधन ग्रामीणों को बड़ा बुरा लगा। उन्हें अपने पूजनीय पुरुषों को बिना महाराज या बाबाजी कहे अच्छा नहीं मालूम पड़ता। एकने कहा—

"मालूम नहीं। अभी भी निकल सकते हैं या दो घंटे बाद निकलें कोई ठीक नहीं है।"

धर्म में भी सत्ता। बाबा जी या महाराज (Patriarch and Tyrant) यह अभी तक क्यों जीवित है! मानव जाति कब स्वतंत्र होगी नवीन दृष्टि विन्दु कब अपना स्थान लेगा? इत्यादि बातों पर विचार करता हुआ शिरीष पुनः टहलने लगा। थोड़ी देर बाद गौरांगदास मन्दिर

से बाहर निकले। शिरीष उस समय सामने ही खड़ा था। गौरांगदास के नेत्र अश्रुपूर्ण थे। शिरीष को देखकर उन्होंने आंसू पोछ डाले और अत्यन्त भाव से उसे बुलाया। उसने उन्हें शिष्टता पूर्वक नमस्कार किया।

"तुक अकेले ही हो ? और लोग क्या नाव में हैं ? गौरांगदासने पूछा।"

"मैं अकेले ही आया हूँ।"

"यहाँ सभी को आराम होगा। मैं अभी बुलाता दूँ।"

"दूसरा कोई है ही नहीं।"

"क्यों तुम्हारी स्त्री है। एक मित्र है, सबको कहाँ छोड़ दिया ?"

"सब लोग अभी ही बम्बई गये हैं। आपको कैसे मालूम हुआ ?"

"मैं खबर रखताहूँ। धर्मपाल यहीं तो आने वाले थे। उन्हें चला जाना पड़ा तो मैंने सोचा कि तुम लोग तो आवोगे ही। तुम आ गये अच्छा किया।" "अरे मंगल भाई के लिये ऊपर बंगला खोल दे।" गौरांगदास ने अपने किसी आदमी से कहा दोनों आदमी चबूतरे पर जाकर बैठे।

"क्यों तुम चाय पीओगे या दूध ?" गौरांगदास ने पूछा।

"जी कुछ भी नहीं। मैं चाय पीकर आया हूँ।" व्यवहार निपुण साधु इस युग में बहुत हैं। उनमें और गौरांगदास में कोई विशेष अन्तर न पाकर शिरीष को बड़ी निराशा हुई। बँगला, चाय और दूध की बातें करने वाले साधू से निराशा तो होगी ही।

"ऐसा नहीं हो सकता। भगवान का प्रसाद तो लेना ही होगा।" भगवान के बहाने अपने स्वाद को तृप्त करने वाले अनेकों लोग शिरीष के देखने में आये थे। गौरांगदास भी उन्हीं में से जान पड़े।

"भगवान भी चाय पीते हैं ?" उसने जरा व्यंग से पूछा। गौरांगदास के नेत्र चढ़ गये। वे हँसे और बोले।

"भगवान तो अपने भक्तों के अधीन हैं। जो वे खाते हैं वही वह भी खाते हैं, जब वह जहर पी गये तो फिर चाय क्यों नहीं पी सकते ?"

इस व्यर्थ की दलील का उत्तर देने की शिरीष की इच्छा नहीं हुई। थोड़ी देर तक इधर-उधर की बातें हुईं। एक प्याला चाय आई और शिरीष के सामने रख दी गई। उसने कहा।

"आप चाय नहीं पीते ?"

"नहीं भाई मैं तो नहीं पीता ?"

"कारण ?"

शिरीष की धारणा थी कि चाय के अनेक दोष सुनने को मिलेंगे। हिन्दुस्तान की मूल अवनति का कारण चाय पीने में है। इस प्रकार की बातें करनेवाले लोग बहुत मिले थे। परन्तु गौरांगदास ने यह सब कुछ भी नहीं कहा।

"मैंने अपनी प्रिय वस्तुएँ त्याग दी हैं। उन्हीं के साथ चाय भी छोड़ दिया है ?"

शिरीष चुप रहा। इस साधु में उसने पहले ही से कुछ असामान्यता देखी। धक्का खाकर भी शान्त रहना उसकी दृष्टि में कल्पनातीत महानता थी और इसी कारण वह गौरांगदास की ओर आकर्षित हुआ था। उन्होंने कहा।

"अच्छा शिरीष तुम्हीं आ गये अच्छा किया अब कुछ दिन यहीं रहना कुछ हर्ज तो नहीं है ?"

"हर्ज तो कोई नहीं है पर मुझे एक बड़ा आवश्यक कार्य है इससे मैं केवल आज ही रह सकता हूँ।"

"ऐसा क्या जरूरी काम लेकर आये हो ?"

"और कोई बात नहीं है व्यापार का कुछ काम है।"

"व्यापार तो तुम्हारे पिता करते हैं तुम भी इसमें पड़ने लगे।"

"हाँ मैं स्वतंत्र रूप से व्यापार करना चाहता हूँ।"

"अच्छा।" कहकर गौरांगदास उसे ध्यान से देखने लगे।

"मैं व्यापार का अर्थ ही बदल देना चाहता हूँ इसे बिना किसी के पैसे या मदद के ही कुछ करने की इच्छा रखता हूँ।"

"तुम सामाजवादी हो ?" गौरांगदास ने पूछा।

"आप समाजवाद के विषय में जानते हैं ?" शिरीष ने पूछा। उसकी धारणा थी कि यह बाबाजी केवल हिन्दू धर्म की ही संकरी गली में चक्कर मारने वाले हैं।

"देखो मेरे एक रसियन मित्र ने अपनी सबसे नवीन पुस्तक मुझे भेजी है। इसमें समाजवाद का क्या स्वरूप है और अब क्या हो रहा है इसका बहुत प्रामाणिक शास्त्रीय विवरण है।"

"पुस्तक रशियन भाषा में लिखी थी। "शिरीष पढ़ नहीं सका !

"आप यह भाषा जानते हैं ?"

गौरांगदास हँसने लगे।

"अरे भाई रशियन ही नहीं मैं जर्मन, फ्रेंच, और अंग्रेजी यह भी तीनों भाषा जानता हूँ।"

"पर आप तो वैष्णव हैं न।?"

"इसलिये वैष्णव को यूरोपीय भाषाएँ नहीं जाननी चाहिये ?"

"नहीं वह बात नहीं मेरा तात्पर्य दूसरा है। जो यूरोप की चार भाषाएँ जानता है, जो समाजवाद जैसी वर्तमान लहर का जानकार है, उसे वैष्णव धर्म का पालन करके सन्तोष हो सकता है यह ताज्जुब की बात है। क्या वैष्णव धर्म उसे संकुचित नहीं मालूम होता ? मैं तो यह पूछता हूँ कि संसार का कोई भी धर्म ऐसे पुरुष को कैसे सन्तोष दे सकता है ?"

गौरांगदास हँसते-हँसते बोले।

"हाँ तुम्हें अवश्य खटकता होगा। मुझे पहले ही से सन्देह था कि मेरा माला, मेरा आसन, मेरा मन्दिर और मेरा कृष्ण तुम्हें पसन्द नहीं आयेंगे। मैं खूब समझता हूँ। पहले मैं भी इसी प्रकार की विचार भूमिका

में बहुत काल तक रहा हूँ और यदि अब मेरी धारणा यह नहीं हो गई होती कि धर्म विवाद का विषय नहीं है तो मैं तुम्हें अच्छी तरह प्रमाण दे कर समझाता। परन्तु यह झूठा है, अमुक धर्म खराब है। अमुक धर्म खोटा है इस प्रकार की बहस से बढ़ कर मूर्खता पूर्ण भयानक बात दूसरी नहीं है। इस कारण तुम्हें अधिक विस्तार से नहीं संक्षेप में केवल इतना कह देता हूँ कि मेरे जैसा किसी समय का भयानक नास्तिक भी वैष्णव धर्म में श्रद्धा और शान्ति पा सकता है। मेरे जैसा नास्तिक होना कठिन है। नास्तिकता को मैंने अपने जीवन के प्रत्येक कार्य में स्थान दे दिया था पर अन्त में मुझे भी कृष्ण के चरणों में शान्ति खोजनी पड़ी और वास्तव में वह मिला भी वहीं।"

शिरीष चुपचाप सुनता रहा। गौरांगदास की बातों में बल था, अनुभव था उसे यों ही टाला नहीं जा सकता था। तो भी उसकी धारणा दूर नहीं हुई। वह बोला।

"ठीक है पर आप जैसे नास्तिक की भावना आस्तिकता की ओर कैसे चढ़ पड़ी ?"

"वहीं से तो मेरा वैष्णव होना आरम्भ हुआ। मेरे जैसा पापी दूसरा कोई नहीं हो सकता। मैंने कल्पनातीत पाप किये हैं। मैंने निश्चय किया था कि पाप से मैं कृष्ण को परास्त कर दूँगा। मैं खूब नशा करता था और कृष्ण के भाई बलराम का आदर्श सामने रखता था। अत्यन्त व्यभिचार करता था और कृष्ण के रास की दलीलें देता था। लोगों को लड़ाता था तथा महाभारत का उदारण पेश करता था। यह सब था पर तो भी मैं दो वस्तुओं से वंचित ही था। एक कृष्ण की मुस्कान और दूसरा उनका संगीत।

इतना कह कर गौरांगदास जरा रुके और उनकी बातों का शिरीष पर क्या प्रभाव हो रहा है देख कर पुनः बोले—

"मेरी कथा से घबराते तो नहीं हो, नहीं तो मैं बन्द कर दूँ।"

शिरीष जरा भी घबराया नहीं था, उसे गौरांगदास की बातों में बड़ा आनन्द आ रहा था। बड़े ही आकर्षक रीति से वे अपना धार्मिक इतिहास बता रहे थे। उसने पुनः कहने के लिये प्रार्थना की। गौरांगदास ने पुनः कहना आरम्भ किया।

"इन दोनों बातों की मुझे कभी लगी। नशे में जब कभी मेरी दृष्टि आईने में पड़ जाती थी तो मैं चौंक उठता था और मेरा नशा उतर जाता था। और मेरे चेहरे के रोम-रोम इस प्रकार खड़े हो जाते थे मानों उनमें से मदिरा का फौव्वारा निकल रहा हो। नसे तन जाती थीं तथा चेहरा बड़ा भयानक हो जाता था। मैं विलास में चूर रहता था परन्तु प्रत्येक मौज की समाप्ति कर मैं किसी भारी विषाद में लीन हो जाता था मौज के कितने ही क्षण में मैंने आत्म तिरस्कार का अनुभव किया है। वास्तविक पापी से इन्सान अच्छा होता है ! उस समय मैं क्रोधित हो उठता और अपनी पाप करने की कमजोरी पर स्वयं ही व्यंग करता था तथा उतने उत्साह और बल से निरंकुशता के पथ पर चलने को उद्यत होता। मुझे संसार से बैर चुकाना था। मेरी धारणा थी कि कृष्ण ने भी यही किया था। परन्तु कृष्ण की मुस्कान कहाँ से आये ? उनके जैसा मधुर कण्ठ कैसे प्राप्त हो ? मेरे कण्ठ में तो सम्पूर्ण कठोरता का वास हो गया था। मुझ पर स्मित के बदले मूर्खतापूर्ण वंचना फैल गई थी। उनकी इन बातों में तुम्हें क्या आनन्द आयेगा संक्षेप में यह है.........।"

"नहीं-नहीं आप सारी बातें मुझसे कहिये। आपको किस कारण जगत से बैर तृप्ति करनी थी ? और फिर बैर चुकाते-चुकाते आप इस प्रकार एकान्तवासी कैसे हो गये ?" शिरीष ने रोक कर कहा।

"अच्छा चलो घूमते-घूमते बात करूँगा। यह हमारे सम्पूर्ण त्याग की कथा है। उसमें मैं अपने पूर्व आप का परदा नहीं पड़ने दूँगा। यह हमारी तपस्या का स्थान है। पूर्वाश्रम पर सम्पूर्ण परदा पड़ गया है केवल मेरे विलासी स्वभाव की याद मुझे इन दो तकियों से हो जाती है। मैं पृथ्वी

पर सो सकता हूँ । गर्मी सर्दी तथा बरसात सहन कर सकता हूँ पर तकिये बिना नींद नहीं आती । शरीर की इतनी पराधीनता अभी नहीं गई है ।"

गौरांगदास उठ खड़े हुए । शिरीष भी उठा । चबूतरे से उतरकर दोनों घूमने लगे ।

"मेरे वैर की कथा बहुत बड़ी है किसी से कहने के योग्य नहीं है । और अब तो मेरा उससे कोई सम्बन्ध भी नहीं रह गया है" गौरांगदास बोले पर शिरीष ने पुनः कहा ।

"मैं आपकी बातें सुनूंगा ही । मुझे भी यदि जगत पर वीर निकलना हो तो कदाचित कोई मार्ग निकल आये । कभी-कभी मुझे भी ऐसा अनुभव होता है कि मैं विचित्र रास्ते पर जा रहा हूँ ।"

गौरांगदास चौंके । शिरीष के चेहरे की ओर देखा और कहने लगे ।

"तुम्हें देखते ही मैंने किसी विचित्रता का भास किया था । अपने निजी अनुभव से मैं कहता हूँ कि तुम्हारे सुन्दर मुखड़े पर कोई आकर्षक विचित्रता छिपी है । खैर तुमसे कहने में मुझे कोई हानि नहीं है । तुम यह भी समझ जाओगे कि मैं कृष्ण भक्त क्यों हुआ । सुनो, पर यह तो बताओ कि संसार में वैर तृप्ति की वृत्ति क्यों होती है ?"

"अपने ऊपर भयंकर अन्याय होने से ।" शिरीष ने उत्तर दिया ।

"ठीक है । अब मैं तुमसे एक अन्याय की बात कहता हूँ । एक युवक विलायत में पढ़ रहा था । यदि उसके साथ अन्याय न हुआ होता तो वह शायद आज कलक्टर या कमिश्नर के पद पर होता । एक दिन संध्या को उसे तार मिला कि उसकी छोटी सात वर्ष की प्यारी बहन गुम हो गई है । मौत में निश्चितता होती है परन्तु गुम हो जाने में तो अनिश्चितता ही रहती है । मौत होने पर आशा दूर जाती है परन्तु गुम हो जाने पर आशा और निराशा में भयंकर द्वंद छिड़ जाता है । युवक का पढ़ना लिखना छूट गया तथा वह इतना उदास हुआ कि सभी ताज्जुब करने लगे । कुछ दिन के बाद पत्र आया कि उसकी बहन को कोई दुश्मन चुरा ले गया है और

पता नहीं मार डाला या क्या किया। खोज हो रही है। अतः वह युवक अब कैसे शान्त रह सकता था। उसने अपनी प्रखर प्रतिभापूर्ण पढ़ाई पर लात मारी और लौट आया। उसका कुटुम्ब बहुत ही भक्ती था। सारे देश में खोज हुई। स्थान-स्थान पर पुलिस द्वारा तलाश कराया गया परन्तु बहन जीती हो तो मिले। युवक विचार में पड़ गया कि ऐसा शत्रु कौन है। शत्रुता का कारण क्या है? एक भयानक दुश्मन था और भयानक दुश्मनी का कारण इतना ही था कि उसकी कथित कन्या से युवक के चाचा का विवाह को गया था। बड़ी खोज करने के बाद पता लगा कि उस युवक के पिता ने भी इसी प्रकार उस धनी को चिढ़ाया था। बात यह है कि मां बाप पैसा देखते हैं और कन्या पुरुष देखती है। युवक की माता ने भी अपनी इच्छा से अपने मां बाप के खिलाफ युवक के पिता से विवाह किया था और इस प्रकार धनिक का अपमान किया था। धनिक ने प्रतिज्ञा की थी कि अपना अपमान करने वाली कन्या को यदि मैं नचा न दूँ तो मेरा नाम नहीं। परन्तु क्रोध में की हुई सभी प्रतिज्ञा यदि पूर्ण होने लगे तो इस दुनिया में स्थान ही नहीं मिले। उस धनिक की प्रतिज्ञा बेकार हो गई। कितने ही दिन बाद उस धनिक के विवाह की बात किसी दूसरी कन्या से आरम्भ हुई। उस युवक के पिता ने इस बार भी उसे कन्या से विवाह न करने दिया और चुपके-चुपके अपने भाई की शादी उस कन्या से करा दी। धनिक ने बड़ी धमकियां दी थीं परन्तु कन्या दृढ़ प्रतिज्ञ हो तो पैसा और मान कुछ भी नहीं कर सकते। कन्या ने भी राजी से युवक के चाचा से विवाह कर लिया।

परन्तु इतने पर भी युवक का पिता शान्त नहीं रहा। धनिक के तीसरी बार विवाह की बातचीत उठने पर उसने सोचा कि उसका पुत्र विवाह के योग्य हो गया है और क्यों न अब की बार उसी के द्वारा धनिक का मान भंग करे। उसने चेष्टा की। कन्या ने धनिक के साथ विवाह करना अस्वीकार कर दिया। परन्तु इसी बीच एकाएक युवक की

बहन गुम हो गई। मां का बैर पुत्री पर उतारा गया। युवक ने अपने कुटुम्ब का झक्की स्वभाव लेकर उस कन्या से विवाह करने की चेष्टा की इस पर धनिक ने ताना दिया कि पहले "अपनी बहन तो ढूंढ ले फिर दूसरी कन्या की ओर दृष्टि करना।" युवक ने शहर-शहर गांव-गांव खोजा जंगल पहाड़ और नगरों की तलाश की पर बहन को न पाया। उसके हृदय में बैर ने स्थान किया। क्रोध का विकृत रूप ही बैर है। समाज की मर्यादा तोड़ कर और कल्पना से परे पाप उस पर लाद कर उसने अपनी खोयी हुई बहन के बैर का बदला लेना निश्चय किया। जैसे-जैसे वह पाप करने लगा वैसे-वैसे ही उसे उसमें अनुकूलता भी मिलने लगी। कई निर्दोषी कुटुम्बों में उसने विष वृक्ष बोया। कितने ही प्रतिष्ठित पुरुषों को निन्दित किया। यह पाप की कथा संसार के काम की नहीं है। पाप का छिपा रहना ही अच्छा है। दुनियाँ में शर्म है यही पाप का मुँह बन्द रखता है। इसीसे उसका विष अधिक फैलता नहीं। मैं इस विषय में तुमसे अधिक नहीं कहूँगा! परन्तु इस पापी वातावरण में एक किरण चमकती थी। उस युवक को अपनी सुन्दरता पर गर्व था। उसने अपने चेहरे पर सौंदर्य देखा था। कला पवित्र चीज है कि वह मनुष्य की स्थापना अमर रखती है और सुन्दरता की प्रेम ही कला है। युवक को कृष्ण बनाना था। उसकी धारणा थी कि कृष्ण का जीवन इसी प्रकार किसी बैर के तृप्ति के लिये था। पर उसे अपनी सुन्दरता खोती हुई जान पड़ी और उसे बैर लेने में वर्षों बीत गये। एक बार वह बड़े आनन्द में बैठा था। मदिरा ने उसकी बाह्य और आन्तरिक निर्बलता को बड़े ही आनन्ददायक स्थिति में कर दिया था। वह अपने एक साथी के पास बैठा हुआ संगीत सुन रहा था। उसे उस दिन अद्भुत संगीत सुनने की इच्छा थी। एक सुन्दर तेरह चौदह वर्ष की बालिका वस्त्रों से सजकर उसके सामने आयी। उसने बहुत सुन्दर गीत गाया पर उसकी दृष्टि बराबर उस युवक की ओर लगी थी। युवक के इस भाग्य पर साथी ने भी मजाक किया पर मजाक सुन कर बालिका क्रोधित हो गई और

गाना बन्द कर दिया। बैठे हुये और लोगों ने भी कहा कि केवल गाना इस बालिका से सुनिये और कुछ छेड़-छाड़ मत कीजिये। कुछ देर बाद उस बालिका ने युवक से पूछा।

"आपका नाम क्या है?"

भाषा हिन्दुस्तानी थी और प्रश्न ऐसे मौके पर बँधी हुई विवेकता के साथ पूछा गया था। युवक के साथी ने उसे धक्का देकर उसके बढ़ते हुये भाग्य की दाद दी पर युवक अवाक् हो गया। वह केवल उस बालिक को देखता रहा।

"तुम कौन हो? तुम्हारा क्या नाम है?" लड़खड़ाती जबान से अपनी गुजराती भाषा में युवक ने पूछा। नशा उतर रहा था पर जबान अभी लड़खड़ा रही थी।

'मैं तो आपकी बहन......" पूरी-पूरी गुजराती भाषा सुनाई पड़ी। नशा एकदम उतर गया पर युवक के शरीर में बड़ी निर्बलता आ गई थी। वह उठकर अपनी बहन से भेटना चाहा। सब यह देखकर हँसने लगे। परन्तु युवक को क्रोध आ गया और वह बल लगाकर उठा पर उसके पाँव लड़खड़ा गये और वह गिरकर बेहोश हो गया।

—२६—

वह युवक जब होश में आया तो कृष्ण का नाम लेता हुआ उठा। "हूँ·········कृष्ण·········कन्हैया।"

"भाई अभी पूरा नशा उतरा नहीं है सो रहो।" किसी ने अत्यन्त मीठे स्वर से कहा। अभी युवक के नेत्र स्थिर नहीं हुये थे। नशेबाज को नशा हुआ है यह कहना उसका अपमान करना है। वह बोल उठा।

"कृष्ण भी शराब पीते—"

"कृष्ण शराब क्या अग्नि भी पी जाते हैं।"

युवक को होश आने लगा। अग्निपान उसे अपशब्द जान पड़ा। उसने अपने पास किसी वृद्ध पुरुष को बैठे देखा।

"मैं कृष्ण बन सकता हूँ?"

"हाँ हो सकते हो। कृष्ण के त्याग को जीवन में स्थान दो, तो कृष्ण हो सकते हो।"

"कृष्ण का त्याग?" युवक होश में आ गया। वह एक छोटी झोंपड़ी में सोया था। उसके शरीर पर कम्बल पड़ा था। उसने पिछली रात का स्मरण किया और साथ ही अपने बहन की याद आई। वह उठ कर बैठ गया। उसे एक जनून सा चढ़ गया। अपनी बहन की आँखों को देख कर भी वह उसका उद्धार न कर सका। संसार से वैर लेती हुई उसकी मूर्ति उसी से वैर लेती हुई उसके नेत्रों में जलने लगी।

"मैं शहर में जाना चहता हूँ।"

"शहर यहाँ से बहुत दूर है और तुम्हारी स्थिति इस योग्य नहीं कि तुम्हें जाने दिया जाय!"

"क्यों मेरी स्थिति कैसी है। अरे हाँ महाराज मुझे क्षमा करो।"

"तुम शराब पीते हो तो बुरा नहीं पर अन्त में शराब ही तुम्हे पी जाती है। कल तुम मरते मरते बचे हो। तुम्हारा हाथ पाँव बँधा था। तुम्हारे शरीर पर पत्थर रक्खा था और दूर नदी में तुम्हें किसी ने फेंक दिया था। ईश्वर की इच्छा थी की मेरी नाव जा रही थी। मल्लाह ने देखा और उठा लिया। नहीं तो तुम संसार में नहीं होते।"

"मुझे आपने बचाया!" अत्यन्त गद्गद् होकर युवक ने पूछा।

"तुम्हें कृष्ण ने बचाया है। प्रभु वैर भाव से भजने वाले को भी मुक्ति देते हैं।"

"अपने कृष्ण के त्याग की कोई बात अभी कही थी। युवक को कृष्ण का स्मरण हो आया।"

"हाँ कृष्ण का जीवन त्यागमय है। इसी से तो वे योगेश्वर कहलाते हैं। और इसी कारण तो वे गीता का प्रवचन कर सके थे। भरत के समान नहीं यदि विरोधी के समान भी तुम उनके जीवन समझ रखो तो देखोगे कृष्ण का प्रत्येक कार्य त्याग का आदर्श उपस्थित करता है। जन्मते ही माता पिता से अलग हो गये। पालन कर्त्ता माता पिता को भी अवसर आने पर छोड़ना पड़ा। जिसका कि माँ को छोड़ना कल्पना से भी परे था उन्हें भी उसने छोड़ दिया और अपने यौवन भर नहीं देखा। राज्य विजय कर दूसरे को सौंप दिया तथा अन्त में अपने सारे परिवार का नाश देखा। इससे बढ़कर त्याग और कहाँ मिलेगा।

युवक के हृदय में तत्काल वैराग्य का भाव उत्पन्न हुआ वह समझ गया कि कृष्ण की मुस्कुराहट और उनका संगीत पाने में वह क्यों असमर्थ है। उसने संसार को त्याग दिया पूर्वाश्रम का युवक मर गया और वास्तव

में यह बात ठीक थी। उस मृत युवक से एक कृष्ण भक्त युवक पैदा हुआ। कृष्ण की मुस्कान और संगीत पाने की लालसा दूर हो गई तथा उसे कृष्ण में ही देखकर प्रसन्न होना सीखा। अब तुम्हारी समझ में आ गया होगा कि कोई मनुष्य पढ़ा लिखा विलायत से लौटकर भी क्यों कृष्ण का भक्त होकर उनका मनन करता है?"

शिरीष अत्यन्त ध्यान पूर्वक गौरांगदास की वार्ता सुन रहा था। उसे उसमें किसी परिचित का भास हुआ।

"आप फिर किसी अपने साथी से मिले नहीं?" उसने पूछा।

"नहीं मिला और न मिलना चाहता हूँ। कृष्ण के सिवा मेरा और कोई साथी है भी नहीं। कोई दिखाता भी नहीं।"

दोनों शान्त हो गये। गौरांगदास बातें कर शान्त हो गये पर शिरीष का मन शान्त नहीं था। उसके हृदय में अनेक विचार दौड़ रहे थे। वह सोच रहा था कि संयोग से मनुष्य में कितना परिवर्तन हो सकता है। वह स्वयं अपने को सोचने लगा कि वह क्या करना चाहता है। वह कौन है?

अपने बचपन ही से वह स्वप्न रचा करता था। उसके स्वप्न में तूफान था, आनन्द था, परन्तु सत्य नहीं था। उसे सत्य से तिरस्कार था। इसीसे तो वह गरीब विद्यार्थियों के साथ पढ़ सकता था। वह धनी पिता का पुत्र है इसका उसे कभी विचार भी नहीं हुआ था। बल्कि अपने धन से दूसरे को सुखी करे यही सोचता था और अपने साथी और बेपरवाह स्वभाव से वह दूसरों को सुखी करने की चिन्ता करता था तो भी कभी उसके सामने इस बात को प्रकट नहीं करता था। सब को सुखी करना, आनन्द देना यही उसका ध्येय था। इस ध्येयमें अवस्थाके प्रमाण से कुछ फेरफार भी आ गया। जिसे अभ्यास करना है उसे आनन्द देने से क्या लाभ? उसके ध्येय में स्थिरता और चौकसी आने लगी। उसे नाम की इच्छा थी। इच्छा करने ही से वह अच्छी-से-अच्छी सरकारी नौकरी पा सकता था। अपनी बुद्धि और प्रतिभा के बल पर लोगों का नेता बन

सकता था। परन्तु नौकर की पराधीनता और नेतागिरी का मिथ्या आडम्बर वह खूब समझता था। उसे भलाई करने की प्रबल इच्छा थी और नये संस्कार के कारण भलाई करने की रीति भी उसकी नई थी झोपड़ा हटा कर बाग लगाना। गरीबों का घर अमुक प्रकार से बनवाना। मजदूरों को मजदूरी अमुक प्रकार से मिलना, पूँजीपतियों को प्राप्त होता लाभ छीन कर गरीबों को बाँटना इत्यादि अनेक प्रकार के विचार उसे होते थे पर उनका उपयोग कैसे हो सकता है यह उसे नहीं मालूम पड़ रहा था। वह रास्ता देख रहा था घबरा रहा था। संसार का व्यापार अपने हाथ में करने वाले व्यापारियों के बादशाहत की हकीकत उसने पढ़ी थी। परन्तु बादशाह अपने पैसों का स्वयं ही मालिक बना देता है यह बात उसे खटक रही थी। क्या ऐसा कोई नहीं हो सकता कि अपार धन पैदा करके उसे संसार में बाँट दे। वह ऐसा होना चाहता था।

कनक के साथ रहकर व्यापार क्या है वह वह सीख न ले! उसकी यह इच्छा बहुत दिनों से हुई थी। पर उसे व्यापार पसन्द नहीं था।

व्यापार की कुटिलता पसन्द नहीं थी, व्यापार के रास्ते नहीं पसन्द थे, और सत्ता तथा नेतागिरी पर भी उसे उतना ही तिरस्कार था। संसार की वस्तुओं का उपयोग संसार के लिये है। इन वस्तुओं से उनके मूल्य की कल्पना दूर हो जाय तो कैसा अच्छा हो! व्यापारी मित्रकी मानसिक स्थिति समझ कर उस मार्ग पर आगे बढ़ना तथा जरूरत की वस्तुओं को संसार के लिये सुलभ करना उसका लक्ष्य था। सुकुमार उसे इन बातोंमें सहयोग नहीं देता था न उत्साहित ही करता था और जब वह कनक के साथ मिल कर अपनी भावना को सिद्ध करने का प्रयत्न करने लगा तो सुकुमार उसे भाग्यवान कहकर हँसने लगा।

शिरीष कनक का स्वभाव अच्छी तरह जानता था। उसके ऊपर कहाँ तक विश्वास किया जा सकता है यह भी जानता था तो भी उसके साथ आरम्भ करने में क्या हानि है! उसकी बेईमानी जाहिर होगी तो तुरन्त

उसे छोड़ देंगे। इस प्रकार के विचारों में पड़े-पड़े बम्बई जाकर कनक की जमानत करने का प्रसंग आया। वहाँ से लौटने पर मुनीम ने एक अच्छा पाठ सिखाया। "क्या पिता का पैसा पुत्र का हो सकता है?" शिरीष के हृदय में इस प्रश्न का नकारात्मक उत्तर आया और उसी समय से उसकी मित्रता भी बढ़ गयी। पूर्वजों का सम्बन्ध उसके विकास में बन्धन सा जान पड़ने लगा। आधार पर जीना, उसके आधार पर खाना और प्रतिष्ठा प्राप्त करना उसे निर्बलता की पराकाष्ठा ज्ञात हुई।

परन्तु यह सम्बन्ध छोड़ना भी मुश्किल ही था। जितना ही विचार करने लगा उतना ही वह सम्बन्ध गहरा जान पड़ने लगा। बिना पिता के पैसे के व्यापार करना उसने निश्चय किया था। जमानत का रुपया स्वयं ही स्वतन्त्र रीति से पाना चाहता था। पर उसका ऐसा सम्बन्ध कहाँ था। पिता का पैसा तो छोड़ सकता है पर पिता का प्रेम कैसे छोड़ेगा। किस कारण छोड़ेगा? और पिता के सिवा और भी कितने सम्बन्धी थे। लोहिणी और अशोक का क्या होगा? सुकुमार क्या करेगा? इन्हीं कारणों से वह घर छोड़ सका। पर अब उसे एक प्रकार की सरलता हो गयी थी पिता यात्रा को गये। पत्नी नायके गई और मित्र अपने काम में लगा था इसलिए वह यदि अपने परिजित संसार से कुछ समय के लिये अलग हो जाय तो कैसा हो? इस प्रकार से ऊब कर उसने गौरांगदास से पूछा।

"मैं भी यदि उस युवक की भांति डूब जाऊँ तो?"

"किस लिये।" चकित होकर गौरांगदास ने पूछा।

"मैं परतंत्र हूँ मुझे स्वतंत्र होना है। जब तक शिरीष डूब कर दूसरा अवतार नहीं लेगा तब तक यह कैसे सम्भव होगा?"

"तुम्हें क्या दुःख है?"

"यही हमारा दुःख है कि मैं दुःख समझ ही नहीं सकता। प्रयत्न करने पर भी भूखा रहना क्या चीज है मैं नहीं समझ सकता। ताप सहन करना नहीं जानता, अपमान और व्यंग की मानसिक वेदना नहीं जानता।।

मैं जरा भी दुःखी नहीं हूँ यही हमारा महान क्लेश है और मैं अभी दुखी नहीं हो सकता यही हमारी परतन्त्रता है। विस्मता के खड्डे में एक बार गोता खाकर ही मैं स्वतन्त्र हो सकूँगा।

"समझ गया। नवीन युवक साहसिक कार्य करना चाहता है, गरीबी का प्रयोग करना चाहता है तथा आनन्द भोग का अनुष्ठान चाहता है। यह एक प्रकार का आरम्भ है। अच्छा मुझे एक वचन देते जाओ कि तुम्हारे प्रयोग का जो फल होगा वह मुझसे आकर अवश्य कहोगे।"

शिरीष ने इस बात का वचन दिया। गौरांगदास ने और कुछ विशेष पूछ परख नहीं की। उनका दिन का अधिकांश भाग भक्ति में ही बीतता था कृष्ण के नाम स्मरण से उनके नेत्रों में आंसू आ जाते थे। शिरीष भी समझ गया कि यह कोई वेषधारी साधू नहीं है। मृगचर्म पर सोना साधारण बात है। कम्बल ओढ़ कर ही पड़े रहना भी कठिन ही है। केवल दूध पर जीवित रहना मुक्त योगी ही कर सकते हैं। हाथ से काम करना क्या है यह उनसे पूछना चाहिये जो नौकर के बिना, कभी नहीं रहते तथा जिन्हें कभी प्रसङ्गवश खुद काम करना पड़े। गौरांगदास ने कहा।

"मैं दीक्षित वैष्णव नहीं हूँ। वह वृद्ध पुरुष जो हमारे पिता के भी गुरु थे यह हमें बाद में ज्ञात हुआ। उनके सिवा मैंने अन्य किसी साधू महात्मा की सेवा नहीं की है। तथापि वैष्णव धर्म की तीनों प्रथायें मुझे बहुत पसन्द हैं।

"वह कौन सी प्रथायें हैं?"

ब्रह्म सम्बन्ध, समर्पण और मर्यादा। इस महा सिद्धान्त का पालन कर कोई भी जीवन मुक्त हो सकता है।

दूसरे दिन दोपहर में शिरीष जाने के लिये तैयार हुआ। गौरांगदास उस समय मन्दिर में थे। वह उनसे मिलने को गया। जब से एक रुपया निकाल कर वह मूर्ति के सन्मुख धरने लगा, गौरांगदास ने रोककर पूछा।

"तुम्हारा अपना रुपया है?"

"हाँ !" शिरीष बोला ।

"कैसे ?"

"अपने सुख साधनों को छोड़ कर बचाई हुई रकम से यह रुपया दे रहा हूँ । इसी रकम से मैं नवीन जीवन आरम्भ करना चाहता हूँ ।"

"यह तो तुम बन्धन लेकर चले हो ।"

"नहीं अपनी निजी आवश्यकताओं को दूर कर यह रकम बचाया है ।"

"यह कैसे ? कोई उदाहरण दो ।"

"मैं नित्य का अपना दूध न पी कर उसका मूल्य बचाऊँ तो ?"

"पर दूध तुम्हें कौन देता है ? तुम्हारे पिता के ही पैसे से तो दूध आता है ।"

"ठीक है । मैं यह रुपया नहीं दूँगा ।" कह कर शिरीष तुरन्त बाहर निकला । गौरांगदास उसे पहुँचाने साथ चले । धीरे-धीरे बातें करते कुंये की ओर निकले । कुंये के निकट आते ही शिरीष ने जेब से मनीबेग निकाल कर एकदम कुंये में फेंक दिया । गौरांगदास हँसने लगे ।

"कितना रुपया था ?"

"फेंक देने पर कितना था इसका क्या विचार ।"

"अब तुम्हारे पास क्या है ?"

"मैं स्वयं हूँ और जो कपड़े पहने हैं वह है ।"

"शाबास ! पुराना शिरीष डूब गया ।"

"अच्छा अब मुझे आज्ञा दें और आप भी लौटें ।"

"शिरीष तुम्हारे मुख पर मुस्कान रहती है । कृष्ण को यह छटा सदैव तुम्हारे मुख पर वर्तमान रहे यही हमारा आशीर्वाद है जाओ तुम्हारी विजय होगी ।"

उनका पैर छू कर शिरीष टीले से उतरा।

कुछ सोचते हुये गौरांगदास भी पीछे लौटे। उनके मुख में यकायक आ पड़ा "अजीब छोकरा है।"

—२७—

अनेक प्रकार के विचारों में पड़ा हुआ शिरीष स्टेशन आया। नाव वाले को पैसा तो प्रथम ही दे चुका था पर अब बिना टिकट रेल में कैसे जाय? कम्पनी वाला उधार नहीं जाने देगा? तो फिर किसी की नौकरी करें? किसकी नौकरी करें? क्या करें। कौन नौकरी देगा इस प्रकार के विचारों में पड़ कर वह प्लेटफार्म पर घूमने लगा।

"आपको कहाँ जाना है? जरा यह टिकट और गठरी देखते रहिये तो मैं कुछ माल चढ़ा लूँ।" एक मनुष्य ने जल्दी से आकर उससे कहा। और उसके हाथ में टिकट दे दिया।

"मुझे बम्बई जाना?" शिरीष ने उत्तर दिया।

"मुझे भी वहीं जाना है। मैं अभी आता हूँ।" कहकर उसने गठरी उसके पास रख दी है और चला गया। शिरीष यह भी नहीं कह सका कि उसका जाना अनिश्चित है। गाड़ी का समय आ गया पर वह मनुष्य नहीं आया। एक पारसी टिकट कलेक्टर ने आकर पूछा "टिकट।"

"शिरीष ने टिकट दिखाया पर तुरन्त ही हाथ पीछे खींच लिया और बोला—मेरे पास टिकट नहीं है।"

"हाथ में तो है" कलेक्टर ने कहा। उसने समझा कि यह मेरे साथ मजाक कर रहा है। मजाक नहीं टिकट निकालो।"

शिरीष हसने लगा। विद्यार्थी जीवन में अनेक बार उसने रेलवे अधिकारियों को परेशान किया था। सत्ताप्रदर्शन के कितने स्थान निश्चित होते हैं कितने व्यक्ति निश्चित होते हैं तथा कितने पोशाक भी निश्चित होते हैं। शहर की सत्ता देखनी हो तो किसी अमलदार को सलाम कीजिये। सारी कचहरी को अपनी दृष्टि मात्र से हिलानेवाले किसी न्यायाधीश से आँखें मिलाएँ। टेढ़ी टोपी देकर सभी को दीन दृष्टि से देखने वाले, फटकारने वाले, और समस्त दुनिया को पशु समझने वाले पुलिस के जमादार को दे दीजिये सत्ता का परिचय आपको उस समय मिलता है जब आप दुर्भाग्य से या सौभाग्य से महाभारत के युद्धस्थल की रक्षा करने वाले सेनापति के समान किसी पुलिस इन्सपेक्टर या टिकट कलेक्टर के जाल में पड़ जाते हैं। शिरीष ने हँसते-हँसते उत्तर दिया।

"यह टिकट मेरा नहीं है।"

"किसी का भी हो लाओ दिखाओ।"

ऐसी कितनी ही आज्ञायें होती हैं जिनका उल्लंघन नहीं किया जा सकता। टिकट कलेक्टर की टोपी को ध्यान से देखते हुये लाचार होकर शिरीष को टिकट दिखाना पड़ा। सेकेन्ड क्लास में बैठने वाले व्यक्ति का बड़ा महत्व होता है। अपने इस महत्व का ज्ञान बैठने वाले ही को नहीं वरन रेलवे के अधिकारियों को भी होना है। देवताओं की मूर्ति के समान इस वर्ग में यह फर्स्ट क्लास में बैठने वाले के चेहरे पर प्रभाव का पुंज रहता है। अनुभवी पुरुष देखते ही कह सकते हैं कि अमुक सेकेन्ड क्लास का है या थर्ड क्लास का है।

बिना कुछ कहे टिकटवाला भी चुपचाप चला गया। गाड़ी आ गई राह देखता हुआ शिरीष उठा पर वह मनुष्य आया नहीं। उसे शंका हुई कि कहीं गोरागदास ने तो यह युक्ति नहीं की है? टिकट से लाभ लेने की

इच्छा नहीं हुई। गाड़ी छूट गई पर वह बैठा रहा पीछे से किसी ने उसके कन्धे पर हाथ रखा। घूमकर देखा तो एक अंग्रेज गृहस्थ खड़ा था।

"अरे तुम यहाँ कैसे आये ? किसी से मिलने आये थे क्या ?" अंग्रेज ने पूछा।

"ओहो तुम हो जेक ! बहुत दिन बाद मिले। माँ क्या करती है ? बहन कहां है ?" शिरीष ने पूछा।

"दो पत्र तुम्हारे पास भेजा पर तुम जवाब क्यों देने लगे। माँ तो मर गई पर बहन यहीं है। चलो हमारे खेमे में यहीं पास ही है।

"अरे मां मर गई ? बड़ा दुःख है। कितनी अच्छी थी। विलायत में मेरी कितनी परवाह रखती थी। उसके हाथ की रबड़ी अभी तक याद आती है। अच्छा तुम यहां क्या करते हो ? बड़े साहब होकर तो नहीं आये हो ?"

"मैं यहां असिटेन्ट कलेक्टर हूँ। तुम्हारे लौटने के बाद दूसरे वर्ष में पास हो गया। थोड़े दिनों में मैं कलेक्टर हो जाऊँगा।"

"बड़ी अच्छी बात है। मुझे बड़ी खुशी हुई। तुमसे किसी दिन फुरसत से बातें करूँगा।"

"फिर किसी दिन क्या। मैं तुम्हें जाने नहीं दूँगा। और तुम्हें जाना कहां है ? मैं कहला देता हूँ। गाड़ी में तो तुम गये नहीं अब जब तक गाड़ी नहीं मिलेगी कैसे जाओगे ? तब तक कहां रहोगे ?"

"मैं यहां घूमने के लिये आया हूँ। अकेला ही हूँ इससे कहीं भी पड़ रहूँगा। कोई ठीक नहीं है।"

"ऐसी बात है तो हमारे साथ चलो।" कहते हुये जेक शिरीष का हाथ पकड़ कर अपने साथ ले गया।

कैम्प में पहुँचते ही शिरीष ने युवतियों को टहलते हुये देखा उसने जेक की बहन को पहचाना।

"ओ हो बहन तो बड़ी हो गई। विलायत में तो बिल्ली के बच्चे के समान कूदती थी।"

युवती को ताज्जुब हुआ कि गाड़ी में गोरे साहब के साथ काला मनुष्य कौन है ? निकट आकर जैक की बहन ने शिरीष को पहचान लिया और हाथ मिलाया। यूरोपियन लोगों में अंग्रेज अपना भाव प्रदर्शन करने में बड़े संकोची समझे जाते हैं पर वही भारतियों में अधिक भाव प्रदर्शित करते हैं। भारतीय प्रजा को जहाँ आंख मिलने अपराध समझा जाता है वहां अंग्रेज लोग हाथ मिलाने में संकोच नहीं करते। बहुत दिनों के बाद मिले हुये स्नेही का समाचार पूछ-पूछते जैक और उसकी बहन उत्साह से भर गये। नौकरों और अर्दलियों को भी बड़ा ताज्जुब हुआ कि यह कौन सा बड़ा भारी देशी आदमी है जिसके लिये ये दोनों भाई बहन पागल हो गये हैं! दूसरी युवती जरा गम्भीर थी और अलग थी।

"अभी तुम्हारा बनस्पति भोजन का चोचला चलता ही है न ?" जैक ने पूछा।

"विलायत में हीं बनस्पति अहार था तो फिर यहां कैसे दूसरा हो सकता है ?" उसकी बहन ने कहा।

"शिरीष तुमने विलायत जाकर मेरा बड़ा नुकसान किया।" जैक बोला।

"कैसे ?"

"मेरी मां को शाकाहार की आदत थी ही उसमें तुमने आकर और पूर्ण कर दी और अब मेरी बहन भी शाकाहारी हो गई है। यहां आने पर एक भी बत्तक नहीं मारने दिया है इसने।"

"बत्तक जैसे निर्दोष पक्षी को मारते हुये तुम्हे शरम नहीं आती।" जैक की बहन ने हँसते-हँसते कहा।

इतने में एक और अँग्रेज सज्जन आकर मण्डली में मिल गये। जैक ने शिरीष से उसका परिचय कराया।

"यह हमारे मित्र हैं। बड़े भारी व्यापारी हैं। मध्य एशिया में जाकर कपास की बड़ी उपज करने के विचार में हैं। तमाम दुनिया की रूई और

कपास का इन्होंने खूब अध्ययन किया है। गुजरात में कपास ही देखने के लिये आये हैं। और यह इनकी पुत्री है।

"मुझे भी मध्य एशिया में जाना है।" शिरीष बोला। वास्तव में यूरोप और अमेरिका के जानकार देशों से मध्य एशिया के अनजान प्रदेशों में उसे विशेष आकर्षण था। मध्य एशिया की यात्रा उसकी योजना का प्रधान अंग था।

जैक ने शिरीष का परिचय दिया।

"यह हमारे हिन्दुस्तानी दोस्त हैं। विलायत में यदि इनसे मेरा परिचय न होता तो शायद मैं कहीं कोई क्लर्क वगैरह होता। इनके पिता एक अच्छे धनी..........।"

"जाने भी दो मेरा विशेष परिचय हो क्या। तुम मुझे जानते हो या मेरे पिता को?" शिरीष ने बीच ही में रोक कर कहा।

"मैं तो तुम्हें जानता हूँ।" जैक बोला।

"मध्य एशिया में क्यों जाना चाहते हैं? क्या किसी व्यापार की बात है क्या?" नवीन अँग्रेज ने पूछा।

"कुछ विशेष बात नहीं है पर कुछ Adventure (साहस) करने की इच्छा हो गई है और उसके लिये वहाँ से बढ़ कर कौन स्थान होगा?"

"बहुत ठीक, भारत के धनिकों की खास आवश्यकता है कि वह अपने धन का उपयोग साहसिक कार्यों में करें। यहाँ तो उसकी प्रवृति ही देखने में नहीं आती है।" अँग्रेज ने कहा।

"पर मैं बिना एक पैसे के निकला हूँ। Adventure का वास्तविक आनन्द तो बिना पैसे ही के आता है। पैसे का Adventure तो बहुत किया परन्तु उसमें adventure का वास्तविक रूप नहीं मिलता इसी से यह मार्ग पकड़ा है।" शिरीष ने उत्तर दिया।

अँग्रेज शिरीष को ध्यान पूर्वक देखने लगा। और फिर तुरन्त खड़े होकर उसका हाथ पकड़ लिया और अत्यन्त भाव पूर्वक बोला।

"तुम ठीक कहते हो। मेरा यही मत है और मैंने अपने जीवन का आरम्भ इसी प्रकार किया था तथा मुझे सफलता प्राप्त हुई। आज मध्य एशिया के कितने छोटे-छोटे राज्यों को कर्ज देकर मैंने अपने बस में किया है। तुम मेरे साथ चलो।"

"अरे आप इन्हें कहाँ ले जायेंगे? यह तो विवाहित गृहस्थ है। इसकी स्त्री मुझे जीता नहीं छोड़ेगी। विलायत में ही नहीं रहने दिया तो फिर मध्य एशिया की तो बात ही क्या है। उस समय तो विवाह हुआ भी नहीं था अब तो विवाह और बच्चे भी हो गये हैं।" जैक ने कहा।

"तुम्हें स्त्री का क्या अनुभव है?" शिरीष ने व्यंग से कहा। दूसरी युवती के चेहरे पर लालिमा दौड़ गई। उसने कतराती नजर से एक बार शिरीष और जैक को देख कर आँखें नीची कर लीं "बिना विवाह किये स्त्री के विषय में बोलने का अधिकार तुम्हें नहीं है।"

"भाई का विवाह निश्चित हो गया? हाथ में अँगूठी नहीं देखते" जैक की बहिन ने शिरीष का हाथ दबाया और युवती की ओर इशारा किया।

"ओहो यह बात है। मैं अपनी बात आधी वापस लेता हूँ। पर वह भी मेरी योजना में बाधक नहीं होगी। मैं मध्य एशिया जाऊँगा तो वह उत्तरी ध्रुव पहुँच जायगी। समझा?" शिरीष बोला।

"परिचय तो कराया नहीं। आजकल कहाँ है? हमारे यहाँ लेकर कब आओगे?" जैक ने पूछा।

"तुम विवाह कर लो तब।"

इतने में नवीन अंग्रेज के नाम से एक तार आया उसका नाम पर्सिवल था। तार पढ़कर वे कुछ चिन्तित हो गये।

"क्या है?" जैक ने पूछा।

"मुझे आज ही जाना होगा। जो मजदूर मैं ले गया हूँ उनमें कुछ असन्तोष फैल गया। मि० शिरीष हमारे साथ चले तो कुछ हो। तीन महीने में मैं पुनः लौट आऊँगा। मजदूर को कोई भाषा समझाने वाला मिल जाय तो वे जमे रहें क्यों हमारे आदमियों से उनकी पटनी नहीं।"

पार्सिवल की इच्छानुसार शिरीष ने जाना स्वीकार कर लिया।

"मैं नौकर की भाँति नहीं चलूँगा।"—शिरीष बोला।

"अरे नहीं भाई मैं तुम्हें अपने सलाहकार की तरह ले चलूँगा। हमारे मजदूरों के लिये तुम्हारी बड़ी आवश्यकता है। तुम चलोगे तो बड़ी कृपा होगी।"

दोनों का जाना तय हुआ। शिरीष विलायत में जैक के ही घर में रहता था। उस समय जैक के पिता की मृत्यु हो गई थी और उनकी माता ही ऐसी ही विद्यार्थियों को अपने घर में टिकाकर भोजन देती थी तथा जो कुछ मिलता था उसी से जैक और उसकी बहन को पढ़ाती थी। जैक इण्डियन सिविल सर्विस के लिये तैयारी कर रहा था पर मृत्यु से बड़ी कठिनाई में पड़ गया था। फिर माता के सर पर भार होकर पढ़ना उसे उचित नहीं जान पड़ा और वह पढ़ना छोड़ कर नौकरी करने के लिये तैयार हो गया। इतने में शिरीष उसके घर में रहने के लिये आया। उसने जैक को पढ़ने के लिये उत्साहित किया और यथासम्भव सहायता भी दी। साल भर के बाद शिरीष तो लौट आया पर जैक जब परीक्षा में पास होकर दक्षिण में नियुक्त हुआ तो अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करने के लिये उसने शिरीष को पत्र लिखा। उसे उत्तर भी एकाध पत्र का मिला। बाद में उसकी बदली गुजरात में हो गई। उसने शिरीष की खोज की। एक बार वह बम्बई गया था तथा दूसरी बार नर्मदा का सैर कर रहा था। जैक के विभाग में भी नर्मदा नदी पड़ती थी और एक किनारे खेमा डाल कर रहता था। उस समय उसके यहाँ मेहमान आये थे। पार्सिवल की पुत्री से उसका प्रेम था और उसने पिता पुत्री दोनों को निमंत्रित किया था।

प्रेम जैसे तैसे किसी से होगा ही इस सिद्धान्त को मान कर पश्चिम के माता पिता प्रेम के विषय में बहुत खोद विनोद नहीं करते। कितनी ही अन्य मूर्खताओं के साथ-साथ प्रेम करने की भी मूर्खता हो सकती है। किन्तु पार्सिवल अपनी पुत्री को यहीं छोड़ जाने के लिये तैयार नहीं था; क्योंकि विवाह के पहले युवक युवती को अकेले छोड़ने की उदारता के वह विरुद्ध था। जैक के विवाह के लिये उसने अपनी राय दे दी थी और तीन चार महीने के बाद लौट कर विवाह कर देने का भी निश्चय कर लिया था।

शिरीष ने जैक के विवाह में आने का वचन दिया इसी से सभी ने उसे जाने की छुट्टी दी। बहुत दिनों के बाद परिचितों से मिलने का अनुभव सब में हुआ तथा उसी दिन शाम की गाड़ी से शिरीष अपने नये मित्र के साथ यात्रा करने को तैयार हुआ। प्रातःकाल बम्बई पहुँच कर उसने पार्सिवल से छुट्टी ली। यद्यपि पार्सिवल ने उसके लिये होटल में प्रबन्ध किया था तो भी वह अपने मित्र के घर जाना चाहता था। दूसरे दिन जहाज के समय मिलना तय हुआ। शिरीष पार्सिवल से अलग हुआ तो उसके मस्तिष्क में लाल सागर, तैग्रीय, धुवतीय इत्यादि भौगोलिक स्थान और शक गूंजने लगे।

सोहिणी अपने कुन्दनलाल के वहाँ थी। वहाँ जाय या कनक के यहाँ जाय इसका निर्णय करते-करते शिरीष ने अन्त में कनक के यहाँ जाना ही तय किया।

Pyar and Bu Pani

कनक ने शिरीष का खूब सत्कार किया। उसकी इच्छा थी कि वह शिरोष के द्वारा खूब लाभ उठावे। उसके साथ सम्बन्ध होने के बल पर ही उसने अपना व्यापार बन्द कर दिया और मोहन सेठ के व्यापार में और भी हिस्सा बढ़ाया। अभी व्यापार से पहले जैसा रंग नहीं आया था। घाटे के प्रश्न होने के कारण अभी उसने हिस्से की बात दूर रक्खी और व्यापार में शिरीष का बल प्राप्त करने के लिये वह उसका सलाहकार बन गया।

परन्तु शिरीष को नफे लिये व्यापार नहीं करना था। कनक यह नहीं समझ सका था कि शिरीष का व्यापार सत्यवती गृहस्थ का व्यापार स्वप्न है। शिरीष अपनी अलग-अलग योजनायें सोचता था और कनक उन सबमें सफलता देखता था। केवल नफा कैसे होगा इस विषय में कभी-कभी दोनों में मतभेद हो जाता था। पर नफे की बात तो बाद में आती थी। जब शिरीष बम्बई में आया तब कनक ने समझ लिया कि अब व्यापार में होशियारी करनी होगी।

दोपहर को मोहन सेठ भी आये। चाय पीते व्यापार की बातचीत आरम्भ हुई। अनेक प्रकार की बातें हुई। अनेक प्रकार की योजनायें बनी बिगड़ी अन्त में एक सर्वानुकूल विचार हुआ। सबकी धारणा थी कि शिरीष पैसा लगाकर व्यापार आरम्भ करेगा। परन्तु शिरीष के पास लगाने

के लिये पैसा था हा नहीं इसमें वह बिना पैसे की योजना बनाता। उसने सोचा कि अपनी बात कहकर इन व्यापारियों का भ्रम दूर कर देना चाहिये। वह बोला।

"यह सब ठीक है पर मैं पहले ही कह देना चाहता हूँ कि किसी भी योजना में कोई रकम लगाने की मेरी स्थिति नहीं है।"

यह सुनकर दोनों इस प्रकार हँसने लगे जैसे किसी के मानने योग्य बात ही नहीं। मोहन सेठ बोले-

"रकम की जरूरत पहले ही नहीं पड़ेगी और फिर तुम्हारा नाम तो पैसे का काम करेगा क्यों भाई कनक?"

"अभी भी तुम नहीं समझे सेठ साहब। मैं केवल बुद्धि और अपना शरीर किसी योजना में लगा सकता हूँ।" शिरीष ने कहा। "फायदा होने के पहले मैं कोई भी रकम लगाने के लिये तैयार नहीं हूँ।"

"तब तो तुमने खूब भुलावे में लगाया मेहरबान। हम फजूल ही अपना काम छोड़कर तुम्हारे पीछे पड़े हैं?" मोहन सेठ बोला।

"मैंने कब यह कहा कि तुम अपना काम छोड़कर हमारे पीछे पड़ो। मुझे तुमसे तो कुछ लेना-देना है नहीं। मेरी तो बात कनक से हुई।"

शिरीष ने जरा कड़े होकर कहा।

"व्यापार की बात में बुरा नहीं लगना चाहिये राजा।" हँसते-हँसते अप्रतिभ न होकर मोहन सेठ बोले। "और फिर कनक भाई तो हमारे हिस्सेदार हैं न?"

"नहीं मुझे बुरा नहीं लगा। पर मैं अपनी सफाई दे देना चाहता हूँ। अब आप सोचिये कि मैं रकम न लाऊँ तो कैसे योजना हो सकता है और क्या व्यवस्था की जा सकती है?"

"तब तुम्हें तो अपनी डिग्री का भरोसा है। अब बी० ए० पास लोगों को हमलोग क्या देते हैं यह कनक भाई से पूछ लो। लो भाई कनक

ठीक है। वह केवल पत्र लिख सकते हैं। इन्हें तो सिर्फ पचास साठ रुपये मिल सकता है।" मोहन सेठ ने इस प्रकार कहा जैसे शिरीष उनके पास नौकरी करने की इच्छा से बातें कर रहा हो।

शिरीष को क्रोध आ रहा था परन्तु उसने अपने को सँभाला। वह धर्मपाल के पुत्र की हैसियत से क्रोधकर सकता था पर शिरीष की हैसियत से तो मोहन सेठ का कहना वास्तविक था। यह सोचकर उसने हँस कर उत्तर दिया—

"अगर ऐसी बातें होती मोहन सेठ, पचास साठ रुपये की आवश्यकता होती तो मैं तुम्हारे साथ व्यापार में पड़ता। अच्छा अभी यह बात रहने दो। अब मैं चलूँगा। अशोक को देखता आऊँ क्योंकि अभी ही मुझे बाहर जाना है तीन-चार महीने में लौटूँगा।"

कनक ने समझा कि शिरीष उसे उल्लू बना गया। ऐसा धनी आदमी बिना कुछ रकम लगाये व्यापार करेगा यह कल्पना से भी परे बात थी। उसने समझा कि कदाचित् इसमें डाक्टर की कोई राय है। और शिरीष तीन-चार महीने के लिये जा रहा है तो उनके ध्यान में आया कि उसने उसे छोड़कर कोई दूसरा साझीदार खोज लिया है। मोहन सेठ ने सब गड़बड़ कर दिया। बिना पैसे के भी शिरीष का साझा कहाँ? व्यापार तो अपने हाथ में रहता। उससे कितना फायदा हुआ और कितना दिखाया जाय यह सब तो अपने हाथ की बात था, फिर एक बच्चा भी समझ सकता है कि यदि शिरीष को फायदा हो तो उसके बाद झखमार कर देगा ही। मोहन सेठ की मूर्खता पर उसे क्रोध आया पर बात आगे बढ़ाने का अवसर न देख कर उसने बनाने की सोची। मोहन सेठ ने भी सोचा कि शिरीष उससे रुष्ट हो गया है। अपने जमानतदार को उस प्रकार छोड़ना उचित नहीं है। पर नये धनिक को कड़ुआ बोलने और अपने सामने बैठे आदमी को दबाने की हौस रहती है। शिरीष चलने के लिये उठा। कनक भी उठा। एक कोठरी के द्वार पर आकर कनक ने द्वार खटखटाया और शिरीष से पूछा।

"तुम्हें कुन्दनलाल के यहाँ जाना है ?"

"हाँ।"

"उनकी स्त्री यहाँ आती है यदि हो तो उससे समाचार पूछ लो।" शैतान की भाँति नेत्र घुमा कर कनक ने कहा।

कनक चकित होकर विचार कर ही रहा था कि द्वार खुला और विभाकर निकला। शिरीष को देखते ही उसका चेहरा उतर गया। कनक अन्दर गया। उसके पीछे शिरीष भी गया। सामने एक सुन्दर आसन पर सोहिणी पैर फैलाये हाथ का सहारा दिये कोई पुस्तक पढ़ रही थी। दोनों में से किसी को गुमान भी नहीं था कि अचानक ऐसे स्थल पर भेंट होगी। दोनों को ही विचित्र प्रकार का अनुभव हुआ। विभाकर नीचे दृष्टि किये खड़ा रहा परन्तु क्षण मात्र में सोहिणी ने स्थिति के सँभालने की चेष्टा की। संकोच का क्या कारण है ? क्या यह कोई पाप करने के लिये यहाँ आई है ? असूर्यंपश्य राजपूत रमणियाँ भी जब चित्रकारों के सन्मुख बैठती थी तो फिर सोहिणी के लिये क्या बन्धन है ? शिरीष ने भी कभी यह स्पष्ट रूप से मना नहीं किया था कि वह अपना चित्र न बनावे या अपने प्रतीकवर कोई काल्पनिक चित्र न उतरवाये। शिरीष को एकाध का बुरा जरूर लगा था यह सोहिणी जानती थी पर साफ-साफ कह देना चाहती थी। उसने गर्व से पीछे देखा और शान्त वातावरण को भंग करती हुई बोली।

"विभाकर मैं समझती हूँ कि चित्र पूरा होने में अभी एक सप्ताह और है ?"

"जी हाँ।" विभाकर ने उत्तर दिया।

"तो फिर काम बन्द मत करो।"

सोहिणी का कण्ठ मधुर था पर मधुरता शिरीष को भाले के समान लगी। बिना एक शब्द बोले वह लौट पड़ा और कमरे के बाहर हो गया। कनक के नेत्रों में प्रसन्नता थी। कालेज में पढ़ते समय सोहिणी के व्यंग पर

उसे नत मस्तक करने की प्रतिज्ञा याद आई। तुरन्त ही सोहिणी और विभाकर भी शिरोष के पीछे लौटे।

बाहर आकर शिरीष रुका नहीं। उसके साथ ही कनक भी चलने लगा पर इसका ध्यान ही नहीं था। थोड़ी देर के बाद कनक को देखा और कहा।

"कनक तुम्हारी आवश्यकता नहीं है। मैं अकेले ही चला जाऊँगा!"

"पर तुम लौटेगे कब!"

"हमारी राह मत देखना शायद मैं दूसरी जगह जाऊँगा।"

"पर मुझे चिन्ता लगी रहेगी। तुम्हें बुरा लगा होगा पर मैं केवल विभाकर से पूछने गया था। वहाँ कभी-कभी वीणा आती है।"

शिरीष ने कुछ उत्तर न दिया और तेजी से चलने लगा। कनक को हँसी आ गई। उसने मन में कहा।

"इसे व्यापार करना है या नागिन जैसी स्त्री सँभालनी है!"

—२६—

कहने वालों का कहना बिल्कुल सत्य है कि मनुष्य को अपना अपराध नहीं सूझता। दूसरे का दृष्टिकोण देखने और उसे समझनेसे बढ़कर कठिन काम दूसरा नहीं है। यदि अपना काम बिल्कुल ठीक हो पर दूसरे को यह ठीक लगेगा या नहीं इसी आधार पर संसार से हमारा सम्बन्ध है व्यक्ति के साथ जगत के सम्बन्ध से ही सामाजिक बन्धनों का विकास होता है।

समाज के पास व्यक्ति के आचरण की परख के लिये बाह्याचरण के सिवा और कोई साधन नहीं है। इसी कारण समाज ने आचरण के लिये एक चौखट बना दी है और व्यक्ति के कार्य को इसी चौखट में बन्द कर वह उसके विषय में भला-बुरा अभिप्राय करता है। व्यक्ति के लिये कभी-कभी यह चौखट सँकरी मालूम पड़ती है। इसी लिये उन्होंने इसी चौखट की सीमा को प्रमाण माना है? इस प्रकार का प्रश्न वह करता है तो समाज उसे उत्तर देता है कि "इसके सिवा दूसरा और कोई माप समाज के पास है ही नहीं।" यद्यपि यह माप अधूरा है पर जब तक इससे अच्छा कोई अन्य माप न मिले तब तक तो इसे ही मानना पड़ेगा और इस माप की अवहेलना निरंकुशता समझी जायगी। यही व्यक्ति स्वातंत्र्य और समाज-बन्धन की अनादि लड़ाई है।

"मधुशाला में जानेवाला पीने ही के लिये आता है और पीकर ही बाहर आता है।" इस प्रकार का निष्कर्ष और नियम समाज अनेक व्यक्ति के अनेक युगों के अनुभव पर बनाया है। "एक साधु मधुशाला में जाता है, सबके साथ बैठता है, हाथ में प्याला लेकर शराब लेता है। वह कहता है कि मैं अनुभव करने गया था। मधुशाला से बढ़कर अनुभव प्राप्त करने की और कौन सी जगह है?" पर इससे अनुभवी समाज के नेत्रों में उसके प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। उसका मस्तक नकारात्मक उत्तर देता है और उसके मुखपर मुस्कुराहट आती है जैसे वह साधू के आचरण से पूर्णतया परिचित है।

ऐसी दशा में क्या कहा जाय कि कौन सही रास्ते पर है? साधू या समाज? या दोनों? और दोनों सही हैं तो फिर यह स्पष्ट विरोधाभास कैसा है? दोनों का दृष्टिकोण कैसे समझा जाय? साधू समाज को दोष देता है, समाज साधू की निन्दा करता है। फिर अपराधी कौन है?

उस दिन रात में सोहिणी शिरीष की राह देखती थी। उसे विश्वास था कि चाहे अभी विभाकर के यहाँ उसे देखकर वह कुछ बिगड़ अवश्य

गया हो पर आवेगा जरूर और जब वह आवेगा तब उससे सारी बातें समझा कर वह खूब हँसेगी। पर वह भूल गई थी कि इस प्रकार के छोटे-छोटे कितने ही प्रसंग हो गये हैं और उनसे शिरीष का मानसिक वातावरण कैसा हो गया था।

रात में कनक के घर आदमी भेजा, पर वहाँ भी शिरीष नहीं था। वह सारी रात जागती थी। विभाकर के यहाँ उसने शिरीष से बात तक नहीं किया था यह बात उसे खटकने लगी। प्रातःकाल उसके लाल नेत्र देखकर कुन्दनलाल ने डाक्टर बुलाया। उन्हें अपनी पुत्री से बड़ा प्रेम था। यद्यपि उन्होंने दूसरा विवाह किया था तथापि बड़ी पुत्री को अच्छी शिक्षा प्रदान की थी। सौतेली माता शशिरेखा, कभी-कभी कुछ कह भी देती थी पर पिता कभी भी कुछ नहीं कहते थे। शायद ही कभी वह शशिरेखा की शिकायतों पर ध्यान देते थे। शशिरेखा की पुत्री वीणा का भी सोहिणी से बड़ा प्रेम पूर्ण भाव था। वीणा के लिये सोहिणी आदर्श थी। दोनों का चेहरा भी लोगों को भुलाने में डाल देता था। केवल वीणा का स्वभाव सोहिणी से शान्त था।

पर दूसरे ही दिन चेहरा उदास क्यों हो गया है। रात भर उसके कमरे में रोशनी क्यों जलती रही। उसके नेत्र लाल क्यों हो रहे हैं। यह बात सभी की दृष्टि में आ गई।

"रात में अधिक मत पढ़ा करो नहीं तो आँखें खराब हो जायँगी।" कुन्दनलाल ने कहा।

"हाँ कभी-कभी नींद नहीं आती तो पढ़ने लगती हूँ।" सोहिणी ने हँसकर उत्तर दिया।

"जब देखो तब जागती रहती है। उसे अपना घर याद आता है। यह गरीब का घर उसे अच्छा नहीं लगता ?" शशिरेखा ने कहा।

"वाह जन्म भर इसी घर में रही और अब बुरा लगेगा।" सोहिणी बोली।

"तो शिरीष भाई को भी यहाँ क्यों न बुला लिया जाय माँ।" यौवन की फुलवारी में प्रवेश करती हुई वीणा ने कहा।

"मैंने तो दो तीन पत्र लिखा पर उत्तर ही नहीं आया ऐसा तो कभी नहीं हुआ था पर इस बार न जाने क्या हो गया है।" कुन्दनलाक ने कहा।

सोहिणी को रुलाई आ गई। वह अपने को अब रोक नहीं सकी।

उसने रोकने की बड़ी चेष्टा की थी। पर जब हृदय पर कुछ भार रहता है तो शरीर भी उससे दब जाता है। उसे रोते देख कर सब शान्त हो गये। परन्तु दूसरे ही क्षण सोहिणी हँस पड़ी। माता-पिता की बातें ही अपने रोने का कारण है यह प्रकट करना बड़ी भारी कठोरता है। यही सोचकर उसने अपनी आँखें पोछ डाली और हँस पड़ी।

"कभी-कभी मुझे ऐसा रोना आ जाता है।" आप लोग घबड़ा क्यों गये। उसने पूछा।

"यह कैसी बात है?" शशिरेखा ने पूछा। उन्हें शक हो गया कि पुत्री को कोई मानसिक कष्ट है। कुन्दनलाल की धारणा हुई कि सोहिणी को हिस्टीरिया हो गया है। उन्होंने डाक्टर की राय लेने की इच्छा प्रकट की।

एकाएक सबका ध्यान दूसरी ओर हो गया। वीणा ने शायद अशोक को चिढ़ाया था और उसने कृष्ण के समान शिशुपाल की सौगन्ध के सुनने के बाद दौड़ कर वीणा का कान नोच लिया था।

शशिरेखा ने कहा।

"ले बड़ा अशोक-अशोक करती थी। फिर चिढ़ाया तो अब बाल नोचेगा।"

सोहिणी ने अशोक को अपने पास बुला कर कहा।

"क्यों मौसी को ऐसा कहा जाता है?"

अशोक के लिये दुनिया में अपने दादा के सिवा और सभी मार खाने के पात्र थे फिर उसमें मौसी ही क्यों अपवाद होती। उसने कहा।

"मुझे मौसी चिढ़ाती है तब?"

"बड़े लोग यदि चिढ़ावें भी तो उन पर हाथ नहीं उठाना चाहिये।"

अशोक वीणा की ओर इस प्रकार देखने लगा मानो निरीक्षण करता हो कि वास्तव में मौसी इतनी बड़ी हो गई है चिढ़ावे भी तो नहीं मारना चाहिये यह भी कह रही है। उसकी इस मुद्रा से प्रसन्न होकर वीणा ने उसे पुनः गोद में उठा लिया और भाग गई। सोहिणी ने कहा।

"देखो फिर तुझे गोद में भी उठाती है।"

शशिरेखा का सन्देश सच निकला। अनेक प्रकार की बातें उसके सुनने में आई। यद्यपि कुन्दनलाल को अपनी नौकरी और समाचार पत्रों को छोड़कर अन्य किसी चाह से मतलब नहीं था फिर भी इन बातों की ओर उन्होंने भी ध्यान दिया। बात सुनने की इच्छावाले बहुत मिल जाते हैं। थोड़े ही समय में शिरीष के विषय में अनेक प्रकार की गप्पें फैल गई और कुन्दनलाल को ऐसा जान पड़ने लगा मानो शिरीष की बातें सभी को मालूम हो गई हैं। प्रत्येक बात का नया ही रूप होता था।

"पिता के साथ शिरीष का झगड़ा हो गया है इससे पुत्र और बहू को घर से निकाल कर बुड्ढा यात्रा करने चला गया है।"

"पर इस झगड़े का क्या कारण है यह भी कोई जानता है? किसी काम में बेवकूफी करके वह लाखों की जायदाद लुटा दे तो बाप बेचारा क्या करे?"

"पर यह घाटा भी कैसे हुआ यह भी सुनने लायक है। वास्तव में व्यापार किया होता तो रुपये का आठ आना तो मिलता। पर वहाँ तो केवल व्यापार का नाम भर था और पैसा नाच गाने में लुटता था। न जाने कितनी वेश्याओं ने उसे लूटा है।"

"पर उसकी स्त्री तो बहुत सुन्दर और पढ़ी-लिखी है फिर भी शिरीष को यह हवा कैसे लग गई।"

"यह भी समझने की बात है। पढ़ी-लिखी स्त्री है तो तुम क्या समझते हो। किसी डाक्टर के साथ रोज घूमने जाती थी इसे शिरीष ने मना किया। पर पढ़ी-लिखी स्त्री भला कैसे माने? तब शिरीष ने उसे छोड़कर यह रास्ता पकड़ा।"

"और अब शायद वह डाक्टर को भी छोड़कर किसी चित्रकार के साथ भाग गई है?"

"यह सब ठीक है पर मूल कारण दूसरा ही है। शिरीष का विलायत में अंग्रेज रमणी से सम्बन्ध था। वह उसे खोजती हुई यहां आई तब सारी बातें खुल गई और पिता और स्त्री से झगड़ा भी हो गया।"

"नहीं यह बात नहीं है बल्कि यह है कि एक यूरोपियन के यहां वह नौकर था। उसकी लड़की को वह लेकर घर भाग गया तब अंग्रेज कलक्टर ने उसे वारेन्ट निकलवा कर पकड़वा मंगाया पर फिर भी न जाने कैसे वह छूट कर भाग गया है।"

"पता लग गया था कि कुछ दिन हुये नर्मदा के किनारे साधू का वेष बना कर वह घूमता था। पुलिस ने खोज की। स्टेशनों पर उसका चित्र लग गया तथा स्टेशन मास्टरों को आदेश हुआ कि चित्र से मिलने वाली आकृति के मनुष्य को पकड़ लें। एक बार वह बिना टिकट के यात्रा करता हुआ पकड़ा गया। बाद में टिकट कलेक्टर को शक हो गया कि यह तो शिरीष है। तब शिरीष चलती गाड़ी से नदी में कूद पड़ा। उसके पीछे टिकट कलेक्टर भी कूदा। दोनों के बीच में एक मगर आ गया फिर न जाने क्या हुआ दोनों का पता नहीं।"

"हां यही ठीक है। मैंने एक आदमी से सुना है जिसने अपने आँख से दोनों को नदी में देखा था।"

"और यह भी तो कहा कि उस टिकट कलेक्टर को उसकी बहादुरी के

लिये एकदम से कलेक्टर बना दिया गया और दो सौ रुपये तनख्वाह कर दी गई।"

"अरे भाई वह पारसी था न इसी से। किसी हिन्दू को कभी ऐसा नहीं होता। खैर जो भी हो पर पकड़े जाने पर शिरीष को सात साल से कम की सजा न होगी।"

"होगी क्या। सात साल की सजा का हुक्म हो चुका है केवल पकड़ा जाना बाकी है।"

इस प्रकार की अनर्गल बातें समाज में चल रही थीं। मनुष्य की कल्पना में चश्मे का नम्बर तो लगा नहीं है कि उसी के अनुसार उसकी दृष्टि की सीमा हो। आज संसार में इज्जत और बदनामी तो रोज की बात है। न प्रतिष्ठावान को अभिमान करने की आवश्यकता है और न बदनाम को सन्तोष की।

कुन्दनलाल पहले तो इन बातों को सुन कर हक्के बक्के से हो रहे। बातें सच भी हो सकती थीं। सब नहीं तो कुछ ठीक होगी ही। पर लड़की कुछ कहती भी नहीं है! शिरीष के पिता साधारण आदमी नहीं थे। उनकी जानकारी में बात इतनी बढ़ सकती थी। सजा होती तो सबको पता अवश्य ही लगता। अखबार में भी कुछ नहीं मिलता। उन्होंने अपने परिचित एक सज्जन से पूछा।

"मेरे दामाद के विषय में आप कुछ जानते हैं?"

सर्पणनो सज्जन महोदय भी बातें सुनते थे फिर बला से बातें उनके कान से बाहर कैसे जाती। उन्हें अत्यन्त गम्भीरता से उत्तर दिया।

"सुना तो बहुत कुछ है पर तुमसे पूछने के लिये रुका रहा। तुम्हारे दामाद के विषय में सुन कर तुमसे बिना कुछ पूछे कहना ठीक नहीं इसी से चुप रहा। तो आखिर सारी बातें क्या हैं कहो भी तो।" भोले कुन्दनलाल ने जो कुछ सुना था सब कुछ सुना दिया।

वह सज्जन पत्र सम्पादक थे। दूसरे दिन ये बातें सभी ने पत्र में छपी

हुई पढ़ लीं। वास्तव में सम्पादक महोदय कुछ भी नहीं जानते थे। पर इस प्रकार की मजेदार बात सुनने का प्रसंग आप ही आप आ गया। अक्सर पत्रकारों को इस प्रकार की बातें भी मिल ही जाती हैं। उन्होंने अत्यन्त सावधानी से सारी बातें अपने पत्र में छाप दीं।

अब कुन्दनलाल से नहीं रहा गया। उन्होंने स्वयं तो नहीं पर शशिरेखा से कहा कि सोहिणी से सारी बातें पूछो।

एक दिन अकेले में शशिरेखा ने सोहिणी से पूछा। सब जानते थे कि सोहिणी कितने शोक में है फिर हँसने का प्रसंग आने पर वह खूब हंसती थी। उसने शशिरेखा की बातें सुनीं और खिलखिला कर हंस पड़ी। ऐसी बेसर पैर की बातें सुनकर तो वह हँसेगी ही पर आखिर बात है क्या?

उसने कहा कि यह बातें गप्प हैं। बात सिर्फ इतनी है कि किसी अज्ञात कारण से शिरीष बिना उससे मिले कहीं चला गया है। सोहिणी की अपनी ही मूर्खता इसका कारण है।

जनता की बात समझ में आती थी पर सोहिणी की बात तो समझी ही नहीं जा सकती। इतना साफ हो गया कि दोनों ही किसी बात से दुःखी हैं पर बात क्या है यह पता नहीं।

इतने में कान्तागौरी नामक औरत के आने का समाचार नौकर ने दिया। शशिरेखा ने यह नाम सुना था वह जल्दी से मिलने उठी! पर सोहिणी ने कहा कि वह नहीं मिलेगी।

शिरीष का पता लगाने के लिये उसने कनक को दो एक बार पत्र लिखा था। कनक ने उत्तर दिया था कि पता केवल लक्ष्मी जानती है। सोहिणी के लिये लक्ष्मी से शिरीष का पता पूछना! यह अपमान असह्य था। वह जानती थी कि कान्ता और लक्ष्मी एक हैं। अदृष्ट का शूल उसने सहन कर लिया पर अपना गर्व नहीं छोड़ा। पत्नियों के अधिकार की जिद संसार में प्रसिद्ध है। कान्ता के आते ही वह दूसरे कमरे में चली गयी।

Lav: in Hindi

विभाकर के चित्र की अच्छी मांग होने लगी थी उसकी कलाओं का प्रदर्शन भी अच्छी-अच्छी जगहों पर हुआ। इन प्रदर्शनों से उसकी ख्याति भी बढ़ गई और उसके चित्रों की खपत होने लगी।

उसका प्रदर्शन देखने के लिये गौरी को साथ लेकर सेठ मुरलीधर भी आये थे। विभाकर को देखकर उन्हें अपने प्रेम की याद आई और उन्होंने कहा। विभाकर ने अपनी भूल स्वीकार करते हुये उसे खोजने का वचन दिया और एक कमरे में ले जाकर उनका सत्कार किया।

कमरे में विभाकर के पिता बैठे थे तथा सुधा भी बैठी हुई प्रदर्शनों का वर्णन कर रही थी।

पैर रखते ही मुरलीधर चौंक पड़े।

विभाकर ने उन्हें रुकते देखकर कहा। "कोई और नहीं सेठजी आइये। यह तो मेरे पिता हैं।"

"ठीक है पर अभी ही याद आ गया। मुझे एक अंग्रेज मित्र से मिलने इसी समय जाना है।" कहकर मुरलीधर तत्काल पीछे लौटे। विभाकर उनके मोटर तक आया। मोटर में बैठकर सेठ ने पूछा।

"वह तुम्हारे पिताजी थे जी?"

"जी हां, मेरे पिता ही थे।"

मुरलीधर ने सन्तोष की सांस ली। मोटर चलने पर उन्होंने गौरी से पूछा।

"उस अन्धे को पहचाना तुमने ?"

अंगहीनता हास्य या तिरस्कार का विषय नहीं है। उससे मनुष्य को किसी अन्य अगाध सत्ता का भयंकर परिचय मिलता है तथा वह दीन और लाचार हो जाता है। इस पर भी यदि अंगहीनता हास्य का विषय हो तो वह हास्य निश्चय ही अधम हास्य है। तिरस्कार उत्पन्न करने की वृत्ति तिरस्कार का विषय है।

सेठजी की बात का उत्तर गौरी ने सर हिलाकर दिया। "नहीं।"

"क्यों भूल गई। इसी के घर तो तुम जाने वाली थीं। मैं न होता तो इसी की पुत्रवधू..........विधवा भी......।" तुरन्त ही गौरी ने कान में ऊँगली डाल ली और पूरा वाक्य सुनने से इन्कार कर दिया।

"मुझे नहीं मालूम था कि यह विभाकर उसी का पुत्र है नहीं तो कभी..........।" सेठ अत्यन्त प्रसन्नता से बातें कर रहे थे पर गौरी ने इस बात को भी पूरा नहीं सुना।

"कल ही फ्रेम की बाबत इसे गिरफ्तार कराऊँगा। एक बार इसका छोकरा भी तो जेल में जाय।"

गौरी उनका मुंह ताकने लगी। सेठ के नेत्रों में अपार प्रसन्नता खेल रही थी उनका ध्यान गौरी पर नहीं था।

उसी दिन संध्या को प्रदर्शनी की बातें करता हुआ विभाकर का कुटुम्ब बैठा था। रोहिणी और वीणा भी आई थी।

अब मकान तो अच्छा ठीक हो गया है दो एक दिन में वहां जाइयेगा पर विभाकर को अधिक चित्रकारी न करने दीजियेगा नहीं उसकी तबीयत खराब हो जायगी।

"उसे चित्रों की बड़ी चाट है क्या करूँ। हमारे कुटुम्ब में यही तो एक बड़ी भारी जिद है कि जिसे जो पसन्द आवेगा वही करेगा। आप ही लोगों की सहायता से इसने कुछ चित्रकला में कमा लिया है नहीं आजकल क्या होता है ?" विभाकर के पिता ने उत्तर दिया।

"अब कोई चिन्ता की बात नहीं है। उसका विवाह कर दीजिये सब ठीक हो जायगा।" रोहिणी हँसते-हँसते बोली।

पिता ने एक निःश्वास लिया। वीणा ने यद्यपि कोई जरूरत नहीं थी तथापि सर का आँचल सरका लिया और सुधा ने तो एक नया झगड़ा ही उठा लिया।

"नहीं नहीं मैं भाई का विवाह नहीं करने दूँगी; नहीं वह दूसरे का हो जायगा।" सब हँस पड़े। विभाकर के पिता बोले—

"यह छोकरी बहन के नाते इतनी ईर्ष्यालु है कि कुछ कहा नहीं जाता। कोई विभाकर का मित्र हो यह इसे सहन नहीं है। बस हो तो सारे संसार से लड़ पड़े। जब विभाकर के माता-पिता का भी प्रेम यह नहीं देखती तो फिर उसकी स्त्री का प्रेम कैसे सहन करेगी?"

इतने में किसी ने आकर पूछा।

"विभाकर हैं।"

"हाँ, क्या काम है?"

"जरा नीचे आइये।"

विभाकर नीचे गया। मोटर में गौरी बैठी थी। विभाकर को पास बुलाकर धीरे से कहा।

"तुमने फ्रेम का पता लगाया?"

"जी हाँ। आज तो थक गया हूँ। कल अवश्य तलाश करूँगा।"

"नहीं आज ही तलाश कर लो तो अच्छा हो। फ्रेम ही तलाश करना ही है। सेठ तुम्हें बहुत परेशान करेंगे।"

"सेठानी जी क्षमा कीजियेगा। मैंने बेचा नहीं, पर गिरवी रख दिया है। ऐसी विकट परिस्थिति में पड़ गया था कि सिवा उसके जीने का दूसरा रास्ता ही नहीं था।

"उसकी कोई बात नहीं। पर जैसे हो अभी ही उस पठान के पास जाकर फ्रेम ले आओ। कितने में गिरवी रक्खा है रुपया मैं देती हूँ।"

"रुपये की आवश्यकता नहीं है।" विभाकर को बड़ा ताज्जुब हुआ कि पठान की बात गौरी को कैसे मालूम हुई।

"यह कल के पहले ही हो जाना चाहिये।" गौरी ने इस प्रकार हीनता से कहा जैसे उसी को गर्ज हो।

"अच्छी बात है अपने भरसक जल्दी करता हूँ।"

"अरे तुम समझते नहीं फ्रेम नहीं दे सकने पर तुम्हारे ऊपर दावा होगा तो तुम क्या करोगे ?"

"आप एकाध दिन के लिये धैर्य रख लें तो बड़ा अच्छा होगा।"

गौरी हंस पड़ी।

"अरे भाई मुझे कहना होता तो मैं कहने ही क्यों आती। अच्छा लो यह तुम्हे शायद जरूरत पड़ेगी।"

विभाकर के हाथ में एक नोटों का पुलिन्दा देकर गौरी ने मोटर हाँक ली। विभाकर कुछ कह भी नहीं सका।

"कहाँ जाना है ?" सोहिणी ने पूछा।

"कुछ आवश्यक काम है बिना गये नहीं बनेगा।"

"क्या अभी थकावट कम है क्या। कहीं नहीं जाना है बैठो।"

विभाकर क्या उत्तर दे समझ नहीं सका। पर उसे बैठना पड़ा। कुछ देर के बाद सोहिणी और वीणा जाने के लिये उठी और तब उसे स्वतंत्रता मिली।

वह पठान के घर की ओर चला। पठान भी कहीं बाहर जाने की तैयारी में था। तमाम जिन्दगी बम्बई और बम्बई वालो के बीच बिताने वाला पठान रात की राह देख रहा था। विभाकर को देखकर बोला।

"ओहो इतने दिन बाद तुम्हें इधर आने की छुट्टी मिली है। कैसे चले। है कोई चीज !"

"नहीं मैं अपनी चीज छुड़ाने आया हूँ। मेरा फ्रेम वापस कर दो।"

"अब तो फ्रेम नहीं मिलेगा! कितने दिन हो गये पैसा न पाने से चीज हमारी हो गई।"

"इससे कुछ फायदा नहीं होगा भाई। मेरा फ्रेम वापस कर दो।"

"हमारा तुम्हारा फायदा अलग-अलग है। फ्रेम तो नहीं मिलेगा दूसरी कोई चीज हो तो लाओ रख लूँ।"

"देखो खां साहेब इसमें मेरी इज्जत का सवाल है। आप जितना ब्याज कहें मैं दे दूँ पर फ्रेम मुझे वापस कर दें।"

"ऊहँ फ्रेम नहीं मिलेगा चाहे जो हो।"

इस उद्दण्डता का बदला लेने की इच्छा विभाकर को हुई। पर वह शान्त रहा और दीनता से बोला—

"देखो भाई मेरे ऊपर इसके लिये मुकदमा चलनेवाला है। उसके पहले ही फ्रेम तुम मुझे दे दोगे तो मैं जिन्दगी भर तुम्हारा गुलाम बना रहूँगा।"

"तुम बड़े भोले हो। इससे कभी भी फौजदारी नहीं होगी। अगर होगी तो जाओ मैं तुम्हारे बदले जेल जाने को तैयार रहूँगा।"

"पर भाई पुलिस तो मुझे पकड़ेगी न? आप जितना कहिये मैं उतना रुपया आपको दे दूँ।"

"वह तुम नहीं दे सकते। इस फ्रेम से तो मैं सारी जिन्दगी बैठा खा सकता हूँ।"

"तुम्हारी जिन्दगी भर खाने का प्रबन्ध मैं कर सकता हूँ। मेरे पास उसका साधन है।"

"तुम बेवकूफ हो। तुम्हारे ऊपर फौजदारी वगैरह कुछ नहीं होगा, और मेरा भी तुम कुछ नहीं कर सकते। देखो फ्रेम यह है उसका ही इस्तेमाल करने मैं इस समय जा रहा हूँ।"

"पठान इससे कोई फायदा नहीं होगा।" अपने कुटुम्ब का बदन

विभाकर में आने लगा। संसार के थपेड़ों से नम्र बना हृदय जोश में आने लगा।

"तुम क्या करोगे। यहाँ तो किसी का खून भी हो जाय पता नहीं लगे समझे!"

"मैं फिर तुमसे कहता हूँ कि फ्रेम दे दो!" विभाकर ने तेजी से कहा।

पठान भी उसकी मुद्रा देखकर चकित हो गया। मार-काट का अनुभवी पठान दंग हो गया। वह समझ गया कि आधुनिक युवक मार काट से डरने वाले नहीं होते। इतने में विभाकर ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोला।

"पठान अब तुमने फ्रेम देना अस्वीकार किया तो मैं देखता हूँ।"

बिना बल की धमकी हास्यस्पद होती है। पर पठान को ज्ञात हो गया कि धमकी व्यर्थ ही नहीं है। शायद एक ही बम में वह जमीन पर जा रहेगा। इतने में एक गाड़ी पर वीणा जाती हुई दिखाई पड़ी। विभाकर ने एकदम से पठान का हाथ छोड़ दिया। गाड़ी भी थोड़ी दूर जाकर रुक गई।

"देखो फ्रेम की करामात।" पठान ने कहा। खटका दबाते ही फ्रेम के पीछे से एक चित्र निकल आया। यह मेरे पहचान का फ्रेम है और इस मित्र को मैं पहचानता हूँ। यह हमारे पुराने साथी हैं। जिस बाई को उन्होंने दिया था उसी ने तुम्हें दिया है। वह बाई उन्हें छोड़ कर दूसरे से ब्याह कर चली गई। मजा यह है कि अभी तक यह चित्र छिपा था। अब प्रकट होते ही बाई के सर आफत आ जायेगी। इससे उस बाई के पास से गहरी रकम निकलने का अच्छा साधन है और मेरे मालिक की वैर तृप्ति भी होगी।

"ऐसा ही चित्र मेरे पास भी है। यह मेरे भाई का चित्र है।" विभाकर ने चकित होकर कहा।

बम्बई की जगमगाहट आरम्भ हो गई थी। पठान ने विभाकर की ओर देखा। चेहरा मिलता था! उसे कुछ सन्देह हुआ।

"आपके भाई कहाँ हैं।"

"वह तो बहुत दिन हुए डूब गये।"

"आपकी बहन है।"

"हाँ मेरे चाचा की लड़की है।"

"आपकी सगी बहन नहीं है?"

"थी पर अब नहीं है। पर यह सब पूछकर तुम क्या करोगे?"

"एक बात और पूछता हूँ। वह कहां गई?"

"परमात्मा जाने कहाँ गई। उसे मेरे भाई के दुश्मन उड़ा ले गये। मैं तब छोटा था। बहन गुम हो गई इतना ही मैं जानता था पर मेरी माँ ने मुझे बताया कि दुश्मन उड़ा ले गये।"

"आप फ्रेम ले जाइये!" पठान ने चुपचाप फ्रेम दे दिया।

"कितना रुपया दूं।"

"कुछ भी नहीं आपके भाई ने मुझे बहुत दिया। पर फ्रेम लौटाने के पहले सेठ से बराबर बदला लेना नहीं तो मुझे अपने साथ रखना।"

"पर तुम्हें कीमत और ब्याज तो लेना पड़ेगा।" कहते हुये विभाकर ने पठान के हाथ में कुछ नोट रख दिये। वीणा गाड़ी लौटाकर आ रही थी। विभाकर चलने लगा।

"मैं शायद आपके बहन का पता लगा दूँगा।" पठान बोला, विभाकर वीणा के पास गया।

"तुम यहाँ कहाँ से आ गई।"

"तुम्हारे पीछे पीछे आई हूँ।"

"वाह! सोहिणी बहन कहाँ है?

"मैंने अकेले ही आने की इच्छा प्रकट की तो वह हँसकर लौट गई।"

"तुमने अकेले आने की इच्छा क्यों की?"

"मैं जानना चाहती थी कि तुम कहाँ जा रहे हो। चलो गाड़ी में बैठो।"

विभाकर गाड़ी में बैठ कर कुछ देर तक शान्त रहा। उसका चेहरा उदास था।

"क्या हुआ?" वीणा ने पूछा।

"वीणा! तुम मेरे लिए इतना कर रही हो यह तुम्हारी भूल है?"

"होगी!" वीणा ने हँसकर उत्तर दिया "पर तुम उदास क्यों हो?"

"मेरी एक बहन गुम हो गई है उसी का विचार कर रहा हूँ।"

"यह चित्र उन्हीं का है।"

"यह तो दूसरी कष्टप्रद बात है। यह मेरे भाई की तस्वीर है।"

"तुम्हारे भाई-बहन अब नहीं है?"

विभाकर ने अपना हाल कहा। वीणा सुनकर बड़ी दुखित हुई। वह उसकी शिष्या बनी थी। माता-पिता की आज्ञा से वह उसके पास चित्र-कला सीख रही थी। विभाकर सोहिणी का परिचित था इससे कोई अड़चन नहीं था।

घर आकर वीणा ने विभाकर का अद्भुत इतिहास सोहिणीको सुनाया।

तीन-चार महीने बीत गये थे। मुरलीधर सेठ ने दो-एक बार कनक और बृजमोहन को रुपये के विषय में कहा भी था। वे लोग रुपया देने के प्रबन्ध में लगे थे। लगभग सब प्रबन्ध हो भी गया था, थोड़ा-बहुत करने को था। उन्होंने कहा कि चाहे जैसे होगा समय के भीतर ही रुपया भर दिया जायगा। वादे करनेवाले यों ही वादा करते रहते हैं।

पर समय पूरा होने के दो-तीन दिन पहले ही दोनों बम्बई से हवा हो गये। मुरलीधर यों तो बहुत भले आदमी थे पर वादाखिलाफी पर वह बहुत चिढ़ जाते थे तथा अपनी बात न पूरी हो तो सारी दुनियाँ उलटने को तैयार हो जाते थे।

शिरीष जामिन हुआ था पर उसका भी पता नहीं था। धर्मपाल और मुरलीधर के बीच बड़ा अच्छा व्यवहार था। युवावस्था में धर्मपाल से उनकी बड़ी दोस्ती थी, और एकाध बार समय पड़ने पर धर्मपाल ने उसकी सहायता भी की थी, पर पैसे के व्यवहार में मित्रता का स्थान न होना चाहिये इस प्रकार के कितने ही सिद्धान्तों के कारण दोनों का व्यवहार कुछ कम हो गया था। फिर शादी के समय उन्हें सन्देह हुआ था कि धर्मपाल ने विरोध किया था। इन्हीं कारणों से दोनों में अब केवल परिचय का ही व्यवहार रह गया था। मित्र के प्रति कड़ाई नहीं होती पर परिचित के साथ हो तो कोई हानि नहीं। उन्होंने शिरीष की जमानत के विषय में धर्मपाल को लिखा था और समय पूरा होनेवाला है यह भी बताया। पर

किसी को भी परवाह न करनेवाले मुनीम ने साफ लिख दिया कि धर्मपाल यात्रा करने गये हैं और शिरीष हिन्दुस्तान के बाहर गया है और मुरलीधर ऐसे अनुभवी मनुष्य को अपने और शिरीष के बीच के व्यवहार के लिये शिरीष के सिवा और किसी से न कहना चाहिये।

मुरलीधर अब शिरीष को तलाश करने लगे। पर उसका पता नहीं लगा। इतना ही नहीं वरन् उसके विषय में प्रचलित गप्पें भी नहीं सुनने में आई। वह निराश नहीं हुये। वह निराशा जानते ही नहीं थे। पर उनकी उग्र बनी हुई वृत्ति बेचारे नौकर पर अपना क्रोध उतारने लगी। गौरी भी इस क्रोध से न बच सकी। फ्रेम की बात चला कर वह उन्हें नित्य ताना देती थी कि इस बीच में फ्रेम वापस आ गया और उनकी पुलिस और मुकद्दमे की सारी कारवाई खतम हो गई। रोज-रोज के इस ताने से चिढ़कर आज वह कुछ विशेष रुष्ट थे। रुपये की मियाद पूरी होने की पहली रात को उन्हें नींद नहीं आई। प्रातःकाल जरा सी झपकी आई थी कि उनके उठने के पहले ही कोई मिलने आकर बैठ गया।

"कौन है?" मुरलीधर ने जमादार से इस प्रकार पूछा मानो बड़े आदमी बिना चिढ़े किसी से मिलते ही नहीं।

"एक डाक्टर है और उसके साथ कोई स्त्री है।"

"नौकरी के लिये आया होगा या सिफारिश करना होगा कह दो बैठे।"

बड़े आदमी गरीब आदमियों से मिलकर मानों बड़ा भारी अहसान करते हैं। बहुत देर बाद सेठजी दीवानखाने में आकर अखबार पढ़ने लगे और आगन्तुकों को बुलवाया।

बड़े काम काजी लोग अखबार पढ़ते-पढ़ते ही और भी बहुत से काम करते हैं। उन्होंने बिना दृष्टि उठाये ही पूछा।

"कहाँ से आ रहे हो?"

"सेठजी जरा सामने देखें तो मैं सब बातें कहूँ?" आगन्तुक ने कहा। मुरलीधर ने चौंक कर नजर उठाई। इस प्रकार की बतमीज बात उन्होंने

कभी नहीं सुनी थी। उनके सामने एक कदावर जवान और एक अत्यन्त रूपवती स्त्री बैठी थी। उनके चेहरे से ऐसा नहीं प्रकट होता था कि वे किसी अपने मतलब से आये हैं। उन्हें ऐसा जान पड़ा जैसे स्त्री को कहीं सभा वगैरह में देखा हो। जरा नरम होकर उन्होंने पूछा।

"कहिये।"

"काम दो मिनट का है। आप भरपाई लिख दें और अपना एक लाख रुपया गिन लें।"

"कैसा रुपया?"

"क्यों आज रुपया देने का वादा शिरीष ने नहीं किया था। आप भूल गये क्या?"

"तुम कौन हो?"

"मैं धर्मपाल के दवाखाने का डाक्टर हूँ।"

"हाँ हाँ तुम तो विलायत से पास करके आये हो न? तुम्हारी बड़ी तारीफ सुनी है। तुम्हें धर्मपाल ने भेजा है न। शिरीष तो कहीं भाग गया है।"

"शिरीष भागेगा क्यों यह हमारी समझ में नहीं आता। उसका पत्र मेरे पास आया है। और फिर वह भाग गया या नहीं आप का रुपया तो नहीं भाग गया आप के लिये यह बहुत है।"

"तुम्हारा नाम?"

"सुकुमार!"

"डाक्टर सुकुमार! तुम्हें अपने काम में सफलता पाने के लिये अपनी रीति रिवाज सुधारनी होगी। तुम बहुत बड़े बदतमीज हो।"

"सेठ साहब माफ कीजियेगा। हम डाक्टरों को नर्मी आती नहीं और उसकी हमें विशेष जरूरत भी नहीं पड़ती।"

मुरलीधर ने अपने मुनीम को बुलाया और भरपाई लिखकर रुपया ले लिया। इतने में अशोक दीवानखाने में घुस गया।

"अरे तुम यहाँ कैसे।" डाक्टर ने पूछा।

अपने परिचित डाक्टर को देखकर अशोक सुकुमार के पास दौड़ गया और बोला कि उसकी मां भी आई है।

मुरलीधर को बड़ा ताज्जुब हुआ। वह कुन्दनलाल को जानते थे। यह धर्मपाल के पुराने दोस्त थे इससे गौरी से मिलने के लिये दो-तीन चार मोहिणी वहां गई थी पर आज प्रातःकाल किस लिये आई है।

"अच्छा मैं आमा भेंट करता हूँ।" डाक्टर ने कहा। अशोक माता के पास चला गया। लेन देन का काम समाप्त हो गया था। रुपया पा जाने पर पावनेदार नर्म हो जाता है और मीठी बातें करने लगता है।

मुरलीधर ने सबका समाचार पूछा। इधर-उधर की बातें की और सुकुमार के साथ की स्त्री का परिचय पूछा।

"आप स्त्रियों के उन्नति में लगी हैं। आपका नाम कान्ता गौरी है।" सुकुमार ने स्त्री का परिचय दिया।

"हां हां अब पहचान गया। आप का कोई आश्रम भी तो है !"

"जी हां आपने भी तो सहायता दी है गौरी कुँवर से भी मैं मिल चुकी हूँ।"

"तो तुम डाक्टर के साथ यहां कैसे आईं ?"

"मुझे भी शिरीष ने कहा था कि आज आपको लाख रुपया देना है वह दे देना।"

"तो तुम कैसे देती !"

"शिरीष भाई ने बहुत सी रकम बिना ब्याज के मेरे यहां रख दी है। उसका ब्याज मैं वसूल करती हूँ।"

मुरलीधर के समझ में कुछ नहीं आया। उसकी स्त्री कान्ता गौरी को पहचानती थी। इसस दोनों की भेंट कराना आवश्यक था फिर सोहिणी आई थी और सुकुमार को उससे मिलना था। सबके लिये सेठ जी भीतर गये। वहां विभाकर को देखकर उनकी आंखें लाल हो गईं। सोहिणी को

कान्ता का आना अच्छा नहीं लगा। उस दिन कान्ता उसके घर गई थी फिर भी वह मिली नहीं थी।

'क्यों सोहिणी तुम यहां कैसे ?'' सेठ ने पूछा।

'अरे यह तो तुम्हारी देनदार होकर आज आई है।'' गौरी ने कहा।

"अच्छा।"

"शिरीष का कुछ देना है उसी को पटाने आई है।"

"तो फिर यह डाक्टर जो रुपया दे गया है वह कैसा है और यह कान्ता गौरी भी वहीं रुपया भरने आई है यह क्या बात है।" मुरलीधर ने चकित होकर पूछा। सोहिणी चकित होकर कान्ताको देखने लगी। सुकुमार सँभल गया। उसने तुरन्त बात का रुख बदला।

"शिरीष भी कैदखाने में बैठा-बैठा क्या करता है देखो न उसे लाख रुपया मिलता ही जाता है। यदि कैद में जाने का यह परिणाम हो तो मैं भी जाने को तैयार हूँ।"

"क्या यह सच है ?" गौरी ने पूछा।

"लोग तो कहते हैं। पर मैं कैदकी बाबत नहीं जानता। यह सोहिणी भाभी भी नहीं जानती और शिरीष तो एकदम अनजान है।"

"पर इस प्रकारकी बातें तो बहुत फैली हैं। सच क्या है नहीं जानती।"

"आप नहीं जानतीं। हमलोगों से अधिक तुम लोगों की बातें दुनियां जानती है।"

गौरी मुस्कराई। कितने ही आदमी अपना इतिहास स्वयं अपने से छिपाते हैं तो संसार से तो बात ही क्या। बात आगे बढ़ी। अब मुरलीधर को और रुपया तो लेना नहीं था, पर यह विभाकर चित्रकार किस प्रकार सोहिणी के कुटुम्ब में प्रवेश कर गया यह उनकी समझ में नहीं आया।

"इस चित्रकार को तुम कहाँ से पा गई।" जरा कटाक्ष से उन्होंने सोहिणी से पूछा।

"क्यों-क्यों यह तो बड़े प्रसिद्ध चित्रकार हैं। इनके चित्रोंकी प्रदर्शनी

हुई थी और उसमें सभी चित्र बिक गये। बम्बई का शिष्ट समाज इनकी कला पर मुग्ध है।" सोहिणी ने उत्तर दिया।

"अच्छा ऐसी बात है!" मुरलीधर बोले। प्रदर्शनी उन्होंने भी देखी थी। शायद ही कोई ऐसा सभ्य आदमी रहा हो जिसने वह प्रदर्शनी न देखी हो।

"आप इन्हें पहचानते नहीं?" डाक्टर ने पूछा।

"थोड़ा परिचय है। पर इनके विषय में मेरा अनुभव जरा कडुआ है। शायद मैं इनके पिता को भी पहचानता हूँ।" मुरलीधर बोले।

गौरी को यह बात नहीं रुची। उसने बात का रुख बदलना चाहा। इन बातों के बीच विभाकर और कान्ता बिल्कुल चुपचाप रहे। थोड़ी देर बाद मुरलीधर बाहर चले।

कान्ता ने विभाकर को पास बुला कर पूछा।

"तुम्हारी कोई बहन खो गई है!" चकित होकर विभाकर ने सामने देखा।"

"हाँ कई वर्ष हो गये।"

"यदि वह मिले तो मेरे इतनी बड़ी होगी?"

विभाकर विकल हो गया। क्या उत्तर दे वह समझ नहीं सका। सोहिणी ने उसे अपने पास बुलाया। उसे सोहिणी के साथ ही गाड़ी में जाना था। वह व्याकुल हो गया। कान्ता और डाक्टर दूसरी गाड़ी में बैठे। कान्ता को साथ न रखने की इच्छा से सोहिणी ने सुकुमार को भी नहीं बुलाया पर इतना कह दिया कि बिना उससे भेंट किये वह बम्बई से लौटे नहीं।

गाड़ी में विभाकर का चेहरा देखकर सोहिणी ने पूछा।

"तुम्हें ज्वर तो नहीं हो गया है चेहरा लाल क्यों है?"

"कुछ नहीं यों ही।" विभाकर इतना ही कहकर चुप रहा। दूर से

सोहिणी ने अपने मुनीम को गाड़ी में आते देखा पर पहले इसके कि वह उसे बुलावे गाड़ी अदृश्य हो गई। मुनीम मुरलीधर के मकान की ओर जा रहा था।

मुरलीधर गौरी के पास बैठे हुये अपना भूतकाल बयान कर रहे थे। पैसा बड़ा है या पुरुष इस प्रकार की कोई बात उन्होंने अपनी युवावस्था में किसी मित्र से की थी। यह प्रकरण क्यों उठा था और उसमें पैसे का पक्ष उन्होंने क्यों लिया था यह आजतक उनकी समझ में नहीं आया। पर शर्त या आग्रह का भी कोई कारण होता है ? पैसा तथा पुरुष दोनों की हास्य परीक्षा वैमनस्य में बदल गई तथा अन्त में जान देने लेने का विषय बन गई। एक गाड़ी में बैठे तो दूसरा चौकड़ी पर बैठे। एक रेशमी कपड़ा पहने तो दूसरा कमख्वाब पहने। अन्त में गरीब पुरुष शारीरिक सौन्दर्य में सुन्दर लगा। उसका बड़प्पन बढ़ता ही जाता था। उसके चेहरे पर स्वास्थ का सौन्दर्य चमकता था। सौन्दर्य और स्वास्थ में अनिवार्य सम्बन्ध है इस बात को मुरलीधर अत्यन्त खिन्नता से देखते थे। अमीरी अधिकांश में शरीर को दुर्बल बना देता है। यौवन की आँखें लाल रक्त चाहती हैं, मसले युद्ध चाहती हैं तथा उद्धृत और कठोर स्वभाव के बिना उसको तृप्ति नहीं होती। गरीबी और समान स्थिति इसकी द्योतक है। मुरलीधर का गरीब मित्र अत्यन्त स्वस्थ था। उसके शरीर में यौवन प्रस्फुटित था। मुरलीधर अच्छे से अच्छे साबुन तेल का व्यवहार करते अनेकों उपचार करते पर उनका शरीर कृषित ही रहा। रक्त का नाम नहीं था। चेहरा भरावदार नहीं होता था। इस प्रतिद्वन्दिता में उनकी हार ही नहीं हुई वरन् जिस कन्या के साथ उनका लग्न होनेवाला था उसे भी उनका मित्र ही विजय कर ले गया। फिर अनेक वर्ष बीत गये। दूसरे लग्न का समय आया तब उस प्रतिद्वन्दी का भाई सामने आया और दूसरी कन्या को विजय कर उनकी इच्छा धूल में मिला गया।

वैर तो बढ़ता ही जाता है। साधारण सी बातों में इतना बतंगड़ हो

जाना क्रूरता है। उन्होंने जिस प्रकार भी हुआ अपने प्रतिद्वन्दी को नीचा दिखाने के लिये पैसे के बल पर अनेक प्रयोग किये। उसकी नौकरी पर भी लात लगाई और उसे दुनियाँ में नीच बनाने के लिये अथक परिश्रम किया ! सभ्य कहला कर भी शैतानी करने का रास्ता कैसे पकड़ा जाता है इसका उन्होंने अच्छा अभ्यास कर लिया। वह स्वभावतः क्रूर नहीं थे पर संयोग ने कितने देवताओं को असुर बना दिया है। ऋषियों को भी राक्षस बना दिया है। कितनों के ह[illegible] भाग्य में अनेक लग्न लिखा रहता है। बढ़ती अवस्था में लग्न की और भी इच्छा हो जाती है। इस प्रकार का तीसरा प्रसंग आने पर उस प्रतिद्वन्दी ने अपने पुत्र को आगे किया। कोर्ट में दुश्मन को हराने के लिये किसी नौकर ने सहायता की और प्रतिद्वन्दी की एक छोटी कन्या गुम करा दी।

नौकर की इस कार्यगुजारी पर पहले तो मुरलीधर स्तब्ध हो गये। यदि फांसी की सजा देने वाले न्यायाधीश की आँखों के सामने फांसी का फन्दा लटकता नजर आवे तो वह अवश्य अपना विचार बदल देगा। पर तीर छूट चुका था लक्ष्य भी दिला चुका था। अब दूसरा उपाय ही क्या था। प्रतिद्वन्दी परास्त हो गया और पैसे के द्वारा उनका पाप भी छिपा रहा ! पैसा पात्र की विजय हुई, प्रतिद्वन्दी पराजित हुआ। वह अशक्त हो गया। नौकरी से अलग हो गया। आँखें खो गई और भतीजी को खोजने के निष्फल प्रयत्न में उसके भाई ने अपना प्राण खोया। उसके पुत्र ने भी बैर लेने के लिये पापमय जीवन धारण किया और अन्त में नदी में डूब गया। सारा कुटुम्ब अन्धकार में विलीन हो गया उसका पता लगाना भी कठिन हो गया।

बैर का बदला हो गया। पर मनोमालिन्य कुछ दूर हुआ और मुरलीधर को भी सन्तोष हुआ तथा अन्त में जिस कन्या को लेकर नया बैर उत्पन्न हुआ था वह भी उन्हें प्राप्त हो गई। यही कन्या गोरी थी। वह मुरलीधर की विजय पताका थी।

तो भी मुरलीधर की प्रतिष्ठा में कमी नहीं आई। पहले ही जैसे उनका सम्मान होता रहा। धन में वृद्धि होती गई। सारा इतिहास उनके सामने पड़ा था। परन्तु यह बात उन्हें असह्य हो गई कि उनके प्रतिद्वंदी का पुत्र उनके अनजाने में आगे बढ़ने लगा और इतना ही नहीं वरन् उनका स्वयं और उनके परिचितों का आश्रित भी हो गया। इस अवस्था में भी उसे रहने देना चाहिये या पुनः नया जंजाल खड़ाकर उसके नाश का बीजा रोपण करना चाहिये ?

"इस अवस्था में भी ?" यह विचार आते ही वह चौंक पड़े। क्या उनकी अवस्था इतनी अधिक हो गई ? उन्होंने गौरी की ओर देखा वह रो रही थी। गौरी के लिये हास्य और रुदन दोनों ही अनजान वस्तु थे। मुरलीधर ने उसे कभी रोते या हँसते नहीं देखा था। उन्होंने कहा।

"क्यों रोती क्यों हो ?"

"यों ही कोई बात नहीं है !"

"वाह ऐसी क्या बात है सर तो नहीं दर्द करता है !" गौरी के सुख के लिये वह सदैव तत्पर रहते थे।

"कुछ है नहीं यों ही जरा तबीयत घबरा गई थी।" मुरलीधर को उठते देखकर गौरी ने कहा और स्वयं खड़ी हो गई। उसके खड़े होने ही मुरलीधर को सदैव खटकनेवाला सत्य पुनः दिखाई देने लगा। गौरी उनसे तीन अंगुली बड़ी थी। वह इस बात पर एक बार पुनः विचार करना चाहते थे कि नौकर ने किसी के आने की सूचना दी।

"बैठाओ दीवानखाने में आज मिलनेवालों का तांता लगा रहेगा।"

कोई काम नहीं है पर आनेवालों को दो चार मिनट बैठा रखना बड़े आदमियों का स्वभाव हो जाता है। थोड़ी देर के बाद वे बाहर आये। दीवानखाने में धर्मपाल के मुनीम बैठे थे। उन्हें देखते ही सेठ समझ गये कि शिरीष की जमानत के सम्बन्ध की ही बात करने वे आये हैं। इतने

लोग शिरीष की परवाह करते हैं यह ध्यान आते ही उन्हें विचार हो आया कि यदि उनके भी एक पुत्र होता तो कैसा था ?

बिना किसी विशेष शिष्टाचार के मुनीम ने उन्हें नमस्कार किया ! वह धर्मपाल के सिवा और किसी के लिये विशेष शिष्टाचार जानता ही नहीं था।

"ओहो आप कैसे चले ?"

"आप बुलावें तो फिर बिना आये कैसे रहा जा सकता है ?"

"मैंने तुम्हें कब बुलाया भाई ?"

"अरे शिरीष भाई का वादा आज पूरा होगा या नहीं ?"

"पर उसकी जवाबदेही तुम्हारे सर पर तो नहीं है ? तुमने तो अपने पत्र में लिख न दिया। इससे मैंने भी इस बात को स्थगित कर दिया था मेरी भूल थी कि धर्मपाल के पुत्र को मैंने साझीदार मान लिया।"

"आपकी भूल नहीं थी यही बताने के लिये ही तो साहब ने मुझे यहाँ भेजा है। और नहीं तो मैंने उनसे कह दिया था कि मुरलीधर सेठ को मैंने ऐसा उत्तर दे दिया है। पर हमारे मालिक तो ईश्वरी जीव हैं उन्होंने मुझे लिखा कि मैं खुद आकर आपका पैसा भर दूँ।

"भले आदमियों का यही काम है।"

"अगर ऐसा होता तो आपको पहले साहब से पूछकर तब शिरीष की जमानत लेनी थी। यह तो ठीक नहीं है लाख रुपये के लिये कौन झगड़ा करे और धर्मपाल के लिये लाख रुपये की बिसात ही क्या है ? वह तो एक दाव में हाथ फेर कर लाख रुपया निकाल सकते हैं।"

"जानता हूँ कि तुम्हारे सेठ के पास बहुत रुपया है। यही दिखाने के लिये ही तुम लोग बराबर चले आ रहे हो। एक आया, दूसरा आया अब तीसरे तुम भी आये। किसी का धन देख कर मैं पागल हो जानेवाला नहीं हूँ समझे ?"

"कौन कहता है कि आप गरीब हैं। अपने मित्र के लिये लाख

रुपये की परवाह न करनेवाला कभी गरीब हो सकता है ! अच्छा जाने दीजिये। दोनों दिवालियों मे तो रुपया दिया नहीं होगा। न दिया हो तो आप अपना रुपया ले लें।"

मुनीम को कड़ी बात कहना सीखने की आवश्यकता नहीं थी। मुरलीधर और भी क्रोधित हुए तथा जोर से बोलने लगे।

"तुम्हें अपने पैसे की नुमायश करनी है क्या ?"

"हमारे पैसे की नुमायश तो जमाने में हो रही है कुछ नई नहीं करनी है। आँखें बन्द करनेवाले को भी हमारे पैसे की खबर हो ही जाती है।"

"तो फिर क्या समझ कर तुम लोग घड़ी-घड़ी रुपया देने आते हो ?"

अब मुनीम ने समझा कि कोई रुपया दे गया है। बोला—

"सेठजी आप गुस्से न हो हम तो केवल मालिक का हुक्म जानते हैं। पर क्या आपको कोई रुपया दे गया है ?"

"देखो न ?" कहकर मुरलीधर ने डाक्टर की भरपाई दिखाई।

मुनीम आश्चर्य चकित हो गया। उसकी धारणा थी कि उनके सिवा और कोई धर्मपाल के कुटुम्ब का वफादर हो ही नहीं सकता। फिर आधुनिक समय में कोई मित्र किसी की पैसे से सहायता करेगा यह तो असम्भव सा ही है।

"डाक्टर दे गया है ?"

"हाँ। और उसके बाद और कई आदमी आये। शिरीष की बहू आई वह विभाकर आया और कान्ता यह सब शिरीष का पैसा भरने आये थे। एक तुम न थे सो तुम भी आ गये।"

मुनीम के आश्चर्य का पारावार नहीं था। जिन्हें वह तिरस्कार से देखता था वह सभी शिरीष को सहायता के लिये उससे पहले ही तैयार हो गये थे। वह स्वयं भी अपना पैसा लेकर आये थे। धर्मपाल ने इन्हें कुछ भी नहीं लिखा था मालिक के पुत्र की सहायता करना अपना धर्म समझ कर

वह आये थे। उन्होंने मुरलीधर को शान्त किया और दुनिया भले मनुष्यों से शेष नहीं है यह विचार करते बाहर निकले।

सन्ध्या को मुरलीधर घूमने चले। गौरी साथ में नहीं थी। समुद्र के किनारे एकान्त में मोटर से उतरकर वह एक स्थान पर अकेले बैठ गये। उनका चित्त ठिकाने नहीं था। थोड़ी देर बाद एक पठान आकर सामने खड़ा हो गया। पठान— यह एकान्त में मिलने योग्य व्यक्ति नहीं था। मोटर भी दूर थी और आस-पास में भी कोई नहीं था। पठान ने झुककर सलाम किया।

"क्यों क्या है?" मुरलीधर ने पूछा।

"मेरा काम नहीं है आप ही का काम है।" पठान ने उत्तर दिया।

"तो उससे तुम्हारी क्या आवश्यकता पड़ गई है?"

"मैं आपको चेतावनी देने आया हूँ।"

"मुझे चेतावनी की आवश्यकता नहीं है। मैं किसी से नही डरता।"

"यह ठीक है पर आप पर भयंकर मुकदमा चलना चाहता है।"

"किस बात के लिये?"

"पन्द्रह वर्ष हुए एक छोकरी को गायब किया था?"

"मैं कुछ नहीं जानता। क्या हुआ उसका?"

"वह छोकरी मिल गई है।"

"अच्छा है मिल गई। पर मुझे क्या। इस बात से मेरा सम्बन्ध है इसका प्रमाण क्या है?"

"प्रमाण है, मैं खुद प्रमाण हूँ।"

मुरलीधर को कुछ-कुछ याद आया। उनके प्रतिद्वन्दी के पुत्र का एक पठान नौकर फूट गया था और इसी से लड़की को चुराने में सहायता हुई थी। उन्होंने पीछे की बातों की कुछ योजना स्वयं नहीं की थी। कदाचित् यह वही पठान तो नहीं है? आज मुरलीधर पर कठिन समय था। उसपर

यह चकित करनेवाला समाचार मिला। उनके कुछ बोलने के पहले ही पठान बोला—

"आप इस बाबत खूब सोच लें, पैमा और इज्जत दोनों जाना चाहती है।" इतना कहकर पठान तेजी से चला गया।

अन्धकार बढ़ रहा था। मुरलीधर एकदम खड़े हो गये और झट मोटर में बैठकर घर चले गये। पहुँचते ही समाचार मिला कि शिरीष मिलने आया है। पर उन्होंने कहला दिया कि इस समय तबीयत ठीक नहीं है फिर मिलेगा। उसका पैसा मुझे मिल गया है।

—३२—

उस दिन शाम को विभाकर ने सोहिणी को विशेष प्रकार से निमंत्रण देकर अपने यहाँ बुलाया। सोहिणी को प्रतीक मानने के बाद से विभाकर की कला में पूर्णता आई थी तथा इस पूर्णता ने जनता का मन आकर्षित कर लिया था। किसी बहाने अब उसके बाद बराबर पैसा आता जाता था विभाकर ने प्रदर्शन किया और इससे बाद में उसे इतना पैसा मिल गया कि वह शिरीष की जमानत अदा करने योग्य हो गया। बात के बीच सोहिणी ने भी जान लिया कि प्रतीक के योग्य उसकी खासी इच्छा है और इसलिये पुरुष के सम्पूर्ण आश्रय में रहती हुई भी उसे पुरुष को अपना सर्वस्व समर्पण कर सुख पाने की लालसा उत्पन्न हुई। सम्पूर्ण सुख में आत्म भोग का स्थान नहीं है। आत्म भोग के लिये अवकाश पानेवाली

अधीर वृत्ति कुछ अजीब स्वरूप धारण कर लेती है। यह विचित्रता न शिरीष ही समझ सका और न स्वयं सोहिणी ही समझ सकी। शिरीष के कुछ अपने स्वतंत्र विचार थे। यह विचार स्वप्न किसी से कहा नहीं जाता। और कहा भी जाय तो वह स्वप्न सृष्टि किसी की समझ में ही नहीं आयेगी। इसी कारण से स्वप्न रचनेवाला बिना किसी के सामने अपना हृदय खोले ही अपनी सृष्टि प्रत्यक्ष करना चाहता है। और किसी की समझ में न आने के कारण नासमझी का जाल बिनता है। इस जाल को तोड़ने के लिये एक ही वाक्य या अभिमान की आवश्यकता होती है। अभिमानी स्वभाव उस वाक्य का उच्चारण या उस अभिमान का प्रदर्शन कभी नही करता।

विभाकर को अभी अपनी भविष्य की योजनायें तैयार करनी थी। सोहिणी ने उसकी कला को केवल आश्रय ही नहीं दिया था वरन् उसमें एक नवीन स्फूर्ति उत्पन्न कर दी थी। यह ठीक है कि सोहिणी सदैव उसका प्रतीक नहीं बनी रह सकती पर तो भी उसकी छाप तो हमेशा रहेगी ही। और यदि यह छाप कभी अस्पष्ट भी हो तो उसे स्पष्ट करने के लिये वीणा मौजूद थी। वीणा को भी चित्रकला का शौक था। वह विभाकर से शिक्षा लेती थी और सोहिणी का प्रतीक भी प्रत्यक्ष रखती थी। गरीब चित्रकार कभी-कभी चौंक उठता था। अस्पर्शी सोहिणी की अपेक्षा कोमल वीणा उसमें एक अजीब उष्णता पैदा कर देती थी। दुःख मनुष्य को संयम की शिक्षा देता है। विभाकर इस उष्णता को कलाकार की भावना की भाँति स्वयं अपने से भी छिपाने की चेष्टा करता था।

सन्ध्या को सोहिणी विभाकर के यहाँ आई। घर में पैठते ही उसने जो दृश्य देखा वह उस स्वप्न सा प्रतीत हुआ। विभाकर की माता की खाट पर कान्ता बैठी थी। उसके नेत्र अश्रुपूर्ण थे। विभाकर की माता उसे अपने अशक्त हाथों से पकड़े हुए थी। अन्धे पिता भी बैठे रो रहे थे। वृद्ध और अन्धे होने पर भी उनमें सोहिणी को एक विशेष करुणा का भाव

दिखाई पड़ा। यौवन में उनका क्या भाव रहा होगा वह उनकी कल्पना करने लगी। विभाकर की काकी एक ओर बैठी अपनी आँखें पोंछ रही थी तथा बुवा विभाकर की गोद में बैठी कभी कान्ता की ओर ओर कभी विभाकर की ओर घबड़ाई दृष्टि से देख रही थी।

सोहिणी कुछ समझ नहीं सकी कि यह सब क्या है ? उसके अन्दर आते ही कान्ता दौड़कर उसके गले लिपट गई। पशुओं से भयभीत होनेवाले सभ्यता के इस वर्तमान युग में आलिंगन करने का रिवाज असभ्य माना जाता है और इस कारण यह रिवाज भूलता भी जाता है। परन्तु वैर, प्यार और उपकार की अधिकता तो कभी स्पर्श करा ही देती है। सोहिणी ने विवेक के विचार से कुछ कहा नहीं पर कान्ता का यह व्यवहार उसे रुचा भी नहीं।

कान्ता ने कहा—"मैं उस दिन मिलने गई थी पर तुम मिली नहीं मैं यही कहने गई थी कि यदि लक्ष्मी और कान्ता एक है तो इस कुटुम्ब की कन्या मरी नहीं है। उसके मां-बाप खो गये थे पर उसका भाई मिला था और आज तो सभी मिल गये हैं।"

"ऐसा किसने कहा ! तुम खो गई थीं ?"

कान्ता ने अपना इतिहास कहा। छः सात वर्ष की अवस्था में एक घर का परिचित मुसलमान सिपाही भाई के पास ले जाने का कौल देकर उसे कहीं ले गया। वह स्थान एक छोटा-सा गाँव था। वहाँ से कभी पैदल, कभी घोड़े पर, कभी रेल पर यात्रा करने का ख्याल आता है। उसका भाई तो मिला नहीं पर एक बड़ी दाढ़ीवाले मुसलमान और भयंकर नेत्रोंवाले हिन्दू के साथ दिन बिताना पड़ता था। वह बड़ी दुखी थी। अपने माता-पिता का पता पूछने पर तथा वह कहाँ जा रही है पूछने पर उसे अजीब भाषा में अजीब उत्तर मिलता था। कुछ दिन बाद वह भी नवीन भाषा समझने लगी और अपनी भाषा भूलती गई। केवल अपना

नाम और अपने माता-पिता तथा भाई की मूर्ति उसे नहीं भूली। शेष जीवन की सारी बातें उसे भूल गईं।

किसी स्त्री के मकान में उसे रहना पड़ा? वह स्त्री भली थी। अच्छा अच्छा कपड़ा पहनाती और खिलाती तथा उसे प्यार से लक्ष्मी कहकर पुकारती थी। उसीने उसे गाना और नाचना सिखाया तथा उसने थोड़े ही दिनों में संगीत नृत्य में काफी उन्नति कर ली। अवस्था और बुद्धि के साथ साथ उसका अभिमान भी बढ़ने लगा। वह अपनी ही ईच्छानुसार पुरुषों के सामने बैठती थी जरा भी अश्लीलता का भास होते ही वह गाना बन्द कर देती थी। इतना ही नहीं वरन् अश्लीलता का व्यवहार करनेवालों का बेधड़क अपमान भी करती थी। उसका संगीत सुननेवालों को संयम रखना पड़ता था तथा उसका संगीत अपनी रुचि का होता था। वह लक्ष्मी नहीं कान्ता है यह बात उसे कभी नहीं भूलती थी और उसे स्मरण था कि उसका स्थान गुजरात है। उसे पढ़ने का शौक था तथा इसके द्वारा उसने संगीत से अपना शास्त्रीय ज्ञान भी अधिक बढ़ा लिया था। इस ज्ञान ने उसे बताया कि संगीत भयंकर तपस्या का विषय है, खिलवाड़ नहीं। संगीत हृदय में ऊँची से ऊँची करुणा और अधिक से अधिक हर्ष प्रकट करने का साधन है।

थोड़े दिन बाद ही उसे ज्ञात हो गया कि उसके पेशे में संगीत का स्थान कम होता है। संगीत के बहाने मनुष्य सौजन्य और मर्यादा की सीमा का उल्लंघन करता हुआ निम्नतर होता जाता है यहाँ तक कि पशुओं से भी निम्न हो जाता है। उसके संगीत और शरीर के अभिमान ने ही उसे शुद्ध रखा। संगीत यह नारद, हनुमान और सरस्वती जैसे ब्रह्मचारियों का आभूषण है। भगवान शंकर जैसे योगेश्वर और भगवती पार्वती जैसी सती गीत नृत्य के प्रवर्तक हैं। अनेक प्रलोभनों पर लात मार कर ही अपने संगीत की शुद्धता की परख की थी और उसकी रक्षा भी की थी।

कुछ दिन बाद उसे यात्रा करनी पड़ी। उस यात्रा में उसे अपने संगीत से बहुत साधन प्राप्त हुआ। पर पैसे के साथ ही साथ उसे वैराग्य भी होता गया। एक बार उसका बड़ा भाई अत्यन्त पामर अवस्था में उसके सामने पड़ गया था। भाई बहन भी क्या कभी एक दूसरे को भूल सकते हैं। नशे में चूर भाई अपने ही सामने बहन को गाते देख कर व्यथित होकर बेहोश हो गया। उसका निर्बल शरीर इस आघात को नहीं सहन कर सकता यह देखकर उसके साथी उसे हटा ले गये। कहां ले गये कौन जानता है ?

उसने अपना देश छोड़ दिया और मातृभूमि गुजरात की ओर चली। अकेली युवती को संसार किस क्रूरता से देखता है इसका उसे खूब अनुभव हुआ। बुरे रास्ते पर न जानेवाले निराधार को भी किस प्रकार बुरे काम पर बाध्य होकर जाना पड़ता है इसका उसे परिचय मिला। उसे उपवास करने पड़े। अपमान सहने पड़े और पुनः अन्त में संगीत का ही आश्रय लेना पड़ा।

इसी बीच सुकुमार और शिरीष से उसका परिचय हुआ। प्रतिष्ठा की परवाह न कर एक निःसहाय युवती की सेवा करने वाले इन दोनों युवकों ने उसे उसकी करुणावस्था में देखा था। यद्यपि दोनों ही विद्यार्थी थे तथापि अपने मस्तीभरे जीवन से ही आत्म भोग का त्याग कर सकते हैं यह देख कर कान्ता को अपने भविष्य जीवन में श्रद्धा उत्पन्न हुई। शिरीष की गुपचुप सहायता से उसने अपना नवीन जीवन आरम्भ किया। उस जीवन में प्रवेश कर कई अन्य अबलाओं को उसने बचाया भी। अपनी प्रतिष्ठा भी स्थापित की और वही कान्ता जिसे कुछ दिन पहले सभ्य घर में प्रवेश पाना भी कठिन था सभी स्थानों पर निमन्त्रित की जाने लगी।

शिरीष ने उसके बड़े भाई पता लगाया। साधू का जीवन व्यतीत करते हुये वह नर्मदा के किनारे रहते थे। सुकुमार को पत्र लिख कर उसने कान्ता और उसके साधू भाई का मिलाप कराया।

परन्तु उसके और कुटुम्बी कहां है ? यह प्रश्न रह गया। इसी बीच विभाकर को एक पठान की सहायता प्राप्त हुई और इस प्रकार उसे अपनी खोई बहन का पता लगा।

विभाकर को मेरा पता लगा सही पर मुझसे मिल नहीं सका। उसे स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि मैं उसकी बहन हो सकती हूँ। मुझे पठान ने सूचना दी और आज प्रातःकाल ही मैंने विभाकर को बताया है कि मैं ही उसकी खोई हुई बहन हूँ। पर मैं यहाँ कैसे आऊँ ? मेरे माता-पिता मैं जैसी हूँ, वैसे ही मुझे स्वीकार कर लेंगे ? इन प्रश्नों के उत्तर से आज एक युग बीतने पर मैं अपने माता-पिता की गोद पा सकी हूँ। मुझे सब छोड़ दे पर मेरे माता-पिता......... । कान्ता का गला भर आया वह आगे नहीं देख सकी। सोहिणी ने आँख में आँसू भरकर यह करुणा कथा सुनी। अत्यन्त प्यार से वह कान्ता के शरीर पर हाथ फेरने लगी। अब उसका स्पर्श उसे बुरा नहीं लगता था।

सभी रो रहे थे। केवल एक सुधा चुप थी। वह ध्यान पूर्वक बातें सुन रही थी। उसका चेहरा उतर गया था। वह बावली बनकर विभाकर की गोद में और चिपक गई। विभाकर ने उसके मुख की ओर देखकर पूछा।

"सुधा ! क्या है ?"

"भाई अब मैं तुम्हारी बहन नहीं रह गई न ?"

"यह तुमसे किसने कहा ?"

"इन्होंने कहा है कि यह तुम्हारी सगी बहन है। आज मैंने भी कहा है कि मैं तुम्हारी सगी बहन नहीं हूँ।"

यह वाक्य सुधा ने इस प्रकार कहा जैसे कोई राज्यमहिषी सिंहासनाच्युत हो गई हो। उसके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। विभाकर सुधा को सँभालता हुआ बोला—

"सुधा तू मेरी सगी बहन है और मैं तेरा भाई हूँ। पहले तू बहन है पीछे कोई और होगा।"

सुधा के नेत्रों के आँसू उसके कपोल पर आकर ढुलक रहे थे। विभाकर ने उसे पोंछ दिया। सुधा की हृदय द्रवित करनेवाली बात सुनकर वह अपनी बहन से भी मिलने का आनन्द भूल गया।

"सुधा तुम्हारे भाई को मैं ले नहीं जाऊँगी। तुम्हें भाई देने के लिये ही तो मैं चली गई थी।" कान्ता ने कहा। उसकी इस बात से दुःखमय वातावरण में सबके चेहरे पर हँसी आ गई। सुधा की चिन्ता दूर हुई।

—३३—

दूसरे दिन सोहिणी कान्ता के अनुभवों पर विचार करती हुई बैठी थी उसे विभाकर के कुटुम्ब भर का इतिहास मिल गया था। कान्ता की कथा के बाद जो अंश छूट गया था उसे विभाकर के पिता ने पूरा किया था। वह कथा मित्रों में मजाक के बीच हँसी से बढ़कर वैर हो जाने का यह एक प्रबल उदाहरण था। मुरलीधर जैसे धनी से वैर मोल लेने का परिणाम पुत्री को भोगना पड़ा और इतना ही नहीं पुत्र साधू हो गया और स्वयं भी गरीबी के चंगुल में फँसना पड़ा।

विभाकर ने मुरलीधर पर फौजदारी का मुकदमा चलाने का विचार किया। अब उसके पास पैसा खर्च करने का साधन हो गया था। पर

उससे माता-पिता ने उसे रोका। तथापि उसका मन नहीं माना। कौटुम्बिक द्वेष ने उसके हृदय पर अधिकार किया।

सोहिणी के मन में भी यह सब विचार उत्तेजित हो गये। उसने समझा कि उसने कान्ता के साथ अन्याय किया है? इसी के कारण उसका शिरीष से झगड़ा हुआ और वास्तव में जब तक कान्ता के माता-पिता का पता नहीं लगता तब तक शिरीष ही कैसे सारी बातें स्पष्ट कर देता? इस समय सोहिणी के प्रत्येक विचार केन्द्र में शिरीष था। किसी भी वस्तु के देखने पर, किसी भी विषय पर बात करने पर किसी भी विचार में लीन होने पर उसका मूर्तिमान स्वरूप शिरीष ही में लग जाता था। उसके अन्तर में बड़ा क्लेश था कि जिस प्रसन्न बदन के हेतु वह अपना सर्वस्व कुरबान कर सकती थी उसे सर्वदा क्यों न प्रसन्न रख सकी। अब उसे सभी बातों में अपना ही अपराध दिखाई देने लगा। जरा-जरा सी बातों में भी वह क्यों शिरीष को चिढ़ाती थी। पर शिरीष तो चिढ़ता नहीं था वही हँसी की बातों में रूठ जाती थी। सीधी-सादी बातों का भी वह क्यों व्यर्थ का अर्थ लगाती थी। जिस काम में शिरीष का परोपकार था उसमें उसे क्यों वहम होता था। वह किसे चाहती थी? शिरीष को या उसके गुणों को?

शिरीष के साथ विवाह करने के लिये उसने कितनी चेष्टा की थी। इस निश्चय का वह क्यों नहीं पालन कर सकी। और वह कैसे थे? उसकी विचारधारा आगे बढ़ी। शिरीष ने कभी कोई कष्ट नहीं दिया था। कभी अपना स्वामित्व उस पर प्रकट नहीं किया। इस समय सोहिणी को अनेक ऐसे प्रसंग याद आये जब केवल उसकी मानरक्षा के हेतु शिरीष ने अनेक अनर्गल बातों को सहन किया था। शिरीष का खर्चीला स्वभाव सभी के आलोचना का विषय था। अब सोहिणी को विश्वास हो गया कि इस खर्चे का अधिकांश तो दोनों की सहायता में खर्च होता था। सुकुमार और कान्ता इसके ज्वलंत उदाहरण थे। इसके अलावे भी कितनी और बातें

थीं। सुकुमार ने ही कितनी बार कहा था कि शिरीष अपने लिये तो जीवित ही नहीं है उसे तो दूसरों के लिये जीवन धारण करने की हविस है। वह झूठ तो नहीं कहता था।

इतने ही में डाक्टर सुकुमार आ गये।

"चलो चलो जल्दी चलो शिरीष आया है मोटर तैयार है?"

दूसरा समय होता तो सोहिणी को कपड़े पहनने में एक घंटा लग जाता। घर में पहनने के कपड़ों को भी वह इस प्रकार साफ रखती थी मानों हर समय कहीं जाने का ही आयोजन है। पर इधर कुछ लापरवाह सी हो गई थी। उसे तैयार होने की आवश्यकता नहीं थी उसी प्रकार उठ कर चलने लगी।

मोटर में कान्ता भी बैठी थी। तेजी से मोटर चली तो सोहिणी ने पूछा।

"कहाँ?"

"यही तो मालूम नहीं। मुझे केवल विश्वास था कि वह आयेगा, अवश्य और मुरलीधर के यहाँ जायेगा। तीन-चार बार जाकर मैं पूछ भी आया था पर वह नहीं आया। अभी-अभी आदमी भेजा तो मालूम हुआ कि आया था। आदमी उसके पीछे जाकर पता भी लगा आया कि वह कहाँ उतरा है पर वहाँ से वह फिर चला गया। मैं रात में वहाँ गया था पर सारी रात वह नहीं लौटा। इस समय वहीं चल रहे हैं।"

मोटर एक छोटे मन्दिर के पास आकर रुक गई। छोटा-सा शिवालय था। सोहिणी काँप उठी। ऐसे स्थान में शिरीष ठहरा है?

सुकुमार मुस्कराया।

"शिरीष यहीं ठहरा था।"

उसने भीतर जाकर पता लगाया। एक मृतप्राय वृद्ध पुरुष ने कहा कि शिरीष चला गया। बम्बई जैसे स्थान में घूमनेवाले शिरीष का क्या स्थान होगा?

"यहां नहीं है क्या ?" सोहिणी ने पूछा।

"नहीं, क्या मालूम कहां चला गया ?"

मोटर लौट पड़ी। कान्ता के मकान पर आकर शिरीषका पत्र मिला। सुकुमार ने तुरन्त पत्र को खोला। मोटर वाले से जानेको भी नहीं कहलाया।

"बन्दर पर चलना होगा।"

"कहो क्या काम है ?" सोहिणी ने पूछा।

"गाड़ी में बैठकर यह पत्र पढ़ना। चलो।"

तुरत सब मोटर में बैठ गये और मोटर तेजी से बन्दर की ओर चली। सोहिणी ने पत्र देखा। वह सुकुमार के नाम लिखा गया था और उसपर कान्ता का पता था सुकुमार को लक्ष्य कर शिरीष ने लिखा था।

" मैं आज की अवधि के लिये ही लौटा था। मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि मेरे में धन खर्च करने की ही शक्ति है पैदा करने की नहीं। मैं अवधि पर पैसा अदा नहीं कर सका इससे मुरलीधर के पास दूसरी अवधि का सामना करने आया था। पर वहां मालूम हुआ कि तुम्हीं नहीं वरन् लक्ष्मी, सोहिणी, विभाकर और मुनीम सभी ने मेरी जमानत अदा की। तुम जानते हो कि मुझे भयङ्कर प्रयोगों का शौक है। कनक की जमानत भी एक प्रयोग मात्र थी। इस प्रयोग में मैं शामिल हुआ और सफल हो गया। मुझे निष्फलता से घोर तिरस्कार है। मैं क्या तुम्हारे योग्य हूँ ? यह विचार मुझे दुखित करता है। मैं समझता हूँ कि जब तक मैं तुम्हारे योग्य होऊँ तब तक हो सके तो तुम से अलग ही रहूँ तो कैसा हो ? इस अलग होने से मुझे कितना कष्ट होता है यह तुम समझ ही सकते हो। पर क्या यह वेदना मुझे योग्य नहीं बनावेगी ? यह भी प्रयोग करके देखना है।

"लक्ष्मी के विषय में मेरी लिखी बातें सत्य हैं। गौरांगदास के पास उसे तुम लिवा गये होगे ! उसके माता-पिता का समाचार मिल जाय तो

मुझे सूचना देना और सूचना के बाद लक्ष्मी तुम्हारे विषय में अपने विचार पर स्थिर रहती है या नहीं यह भी लिखना।

"सोहिणी क्या कहती है! मैं जानता हूँ कि मेरे बिना पहले पत्र लिखे वह मुझे पत्र नहीं लिखेगी। मुझे अपनी मूर्खतापूर्ण दुराग्रह पर क्रोध आता है क्यों मैं उसे पत्र नहीं लिखता! कारण एक है! उसका ध्येय बहुत उच्च है। क्या मैं वहां तक पहुँच सकता हूँ! आज मुझे उसका प्रमाण मिला। उसने मेरे लिये इतनी बड़ी रकम किस प्रकार चुकती की और मैं स्वयं नहीं कर सका। क्या मैं सोहिणी के योग्य पति हूँ?"

सोहिणी आगे न पढ़ सकी। उसने अपना मुख ढक लिया और हृदय खाली करने लगी। पर खाली हृदय को भरते देर भी कितनी लगती है?

मोटर बन्दर पर आकर रुकी। वे लोग जल्दी से उतरे। उसी समय एक स्टीमर डेक से हटा और साथ ही उसके ऊपर शिरीष खड़ा हुआ दिखाई पड़ा मानों वह तीनों की आशा लगाये ही था। उसने इन्हें देखकर अपना रुमाल हिलाया। सोहिणी आगे न बढ़ सकी वहीं बैठ गई और विस्फारित नेत्रों से जाते हुए स्टीमर को देखने लगी।

———

A 307

परन्तु प्रेम के प्रभाव से जड़ स्टीमर धीमा तो नहीं चल सकता? शिरीष का बस होता तो वह स्टीमर रोक कर उतर जाता। सोहिणी को बैठ जाते देख कर एक बार उसकी इच्छा हुई कि वह पानी में कूद पड़े। परन्तु इस प्रकार का पागलपन क्षम्य नहीं था। जब तक सोहिणी दिखती रही वह वहीं खड़ा देखता रहा तथा जब तक स्टीमर दिखाई देता रहा तब तक दोनों ने ही क्यों नहीं समझा कि उनका प्रेम सवारी पर नहीं स्थिर है। शायद यही समझाने के लिये ही वियोग का उदय हुआ और शिरीष को तो यही भय था कि यदि वह सोहिणी को देख लेगा तो पुनः अपने कार्य में नहीं लग सकता।

उसका चित्त और शरीर उसके विचारों के अनुकूल हो गये थे। फारस की खाड़ी से होकर उसे मेसोपटामियां जाना था। पर्सिवल के साथ उसने बड़े आनन्द के साथ यात्रा की थी। उनकी योजना के अनुसार इस प्रदेश में नहर द्वारा कपास की खेती करनी थी। उन्होंने भिन्न-भिन्न प्रकार की कपास पैदा करने का प्रयोग भी किया था। अधिकतर वहां उन्होंने गुजरात के ही कृषकों को लगाया था और भिन्न-भिन्न देशों की प्रक्रिया समझने के लिये विशेषज्ञों को भी बुलाया था।

पर्सिवल विशेषकर छूटे हुये कैदियों को ही अपने कामके लिये मजदूर रखता था। इन कैदियोंका अपने देशमें मान नहीं होता था और वहां उन्हें काम भी नहीं मिलता था। चोरी की सजा पाकर आनेवाले को कौन अपने

यहां नौकर रखेगा। ऐसे लोग प्रतिष्ठाहीन वातावरण का त्याग करने के लिये शीघ्र तैयार हो जाते थे और उनके साथ भला व्यवहार करके पर्सिवल उन्हें काम भी देता था। उसकी योजना अभी ही आरम्भ हुई थी इससे केंद्रियों को अपना स्वभाव बदलने में विलम्ब होना स्वाभाविक ही था। कभी-कभी भिन्न-भिन्न देशों के लोगों के इकट्ठे हो जाने से आचार और व्यवहार के कारण भीतर ही भीतर कठिन समस्या भी खड़ी हो जाती थी। उन्हें अपना ज्ञान कराने का समय नहीं था। पर्सिवल ने एक दो पादरी भी बुलाये पर उनके ईसाई मत की बातें करने के कारण वे हिन्दू-मुसलमान दोनों कृषकों में अप्रिय हो गये। एक दो बार कृषकों ने उन्हें धमकी भी दी थी तथापि ईशू के पुत्रों को ही मोक्ष मिलेगा इस प्रकार की वार्ता वे अन्य धर्मों की निन्दा के साथ-साथ चलाते ही रहते थे। पर इस प्रकार की बातों से चिढ़कर कृषकों ने बलवा आरम्भ कर दिया। उन्होंने काम बन्द कर दिया तथा पादरियों के बंगले को घेर लिया। उनकी जान खतरे में पड़ गई। किसी आदमी ने पार्सिवल को तार दे दिया और वह तुरन्त ही रवाना हो गया तथा शिरीष का उपयोग कर मामला सुधारने की इच्छा से उसने उसे भी साथ मिला लिया। शिरीष का ज्ञान, उसका मीठा स्वभाव उसका शौक और सामाजिक स्थान इन सबका परिचय उसे जैक से मिल चुका था और उसने समझ लिया था कि इस प्रकार का मनुष्य उसकी मदद कर सकता है।

पार्सिवल की कन्या कलेरीस भी शिरीष से हिलमिल गई। अपरिचित मनुष्यों से वह बहुत कम बोलती थी। स्टीमर पर बात-चीत कर समय काटने के विचार से वह शिरीष के पास गई। उसने समझ लिया कि उसके प्रियतम जैक ने इस हिन्दू के साथ मित्रता करके भूल नहीं की है। उसके साथ शिरीष खूब बातें करता, हँसता और हँसाता तथा हिन्दू रीति रिवाजों का वर्णन सुनाया था। पश्चिम के रीति रिवाजों से उसकी तुलना करके अजीब निष्कर्ष निकालती। जिसे बात करने का तरीका मालूम हो उसे

कहीं भी रुकावट नहीं हो सकती । उसने हिन्दुस्तानी गाना भी कलेरीस को सिखाना आरम्भ किया ।

बन्दर से उतर पर्सिवल सभी को अपने फार्म में ले गया । कृषकों का असन्तोष अभी दूर नहीं हुआ था । पादरियों के बंगले पर उन्होंने कड़ा पहरा लगा दिया था । वे भी घबड़ा गये थे । दो दिन से उन्हें भोजन भी नहीं मिला था । एक तो जंगल प्रदेश दूसरे अव्यवस्थित राजसत्ता फिर कौन खैर करे ।

इन तीनों को वहां पहुँचाना था कि कृषकों ने इन्हें घेर लिया । उनके चेहरे से असन्तोष प्रगट होता था । हरएक जोर से बोलने लगे । बड़ा कोलाहल मचा । पर्सिवल ने अपने जीवन में इस प्रकार के अनेक तूफान देखे थे इससे उसे विशेष घबराहट नहीं हुई परन्तु कलेरीस घबरा गई और शिरीष को अपने कालेज के दिन याद आये ।

पर्सिवल ने शिरीष से कहा—

"यहां तुम्हारी भाषा का उपयोग होगा । प्रयोग कर देखो ।"

शिरीष के चेहरे पर स्फूर्ति आ गई थी । उसे इन लोगों के तूफान में आनन्द आ रहा था । पास खड़े एक जवान कृषक को बुलाया और मानों उससे बड़ी पुरानी दोस्ती है इस प्रकार उसका हाथ पकड़ कर बोला—

"क्यों भाई यह सब क्या है ? क्यों गड़बड़ मचा रक्खा है ?"

परदेश में अपनी भाषा बोलने वाला यदि कोई मिल जाता है तो एक अद्भुत खुशी उत्पन्न हो जाती है और अनोखी मुहब्बत पैदा हो जाती है ।

"गड़बड़ न हो तो क्या हो ? हमें यहाँ लाकर विधर्मी बनाया है ?"

"किसने कहा कि तुम्हें विधर्मी बनाने के लिये ले आया गया है ?"

"इन्हीं पादरियों से पूछो न ?"

"पर वे पादरी भी तो सच्चे नहीं हैं । फिर तुम्हें कैसे सच्चा बना देंगे ।" शिरीष ने कहा । अपने ही देश का अपनी ही तरफदारी करने

वाला यह नौजवान कौन है यह विचार करता हुआ कृषक जरा शान्त हुआ। पर अभी तूफ़ान शान्त नहीं हुआ था। शिरीष ने युवक का नाम पूछा।

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"मेरा नाम भोला है।"

"तो तुम्हें अपने नाम के अनुसार काम करना चाहिये। इन लोगों को जरा शान्त करो तो साहब की समझ में आये कि किसको क्या शिकायत है।"

"अरे भाई क्या होहल्ला मचा रक्खा है।" भोला बोला "दो चार आदमी आगे आकर अपनी बात कहो और बाकी सब चुपचाप रहो।"

देखते-देखते शोर बन्द हो गया।

"अब सारी बातों का फैसला होगा। तुम लोगों में से आठदस आदमी आओ और अपनी बातें कहो। अगर तुम्हें कोई विधर्मी बनाने को कहता है तो उसे अभी यहाँ से विदा कर दिया जाय।"

पादरियों को वास्तव में नीति सिखाने के लिये बुलाया गया था। पर उनके लिये तो ईसा का नाम ही नीति की पहली शिक्षा है। कोई आदमी अपने धर्म के विषय में कितना भी उदासीन क्यों न हो तो भी वह उसकी निन्दा नहीं सहन कर सकता। परदेश में आये हुये कृषक धर्म की बारीकियाँ भले ही न समझ सकें पर अपने धर्म पर किया हुआ आघात हृदय पर किया हुआ जान पड़ा। अज्ञान और अर्धज्ञान में ही धर्मान्धता का समावेश होता है। शिरीष ने उन्हें यह सब समझाया। पादरियों को धार्मिक शिक्षा देने से रोका और कृषकों को काम में लगाया।

थोड़े ही दिनों में वह कृषकों का प्रिय हो गया। वह सबसे मिलता हरएक झोपड़ी में जाता, उनका प्राचीन वृत्तान्त सुनाता और उनके साथ सम भाव रखता। नम्र स्वभाव और मीठी जबान यह संसार का मोहन-मंत्र है। वास्तव में सच्चा वशीकरण इसी में है। और उस पर भी यदि

असंस्कारी मूर्ख और पाप में लिप्त वर्गों में, स्वप्न में भी न होनेवाली बात याने समभाव का व्यवहार कोई करे तो वह उसके लिये देवता स्वरूप हो जाता है। सभी शिरीष के सामने अपना दुखड़ा रोने लगे और सभी विषयों में उससे सम्मति लेने लगे। उसका बाहर से बेपरवाह स्वभाव ऐसे गुनहगारों के लिये ठीक था। उसमें क्रोध का स्थान नहीं था वह भूलों पर हँसता था और बदमाशों को क्षमा करता था।

एक कृषक के चोरी करने की शिकायत आई। शिरीष उसकी झोपड़ी पर गया और पुकारा। It has a great meaning

"वीराजी क्या कर रहे हो?"

"आओ-आओ बड़े भाई इस समय इधर कैसे?"

शिरीष ने सभी को झोपड़ियों में बिना सूचना दिये ही जा-जाकर उन्हें स्वच्छ रखने को बाध्य किया था। इससे शिरीष के आने पर उसे बैठाने के लिये स्वच्छ स्थान रखने की सभी को आदत पड़ गई थी।

"आज तो एक आदमी से झगड़ा हो गया।" शिरीष बोला।

"कौन है वह ससुरा मरना चाहता है क्या?"

"जेसा है भाई। कहता है वीराजी ने उसकी स्त्री की हँसुली चुराई है। मैंने कहा कि ऐसा कभी नहीं हो सकता। वीराजी को जरूरत होगी तो वह मांग न लेगा चुरायेगा क्यों। वह ठाकुर का वंशज है कभी चोरी नहीं कर सकता। उसके बाप कौन? दादा कौन जिन्होंने हजारों रुपयेकी हँसुली ब्राह्मणों और भाटों को दान दे दी, वह चोरी करेंगे?"

वीराजी को चोरी के लिये ही सजा हुई थी। उसको कई पीढ़ी ऊपरी उसके किसी पूर्वज का नाम था उसकी याद वीराजी को आई। पर वीराजी को दरिद्रता के कारण चोरी करनी पड़ी थी। वह पकड़ा गया सजा हुई और छूटने पर यहां खेती करने आया। पुरानी वृत्ति जाग्रत हुई और उसने जेसा जी की झोपड़ी से हँसुली चुरा ली। जेसा ने शिरीष से कहा। शिरीष ने इसे वीराजी के पूर्वजों की प्रतिष्ठा पर तौला तब वीराजी चौंक पड़ा।

वास्तव में उसी ने चोरी की थी। वह घबराया। उसकी घबराहट देखकर शिरीष वहां से उठ गया और चलते-चलते बोला।

"दोस्ती या मजाक से किया हो तो कोई बात नहीं पर वीराजी! तुम्हारे जैसे खानदानी आदमी कभी ऐसा नहीं करेंगे यह मुझे विश्वास है।"

उसी दिन रात को शिरीष की आज्ञानुसार जेला ने अपनी झोपड़ी का द्वार खुला रखा और वीराजी चुपके से हँसुली रखा गया।

उस दिन शिरीष भी विचार करने लगा। वीराजी को पूर्वजों की प्रतिष्ठा का लाभ उठा कर उसने उसे चोरी से बचाया था। यह भी माता-पिता की एक कमाई है, जायदाद है। भूतकाल का पूर्वजों का सम्बन्ध कैसे टूट सकता है? लड़का माता-पिता से अलग संसार कैसे बना सकता है? यदि वह उनसे धन नहीं लेता तो भी उनका संस्कार तो लेता ही है। शरीर और नसों से पूर्वजों की विरासत कैसे अलग हो सकती है। शिरीष धर्मपाल का पैसा भले ही न ले पर धर्मपाल का उदार स्वभाव तो उसमें है ही। वास्तव में माता-पिता की रूढ़ि कभी अलग नहीं हो सकती।

एक दिन जमनादास की स्त्री अपने दो बालकों के साथ बैठी थी। शिरीष उधर से निकला। उसने जमना से पूछा।

"ये तुम्हारे बच्चे हैं?"

"सरकार ये तो भगवान के बच्चे हैं।"

"बहुत ठीक। अच्छा इनका बाल-बाल ठीक कर मेरे पास भेज दो मैं इन्हें कुछ सिखाऊँगा।"

जमना ने बच्चे को साफ कपड़े पहना कर शिरीष के पास भेज दिया। बच्चे सुन्दर लगने लगे। शिरीष ने पुनः जमना से कहा।

"तुम्हारे बच्चे जैसे साहबों की तरह लगते हैं।"

यह सच है कि यद्यपि गोरा वर्ण नहीं होता है पर स्वच्छता से मुख का भाव भी बदल जाता है। कोरी और भीलों के बच्चे में भी सुन्दर मुख छिपे हैं।

पर्सिवल को शिरीष से बड़ी मुहब्बत हो गई। उसने उसके काम से भागते हुये कृषकों को रोका था और साथ ही उनके रहन-सहन में भी अद्भुत परिवर्तन करा दिया था। वे स्वच्छ, सुशील और सन्तोषी जीवन पालन करने लगे। कभी-कभी शिरीष उन्हें भजन गाकर भी सुनाता था। कलेरीस भी उसके साथ कृषकोंके झोपड़ीमें घूमती थी और उससे सीखे हुए हिन्दी तथा गुजराती गाने गाती थी। शिरीष नौकर नहीं था। वह आस-पास के देशोंमें भी घूमने जाता था पर सदैव सादी चालसे ही रहता था। उसका स्वभाव ऐसा था कि प्रत्येक काम अपने हाथ से कर लेता था। गर्म देश होने के कारण धोती कुर्ते को छोड़ और वस्त्रों की जरूरत ही नहीं थी। जब कभी कलेरीस और पर्सिवल उसे चाय पीने के लिये बुलाते थे उसी समय उसकी गहराई और शिक्षा का पता लगता और उसी समय पिता और पुत्री दोनों उसकी विचित्रताओंके विषय में बातें करते थे। पर शिरीष कहता था कि वह केवल अनुभव के लिये ही इस प्रकार का व्यवहार रखता है।

"तुमने मुझे अच्छी सहायता दी है उसका प्रत्युपकार करना है। थोड़े ही दिनों में मुझे अच्छा नफा हुआ है। मैं तुम्हें पुरस्कार दूँगा तो तुम्हें लेना पड़ेगा।"

एक दिन पर्सिवल ने उससे कहा—

"मैंने आपकी नौकरी तो की नहीं है। केवल अपने समय का उपयोग और अनुभव करने की इच्छा से आपके साथ आया हूँ कि फिर काम के बदले आपसे रुपया लूँ तथा पुरस्कार तो मैं कभी लेता ही नहीं।"

"तुमने तो जो काम किया है वह मुझसे भी नहीं हो सकता। इस वर्ष का सारा लाभ मुझे तुम्हारी वजह से मिला है। यदि किसान चले गये होते या उपद्रव कर अन्न नष्ट कर देते तो मैं क्या कर सकता था?"

'यह तो संयोग वश हो गया। मैंने एकाध बात कह दी और अक-

स्मात उसका प्रभाव हो गया और नहीं तो कौन-सा बड़ा काम मैंने किया है ?"

"मेरे मजदूरों को तुमने कैसी मानसिक और भौतिक शिक्षा दी है। इसका लाभ भी तो मुझे ही हुआ।"

"यह तो हमारे समय का उपयोग है।"

"मेरे देश में तो इस प्रकार से समय नष्ट करने का बड़ा मूल्य होता है।"

"मेरी समझ में नहीं आता कि मैं किस लिये आपका रुपया लूँ ? मैंने तन मन धन किसी से भी तो आपका कुछ काम नहीं किया है ?"

"तो फिर यह कहो कि तुम्हें पैसे की जरूरत ही नहीं है।"

"पैसे की मुझे बहुत जरूरत है। मैंने अपने सर एक ऐसी जिम्मेदारी ले ली है कि उसे अदा करने योग्य पैसा इकट्ठा करने के लिये मुझे अपना शरीर भी बेंचना पड़ेगा। पर पैसे के लिए मैं कौन-सा काम करूँ यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है ?"

"तुम जो भी करोगे उसी में तुम्हें पैसा मिलेगा। तुम्हारी जिम्मेदारी कितनी है ?"

"एक लाख रुपये की। अभी ही थोड़े दिनों में उसकी मोयाद पूरी होगी।"

"तो तुमने मुझसे कहा क्यों नहीं ? तुम्हें पहले ही काम आरम्भ करना चाहिये था। इतने दिनों में तो तुमने इतना पैदा कर लिया होता। मैं तुम्हें यह रकम देता हूँ फिर जब तुम्हारे पास होगी तब तुम वापस कर देना।"

"नहीं मैं ऐसा नहीं कर सकता। कुछ दिनों के लिये और मीयाद मांग लूँगा उम्मीद है कि मिल जायगी।"

"पर बाद में तुम क्या करोगे ?"

"कमाने का कोई रास्ता निकाल लूँगा।"

"रास्ता तो सामने मौजूद ही है। तुम केवल छ महीने यहां रहो मैं

अपने काम में दो आना भाग तुम्हारा लगा देता हूँ। काम तुम जो करते हो वही करते रहो।"

"पर मुझे एक बार बम्बई जाना पड़ेगा। मियाद के दिन मेरा वहां रहना जरूरी है।"

"हाँ हाँ बम्बई तुम जाओ पर तुम्हारा भाग आज से मैंने लगा दिया।'

पाठकों को मालूम है कि इसी के अनुसार शिरीष बम्बई मियाद के दिन गया था। वहाँ उसने सुना कि उसके सभी मित्रों ने उसकी जयाबदारी अदा कर दी है। इस बात से उसे अपनी असफलता बड़ी खटकने लगी। सोहिणी से मिले बिना उसके पैर उठते ही नहीं थे। वह दो बार कुन्दनलाल के मकान की ओर गया और लौट आया। सुकुमार या लक्ष्मी से मिलता तो भी रुके बिना न रहता। और रुकने का क्या कहना! "अभी तो मैंने जमानत अदा करने की योग्यता का मान नहीं पाया है! वह असफल मुख सोहिणी को कैसे दिखाऊँगा!"

उसके स्वत्वाभिमान ने हृदय पर विजय पाई। पर हृदय उसके ऊपर भी बढ़ गया और सभी विजयों पर पराजय ने छाप लगा दी। वहां किसी ने भी नहीं मिला पर तो भी सुकुमार को पत्र लिखे बिना नहीं रह सका। रात को पत्र लिखकर भेज दिया। सुकुमार के साथ उसका पत्र व्यवहार जारी था। अपने पिता को भी अपना समाचार देता रहता था। दोनों स्थानों से उसे सोहिणी की खबर मिलती रहती थी पर वह स्वयं सोहिणी को पत्र नहीं लिख सका। प्रसंग न होने से बुरा लगने के कारण या किसी अन्य कारण से मित्र या प्यारे के घर जाने में संकोच हो या मिलने में हिचकिचाहट हो तो उसका परिचय पैर भारी होकर मिलता है। शिरीष के पैर ही नहीं भारी हो गये थे, हृदय भी भारी हो गया था। इसीसे वह सोहिणी को पत्र नहीं लिख सका था सुकुमार ने समझा कि शिरीष किसी अनजान स्थान में उतर कर उसी दिन लौट जाने वाला है। उसने तुरन्त मोटर दौड़ की पर उनके पहुँचते-पहुँचते स्टीमर छूट चुका था।

शिरीष, सुकुमार और सोहिणी की राह क्यों देखता था इसे वह स्वयं भी नहीं समझ सका था तो भी वह राह देखता ही रहा। स्टीमर के छूटते ही उसने तीनोंको देखा। उसने अपना रूमाल हिलाया। सोहिणी निराधार के सामने बैठ गई। और शिरीष का हृदय हाहाकार कर उठा।

"सोहिणी ! मेरी सोहिणी !! मेरी सोहिणी !!!"

परन्तु हृदय की पुकार जड़ स्टीमर क्या सुनेगा। वह तो उसे सोहिणी से दूर ही करता गया। मेसोपटानियाँ पहुँच कर शिरीष ने अपना काम आरम्भ किया पर काम में अब कृत्रिमता आ गई थी उत्तम काम में भी उसे असन्तोष होने लगा। अनजान देश की यात्रा फीकी हो गयी। कलेंरीस को संगीत सिखाते-सिखाते अक्सर वह अवाक् हो जाता था। कृषकोंके साथ इस प्रार्थना के समय उसके नेत्र भींग जाते थे। वह सभी काम करता पर एक प्रकार की शून्यता का अनुभव करता था। खूब हँसने पर भी उसका हृदय शून्य रहता। खूब गाने पर भी स्वर में बेसुरापन जान पड़ता। इन बातों से चौंककर वह आप ही आप प्रश्न कर बैठता "ऐसा क्यों है ?" हृदय पुकारकर कहता "सोहिणी ! मेरी सोहिणी !! सोहिणी !!!"

चारो ओर से जावाज टकरा कर लौटती-सी जान पड़ती।

"सोहिणी ! मेरी सोहिणी !! सोहिणी !!!

कितने दिन बीत गये और कितने ही दिन बीतते जायेंगे। एक युग के समान भी एक दिन हो तो भी बीत ही जायगा। एकदिन अचानक सोहिणी का पत्र आया। मित्र के हस्ताक्षर हृदय को कितने उत्कण्ठित कर देते हैं।

पत्र खोला। हृदय धड़कने लगा। शरीर काँप उठा। पत्र में लिखा था।

"अशोक बहुत बीमार है।"

७

अशोक वास्तव में बहुत बीमार था। सोहिणी का जीवन अव्यवस्थित हो गया था। उसकी धारणा ठीक थी। उसने शिरीष का देना पटाने के लिये अपनी शक्ति लगाई थी पर उससे तो शिरीष और भी दूर यात्रा को गया। समान हक़ में युगों का अन्तर पड़ गया। चाहे बाद में भले ही स्त्री की आर्थिक सहायता पुरुष को लाभदायक हो पर आज तो वह पुरुष के लिये छोटी बात ही है। इससे पुरुष की अपनी प्रतिष्ठा भंग होती है।

और सोहिणी ने भी तो साफ़-साफ़ कुछ कहा नहीं था। उसे अपना सर्वस्व अपने प्रियतम से चरणों पर अर्पण करना था। इतना ही नहीं। पर उस अर्पण से उत्पन्न भद्दा आनन्द का भोग सोहिणी करना चाहती थी भयानक आनन्द पानेसे उसका मूल्य बहुत बढ़ जाता है। सोहिणी आनन्द का हिलोरा लेना चाहती थी।

पर शिरीष बिना किसी निश्चित लक्ष्यके विदेशमें घूम रहा था। सोहिणी को बिना उसके कभी अच्छा नहीं लगता था। उसकी इच्छा थी कि बिना शिरीष को जनाये ही अपनी प्रवृत्ति वह उसके निकट रखे। और इसीलिये वह विभाकर के लिये प्रतीक बनने को तैयार हो गई थी तथा किसी ने जाना तक भी नहीं। अपनी पत्नी के रूप पर गर्व करनेवाला पति सभी के नेत्रों में आश्चर्य देखना चाहता है। परन्तु ऐसा सदैव नहीं होता। सोहिणी की छटा, उसकी चाल, उसकी चेष्टायें, बार-बार चित्र में देखने के कारण शिरीष को विभाकर से कुछ ईर्ष्या हो गयी थी और जब इसी बीच

में अपने मानसिक ताप के बीच उसने सोहिणी को प्रतीक बने बैठे भी देखा तो उसके क्रोध की सीमा न रही। ईर्ष्यालु और अनिश्चित वातावरण में किसी भी कारण से रोष उत्पन्न हो सकता है। वह बिना सोहिणी से मिले ही चला गया। इतना ही नहीं वरन् उसे पत्र तक लिखना बन्द कर दिया।

धर्मपाल यात्रा से लौट आये और सोहिणी को बुलाने के लिये आदमी भेजा। परन्तु शिरीष के बिना वह इतने बड़े विशाल घर में रह कैसे सकती थी ? प्रियतम की अनुपस्थित में घर भी खंडहर बन जाता है। अनेकों बहाने बनाकर सोहिणी गई नहीं।

पर धर्मपाल अशोक के बिना नहीं रह सकते थे। इससे वह स्वयं बम्बई जाकर उसे देखने आये। अपनी यात्रा से उसके लिये लाई हुई चाजें उसके सामने रख दीं और अपनी इच्छानुसार उन्हें प्रयोग करने का अधिकार भी बता दिया। अशोक अपने दादा के साथ जाने को तैयार था पर पतिवियोगिनी सोहिणी पुत्र से भी अलग होकर कैसे रहेगी यही सोच कर धर्मपाल लौट गये।

परन्तु सोहिणी का चित्त अशोक में भी नहीं जमा। उसने देखा कि वह बिना कारण ही अशोक से भी चिढ़ जाती है। जिस बात पर हँसना चाहिये उसी पर वह अब अशोक से डरती है। उसके लिये अब वह विशेष चिन्तित भी नहीं रहती थी तथा अधिक अपने पास भी नहीं रखती थी यदि वह आता भी उसे चिढ़ाती और रुलाती थी। उसे रोने के लिये बहाना खोजना पड़ता था। वह बिल्कुल स्वत्वहीन हो गई थी मानों शिरीष के बिना दुनियां से सभी स्वत्व उठ गये थे। अब उसके विचारों में शिरीष के सिवा और कुछ नहीं था। विवाह के पहले जो एकाग्रता शिरीष से थी वही एकाग्रता अब सोहिणी में आ गई थी। उसका रोम-रोम शिरीष के लिये तड़प रहा था।

मां से भी तिरस्कृत अशोक बीमार पड़ गया। बालकों की बीमारी

Love ... Parikshit Shah

भारतवर्ष में विशेष चिन्ता का विषय नहीं माना जाता। "अनियमित छोकड़ा है इधर-इधर करता है तो बीमार पड़ता है।" पर वीणा और शशिरेखा दोनों ही उसकी बीमारी से बड़ी चिन्तित रहती थी। कभी-कभी शून्य हृदय से सोहिणी भी पास बैठ जाती थी पर वीणा जानती थी कि उसकी सेवा में वह अवश्य ही भूल करेगी।

एक दिन डाक्टर ने कहा कि अशोक को त्रिदोष हो गया है और उसकी स्थिति भयकर होती आरही है। सोहिणी चौंक पड़ी। "मेरा अशोक क्या.........."वह और आगे विचार न कर सकी। वह बावली हो गई। रात दिन नेत्रों से आँसू बहाते वह अशोक के पास बैठी रहती। उसने सुकुमार को पत्र लिखकर बुलाया और अन्त में मान त्याग कर शिरीष को भी पत्र लिख ही दिया।

सुकुमार ने आकर अशोक को देखा। उसकी हालत नाजुक थी।

"सुकुमार क्या होगा?" सोहिणी ने पूछा।

"ठीक हो जायगा।"

"वह डाक्टर तो कहते थे कि रोग भयंकर है।"

"रोग सभी भयंकर होते हैं। जरा सा सर दर्द होता है तो रहा नहीं जाता फिर इसका क्या पूछना।"

"पर यह तो वास्तव में बड़ा भयंकर मालूम होता है।"

"तो इससे क्या। उसे चुपचाप खूब आराम करने दो।"

सुकुमार ने हिम्मत तो दिखाई पर स्वयं उसकी हिम्मत भी काम नहीं करती थी। वह स्वयं पास ही रहता और अशोक के बिस्तरे से हटता नहीं था। एक दिन उसने भी सोचा कि अब धर्मपाल को बुलाना चाहिये। उन्हें पूरा-पूरा समाचार किसी ने भी नहीं भेजा था। केवल साधारण बीमारी का हाल भेजा था। यद्यपि धर्मपाल अशोक का समाचार तार द्वारा पूछते थे कि फिर भी उन्हें उत्तर मिलता था कि कोई घबराने की बात

नहीं है। उस दिन सुकुमार को अशोक की अवस्था विशेष चिन्ताजनक दिखाई दी तो उसने धर्मपाल को तार दे दिया।

तार पढ़ते ही धर्मपाल के शरीर से प्राण निकल से गये। पहले तो ऐसा जान पड़ा मानों उनके पैरों से पृथ्वी खिसकती जाती है। "मेरे अशोक को क्या हो गया ? क्या हो गया ?" इत्यादि अस्फुट वाक्य उनके मुख से निकल पड़े। उन्होंने सारा काम छोड़कर पहली ही ट्रेन से बम्बई को प्रस्थान किया। यात्रा में किस प्रकार समय कटा यह वही जानते हैं। उसके साथ एक प्रसिद्ध वैद्य, एक उत्तम कर्मकाण्डी पण्डित, एक प्रतिष्ठावान ज्योतिषी और लालाजी भी गये। उन्होंने वैद्य से त्रिदोष की सारी बातें पूछीं। उसके लक्षण, उपचार इत्यादि पर खूब बहसकी और बार-बार वैद्य से कहलाया कि त्रिदोष असाध्य रोग नहीं है। पंडित से गाड़ी में ही मृत्युञ्जय और चण्डी पाठ इत्यादि विघ्ननाशक जप आरम्भ करा दिया था और रास्ते भर ज्योतिषी को सिवा अशोक की जन्म कुण्डली के और दूसरा विचार ही नहीं करने दिया। क्या योग है ! क्या फल होगा, कौन-सा ग्रह उपकारी है, कौन विरुद्ध हैं। विरोधी ग्रहों का निराकरण कैसे होगा इत्यादि अनेक प्रकार की बातें की और अशोकका बाल भी बाँका नहीं होगा यह बात बार-बार उनसे कहलाई। इस समय उनके हृदय में अशोक के सिवा और किसी बात की चिन्ता नहीं थी।

कुन्दनलाल उन्हें लेने के लिये स्टेशन पर गये थे। गाड़ी से उतरते ही धर्मपाल ने पहला प्रश्न किया "अशोक कैसा है ?"

"वैसे ही हैं।"

स्टेशन से कुन्दलाल के घर का रास्ता उन्हें पहाड़ सा हो गया है। उन्हें जान पड़ा जैसे कुन्दनलाल का मकान कुछ दूर हो गया है। किसी प्रकार वे घर पहुँच कर हांफते-हांफते अशोक के पास पहुँचे। वहाँ सोहिणी, वीणा, शशिरेखा और सुकुमार सभी बैठे थे। अशोक को देख कर अकथनीय व्यथा का अनुभव करते हुये उन्होंने धीरे से उसके मस्तक पर

हाथ फेरा । उनके हाथों से अगाध वात्सल्य की धारा बहती थी। इतने दिनों तक ज्वर में कुछ भी न बोलने वाले अशोक ने तुरन्त आंख खोल कर पूछा । "दादा जी आये ?"

दादाजी तो यही सुनना चाहते थे । उन्होंने तुरन्त ही कहा ।

"बेटा !" अत्यन्त प्रेम से कहते हुए बोले "मैं आ गया ।"

"अब मैं अच्छा हो जाऊँगा ।" दादा की शक्ति में असीम श्रद्धा रखता हुआ बालक बोला और दादा ने तो अपना सारा पुण्य, दान, सत्कार्य कभी का अशोक की जीवन तुला पर रख दिया था। इतना ही नहीं अपनी शेष आयु भी उसके लिये निछावर कर दी थी। उनकी भक्ति सदैव सच्ची भक्ति थी तथापि इस समय उनमें जो दीनता और एकाग्रता थी वह पहले कभी नहीं थी।

धर्मपाल ने श्रद्धालु बालक को उत्तर दिया।

"परमात्मा तुम्हें अच्छा कर देगा बेटा !"

और वास्तव में तड़पता बालक धर्मपाल के करीकाएय करते ही शीतलता का अनुभव कर गाढ़ी निद्रा में सो गया। यह वात्सल्य और श्रद्धा पूर्ण दृश्य देख कर सभी रो पड़े । सुकुमार ने चकित होकर परीक्षा की तो अशोक का ज्वर उतर रहा था।

धर्मपाल एक क्षणके लिये भी अशोक के बिस्तरे से हटते नहीं थे। और अच्छा होता हुआ अशोक दादाजी के सिवा और किसी को देखता ही नहीं था। दो दिन तक धर्मपाल कुछ खा भी नहीं सके । केवल ठाकुर जी की प्रसादी जो थोड़ा सा दूध लालाजी लाते से वह बड़ी कठिनता से पी लेते थे। दो चम्मच अशोक को पिलाते और ठाकुरजी की तुलसीदल उसके मस्तक पर रखते थे।

अशोक को लाभ होता गया। सुकुमार ने कहा कि अब कोई चिन्ता का कारण नहीं रह गया है। शुष्कवदनी सोहिणी को कुछ प्रसन्नता हुई।

शिरीष का पत्र आया कि वह लौटने की तैयारी कर रहा है। सोहिणी की वाणी में बल आया। उसने सुकुमार से कहा।

"सुकुमार तुमने अशोक को अच्छा कर दिया।"

"इनाम में क्या देती हो?" सुकुमार ने हँसकर पूछा।

"इनाम में तुम्हारा व्याह करा दूँगी।"

"फिर तुम्हारा उपद्रव चला? सूख कर कांटा तो हो गई हो पहले अपनी तबीयत तो सुधारो फिर और बात करना।"

"पुरुषों की बेइन्साफी का पता नहीं लगता। जड़ भरत सरीखे ही लगते हो पर तुम्हारी दृष्टि किधर रहती है यह मैं खूब जानती हूँ।"

"तुम्हें बात करने के लिये और विषय नहीं है क्या?"

इतने में लालाजी आये। सुकुमार ने पूछा "साहेब कहाँ हैं?"

"बालक की कोठरी में हैं। नर्मदा किनारे से एक साधू आये हैं। अशोक की तबीयत ठीक है इससे जरा देर उनसे बातें कर रहे हैं। पर आप जल्दी करें मेरे सर में चोट है जरा पट्टी बाँध दें।"

"कहाँ गड़बड़ किया लालाजी?" सोहिणी ने पूछा। "यह लालाजी तो बाणासुर हैं लड़ो नहीं तो लड़ाओ।"

"तो क्या अपने से कोई मार खाता है? बम्बई में पठान बहुत घूमते हैं। उन्हें मालूम नहीं की लालाजी आये हैं। चार आदमी मेरे सामने आये और सबों को मैंने मार भगाया पर एक की डाग लग गई। पट्टी बाँध दो नहीं साहेब को पता लगेगा तो बिगड़ेंगे।"

सुकुमार ने पट्टी बांध दी। पट्टी छिपाने की लालाजी ने बड़ी चेष्टा की पर वह भला कैसे छिपती।

"लालाजी खाइयेगा?" सोहिणी ने पूछा।

"खट्टा तीता तो खाना नहीं है। खून निकलने लगेगा।"

तो फिर मैं शक्कर का शीरा और दूध बना दूँगी।"

लालाजी ने सोहिणी को इस प्रकार देखा जैसे यदि इस प्रकार का भोजन मिले तो रोज ही चोट लगा करे।

उसी दिन से लालाजी को पहरे पर होने के कारण शक्कर को साथ और दूध भोजन मिलने लगा।

—३६—

समय पर मुरलीधर की रकम अदा हो गई इससे थोड़े दिन बाद कनक और बृजमोहन पुनः अपने घर लौट आये। धर्मपाल के चतुर मुनीम ने इन्हें इस बार ऐसा फँसाया कि लाचार होकर उन्हें अपनी जायदाद धर्मपाल के नाम लिखनी पड़ी। शिरीष को ऐसा करने की जरूरत नहीं थी। पर मुनीम ने जब से इस जमाने की बात सुनी थी तभी से व्यापार के बीच वास्तविक स्थिति के अनुसन्धान में लगा रहा और उनके देने पावने की खोज की। कागज चोरी जाने के झूठे तमाशे पर भी उसने फौजदारी का मुकदमा चलाने की चेष्टा की। यही कारण था कि दोनों को बम्बई छोड़कर भाग जाना पड़ा था। इतना ही नहीं वरन् मुनीम के पास जाकर प्रार्थना भी करनी पड़ी और अपनी जायदाद इत्यादि लिखकर जमानत अदा करने का प्रयोजन करना पड़ा। इतना होने पर ही मुनीम रुपया लेकर आया था।

कनक और मोहन सेठ दोनों को इस बात से बड़ा क्रोध हुआ उन्होंने मुरलीधर को भरना आरम्भ किया और वास्तव में पैसा उन्होंने

ही अदा किया है इस बात का विश्वास दिलाना चाहा। पर पैसा तो मुनीम ने नहीं वरन् डाक्टर सुकुमार ने भरा है यह जानकर उनके क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। जायदाद किसी ने लिखा ली और रुपया किसी ने भरा वाह! शिरीष और उसके सभी परिचित उनके रोष के केन्द्र हो गये।

मुरलीधर को विभाकर पर वैर उत्पन्न हुआ। वह सहन नहीं कर सके कि उनके पुराने दुश्मन का पुत्र आज अच्छी स्थिति में आ गया है। बात ही बात में कनक ने कितनी ही बातें जान लीं। विभाकर को मोहन सेठ के घर से अलग कराया उसे दूसरे स्थान में जाना ही था इससे उसे कुछ भी अड़चन नहीं हुई। कनक ने विभाकर और रोहिणी के विषय में अनेक गप्पें उड़ानी आरम्भ कीं। शिरीष के सम्बन्ध में चलती बातों ने अब एक नया ही रास्ता पकड़ा। अपनी स्त्री के व्यवहार से दुखी होकर ही वह परदेश चला गया है और अब वहाँ नई गृहस्थी कर ली है इत्यादि अनेक प्रकार की गप्पें फैलने लगीं।

कनक को इतने ही से सन्तोष नहीं हुआ वरन मुरलीधर के पैसे से सहायता लेकर उसने तीन-चार सम्पादकों और लेखकों को भी अपनी ओर मिलाया। ऐसे कितने ही मनुष्य होते हैं जिनको संसार की प्रत्येक वस्तु पर रोष होता है। कितने का मन इतना मलीन होता है कि कला की सभी वस्तुयें उन्हें बुरी लगती हैं और वे उसका तिरस्कार करते हैं। लेखक वर्ग से ही दो-चार लेखकों को चुन कर कनक ने उनसे विभाकर की तीव्र आलोचना कराई। आज कल कुछ ऐसा हो भी गया है कि साहित्य और कला पर बिना कुछ समझे ही टीका हो सकती है।

परन्तु इस चाल का अधिक उपयोग न होने से कुछ हुआ नहीं पर और नहीं तो विभाकर का थोड़ा अपमान ही होता यही समझकर कनक ने मुरलीधर को इस कार्यक्रम के चलते देने पर राजी करा लिया। मुरलीधर को कोई सन्तान नहीं थी। सुधा कुँवारी थी। दो एक बार मुरलीधर की दृष्टि में भी वह आई थी। यदि उनसे उनका विवाह हो तो कैसा हो?

बम्बई में एक महान साधु आये थे। मानव स्वभाव की एक विचित्रता ऐसी है कि अपने स्वार्थ के हेतु वह स्वभाव विरुद्ध भी अनेकों काम करने पर तैयार हो जाता है। आप ज्योतिष में विश्वास न रखते हो फिर भी रास्ते चलते चार पैसे देकर सामुद्रिक को अपना हाथ दिखा ही देंगे। आप मुख से कहते ही जायेंगे कि आप पर शनि की दृष्टि नहीं हो सकती फिर भी प्रत्येक शनिवार को चुपचाप महावीर जी का दर्शन करते ही रहेंगे। इसी प्रेरणा में बालक की लालसा वाले मुरलीधर ने भी इस साधु से परिचय किया। चारों ओर धूम थी कि इस साधु को वाक् सिद्धि की प्राप्ति है। यदि बात ठीक है तो उसका लाभ क्यों न उठाया जाय! इस वृत्ति से प्रेरित होकर मुरलीधर ने साधु को अपने यहाँ निमंत्रित किया।

"कनक, मोहन सेठ, मुरलीधर और गोरी बैठे थे। खड़ाऊँ की आवाज सुनाई पड़ी और साधु के स्वागतार्थ लोग खड़े हो गये। अत्यन्त सम्मान पूर्वक उन्हें ले आकर भीतर बैठाया। इस साधु के पास छड़ी छत्र या चँवर कुछ भी नहीं था। आसपास नौकरों या भक्तों की भीड़ नहीं थी। वह अकेले ही थे। गौरी की ओर साधु ने देखा भी नहीं यह देख कर मुरलीधर की श्रद्धा एकदम बढ़ गई।

बात करते-करते कनक ने सब का ध्यान साधु की शान्ति की ओर खींचा।

"गौरांगदासजी महाराज तो वचन सिद्ध हैं।"

"ना भाई। मैं तो केवल प्रभु का दास हूँ। बिना उनकी आज्ञा के एक पत्ता भी नहीं हिलता मेरी वचन सिद्धि कैसी?"

"यही तो आपका बड़प्पन है। पर आपको मुरलीधर सेठ का दुख दूर करने की कृपा करनी चाहिये।"

प्रतिष्ठावान् पुरुष यदि किसी बात में अपनी अशक्ति प्रकट करे तो कोई मानने को तैयार नहीं होता।

"परमात्मा सब का कल्याण ही करता है। मनुष्य किसी का दुःख

दूर कर सकता है यह सोचने से बड़ी भूल और दूसरी नहीं है। प्रभु का स्मरण करो वह सब का भला करता है।"

"लो सेठ साहब आपको महाराज का आशीर्वाद मिल गया।" कनक ने कहा।

कनक ने आशीर्वाद का अर्थ लगाया। किसी भी वाक्य में अन्ध श्रद्धा का भाव निकल सकता था। उसी क्षण गौरी के पास कोई वस्तु खड़खड़ाकर गिर पड़ी। गौरांगदास ने गौरी की ओर झट देखा। झपटकर वस्तु को उठाते हुये गौरी के नेत्र उनके नेत्रों से मिले और क्षणमात्र में पीछे हट गये। फ्रेम गिर पड़ा था। दोनों की श्रवण सृष्टि फ्रेम की झनकार से भर गई थी। दोनों की दृष्टि परस्पर के नेत्रों से बन्द हो गई थी। दोनों के हृदय की धड़कन बढ़ गई थी। साधु अपने मस्तक पर हाथ फेरते हुये अपनी भूलती हुई साधुता को स्मरण करने लगे और वहाँ से हटने की तैयारी करने लगे। किसी को इसमें किसी विशेषता का ख्याल तक नहीं हुआ। गौरी के सिवा सभी बाहर तक पहुँचाने गये। गाड़ी में बैठते ही कनक ने पूछा।

"महाराज सेठ के घर में पुत्र कब तक उत्पन्न होगा?"

"अरे भाई क्या मैं जादूगर हूँ ऐसा प्रश्न क्यों पूछते हो।"

"नहीं महाराज! पर कुछ आशा दें तो चित्त को शान्ति हो।" मुरलीधर ने अब स्वयं अपनी कथा कही।

"तो सेठ साहब यह समझ लें कि इस पत्नी से पुत्र नहीं होगा।" साधुता के विपरीत तिरस्कार के भाव से गौरांगदास ने कहा और गाड़ी चल पड़ी।

सब ने इसका अर्थ लगाया कि "महाराज ने दूसरा विवाह करने की सलाह दी है।"

कलेरिस को शिरीष का साथ बहुत अच्छा लगता था। वह अक्सर उसके साथ घूमती, कृषकों की झोपड़ी में जाती और अपनी उपस्थिति से उनके चित्त में स्वच्छता का भाव उत्पन्न करती। अंग्रेज पादरियों को यह बात पसन्द नहीं आई। जगत का सारा भेद जाति और रंग के भेद पर बना है। पर जाति और भिन्न-भिन्न रंग के नीचे दबा हुआ मानव तत्व इस भेद में भूलता जाता है। जातिअभिमान के नीचे दबा हुआ हिन्दू जब यह समझता है कि जाति भेद न मानने वाले अंग्रेज उस पर राज्य करते हैं तो उसका मिथ्याभिमान छूट जाता है। पर अंग्रेज तो उस पर राज्य करते ही हैं। इनसे अलग ब्राह्मण बनियें के हाथ का भोजन खा लेता है यह प्रश्न बहुत गम्भीर और विचारपूर्ण जान पड़ता है। गौरवर्ण पर अभिमान करनेवाला अंग्रेज यह समझ ले कि कृष्ण वर्णवाले कृष्ण के सुन्दरता की पराकाष्ठा हो गई थी तो उसे अपनी दृष्टि ऊँची करने का अवसर मिले और वह अपने ही नेत्रों से देखेगा कि कृष्ण वर्णवाले हिन्दुस्तानियों का रूप अंग्रेजों को भी लज्जित करनेवाला होता है। बुद्धि और सुन्दरता जाति के संकुचित पिंजड़े में बन्द हो जानेवाले पक्षी नहीं है।

परन्तु इन पादरियों का विचार और ही था। कलेरीस का शिरीष के साथ घूमना फिरना उन्हें असह्य अपमान कारक मालूम हुआ। उन्होंने कलेरीस को समझाया पर उनकी एक भी बात उसके ध्यान करने में नहीं आई। पार्सिवल को भी उन्होंने कहा पर वह पक्का व्यापारी उनके कहने में

नहीं आनेवाला था। वह खूब समझता था कि दोनों पादरियों की इच्छा कलेरीस से विवाह कर उसके धन से मौज उड़ाने की है। उसने समझा दिया कि कलेरीस की शादी ठीक हो चुकी है और अपने भावीपति के साथ शिरीष के साथ यदि घूमती है तो कुछ अनुचित नहीं है।

इधर शिरीष बड़ा बेचैन था। उसको अशोक की बीमारी के समाचार ने और भी बेचैन कर दिया। स्टीमर छूटने में दो दिन की देर थी। ये दो दिन कैसे कटेंगे? स्टीमर छूटने के पहले दिन की रात्रि उसे असह्य हो गई। रात्रि के अन्धकार में पूर्व एशिया का अपार मैदान भी अति भयानक के समान हो गया था। दूर के झोपड़े और कपास के खेत अन्धकार से अपना स्वत्व एक कर देते थे। केवल आकाश में झिलमिलाते तारे किसी प्रकार हीरों की उपमा पाते हैं यही स्पष्ट हो रहा था।

पर ऐसे सुखमय अन्धकार में निद्रा जैसी मानसिक अँधियारी को छोड़कर आकाश की ओर कौन देखेगा? शिरीष! उसे अन्धकार में सुख नहीं था। आकाश के झिलमिलाते हीरे उसे जला रहे थे। वह उठ कर अन्धकार में ही घूमने लगा। एक हद तक अन्धकार में भी रास्ता दिखाई देता है। जैसे-जैसे वह आगे बढ़ता गया उसे रास्ता मिलता गया। मन्द-मन्द वायु मन को शान्त करने के बजाय और भी व्यग्र बनाने लगी। एकान्त पाकर उसकी विचार धारा बड़ी तीव्र हो गई। नेत्रों के सम्मुख उसे अपना भूतकाल दौड़ता हुआ दिखाई देने लगा। आकाश के तारों द्वारा आतिशबाजी के समान ज्वलंत स्पष्टता से उसके जीवन के दृश्य चित्रित होने लगे।

इन सब दृश्यों को उसने देख लिया और उसकी व्यथा और भी बढ़ गई। किस लिये उसने घर छोड़ा? पत्नी छोड़ी। घर पर कुछ रोष था? जरा भी नहीं। पत्नीपर अविश्वास था? वह भी नहीं। तो फिर बुरा क्यों लगता है? पत्नीपर किसी प्रकार का अविश्वास क्यों हो गया? नियमित जीवन से थककर साहस चाहता था। उसके प्रेम की खींचतान में कोई

नवीन ही अनुभव, कोई नवीन ही असन्तोष पैदा हो गया और उसकी अनियमित खींचतान उसे प्रेम से दूर करने लगी। प्रयत्न में सौन्दर्य नहीं होता। जो जो दृश्य उसने अपने सामने देखे वह सब इसी के परिणाम स्वरूप थे। नहीं तो सोहिणी के साथ भी उसे चिढ़ हो सकती थी।

सोहिणी के नाम स्मरण से ही उसके हृदय में प्रबल, वेगपूर्ण झंझावात उठा। उसने अनुभव किया कि वह सोहिणी का प्रेमी है और प्रेमी वह कैसे न होता? क्या बिना प्रेम के ही उसने विवाह कर लिया था? कभी नहीं पर पहले कभी उसने इस प्रकार की जलन और प्रेमदाह का अनुभव नहीं किया था। क्या वह एक मनोविनोद में नहीं लगा था? क्या उसे अपने लग्न के समय ऐसा नहीं भास हुआ था। नहीं! यह सब उसे इसी समय अनुभव हो रहा है।

तो फिर सोहिणी बड़ी शीघ्रता से विजय की गई है? क्या वास्तव में पहले मैंने कभी यह अनुभव किया है कि मैं उसके बिना नहीं रह सकता। क्या कभी मुझे यह अभिमान नहीं हुआ है कि मैंने विवाह कर सोहिणी के साथ बड़ा भारी अहसान किया है? श्रोफ मैंने भूल की है। और सोहिणी ने तो सब कुछ छोड़ कर केवल मुझे ही चाहा। आत्मभोग तो उसी का था। मेरा नहीं सोहिणी! मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ। ठीक है तभी तो मैं तुमसे अलग हो सका।"

वह बड़ी वेदना का अनुभव करने लगा। वेदना में रुदन है। यह रुदन हृदय को ध्वनिमय बना देता है और यह ध्वनि कंठ से उतर कर कोई रसमय संगीत उत्पन्न कर देती है। अन्धकार का भी ध्यान किये बिना ही उसके कंठ से संगीत का स्वर निकल पड़ा।

"पीया बिन नाहीं आवत चैन।"

"धम।" बन्दूक का शब्द हुआ। गाना बन्द हो गया। क्लेरीस अपने कमरे में सोई हुई दूर से शिरीष का गाना सुनकर चकित हो रही थी। वह चौंक पड़ी। शिरीष ने आत्महत्या तो नहीं कर ली?

उसने पिता को उठाया। उन्हें भी निद्रा में किसी अशुभ संगीत का भास हुआ जो यकायक बन्द हो गया था। दोनों प्रकाश लेकर बाहर निकले और जिधर से आवाज आई थी उसी ओर को चलने लगे। थोड़ी दूर पर तीन मनुष्यों का भास हुआ। पास आने पर शिरीष बैठा दिखाई पड़ा। उसके सामने सैला युरोपियन की गरदन दाबे खड़ा था। युरोपियन के के हाथ में बन्दूक थी।

"इस गोरे ने आप पर बन्दूक चलाई है। सैला ने पूछा "तीन-चार दिन से मैं देख रहा हूँ कि यह आपके पीछे लगा है। मैं चेहरा देख कर भाव जान लेता हूँ। आज मैंने समझ लिया था कि यह कुछ गड़बड़ करेगा और वही हुआ अब कहिये तो इसी पत्थर पर पटक कर इसकी जान ले लूँ?"

सैला इस समय बिल्कुल रुद्ररूप हो रहा था। मानव सभ्यता की प्रथम सीढ़ी की जिन्दगी में बसनेवाले ग्रामीण को खून कर देना आसान जान पड़ा। सैला अंग्रेज से कहीं अधिक बलिष्ठ और लम्बा-चौड़ा दिखाई देता था उसके पञ्जे में दबा हुआ पादरी टस से मस नहीं हो सकता था और उसके सामने बँधा-सा मालूम पड़ता था।

"नहीं सैला। छोड़ दे इसे।" शिरीष ने कहा।

"फिर दूसरी गोली खाने के लिये छोड़ दूँ। यह तो कहिये कि मैंने ठीक समय पर आकर छुड़ा दिया नहीं तो वह तो ठीक चला चुका था। इसे छोड़ना ठीक नहीं।"

"तू तो एकदम मूर्ख का मूर्ख ही रह गया! मैंने उस दिन क्या सिखाया था? उसके पास से बन्दूक छीन के बस।"

सैला ने पादरी से बन्दूक छीन ली और जोर से एक ऐसा धक्का दिया कि दूर जाकर मुँह के बल गिर पड़ा। कलेरीस और पासिवल ने तमाम बातें पूँछी। न जाने कैसे पादरी ने अन्धेरे में शिरीष की ओर निशाना लगाकर गोली छोड़ी उसी समय सैला ने आकर उसे धक्का दे दिया। एक

क्षण का प्रश्न था। धक्के से निशाना चूक गया और शिरीष के वक्ष पर लगने वाली गोली उसके हाथ को छीलती हुई निकल गई। कलेरिस ने शिरीष का हाथ देखा। रक्त बह रहा था। दूसरे हाथ से शिरीष उसे दबाये था और वह हाथ भी रक्त से भर गया था। कलेरीस ने अपने रूमाल की पट्टी बाँध दी। सैला ने शिरीष को उठा कर चलना चाहा। शिरीष हँसने लगा।

"क्या मुझे उठा ले चलने का हौसला है। क्या मुझे......"

"हाय मालिक आप क्या कह रहे हैं?" सैला ने शिरीष का व्यंग समझते हुये कहा "आप से चला भी तो नहीं जायगा। हिलने की भी तो ताकत नहीं रह गई है। आप फूल जैसे तो हैं मुझे कुछ भी नहीं मालूम होगा।"

शिरीष फूल जैसा तो नहीं था तथापि सैला के समान डीलडौल भी उसका नहीं था। सुव्यवस्थित वस्त्रादि के कारण उसका सुडौल शरीर सैला जैसा विशाल नहीं दिखाई देता था। वह सैला का सहारा लेकर चलने लगा। इस प्रकार का प्रसंग उसके जीवन में पहली बार आया था। शरीर से रक्त निकल जाने के कारण शक्तिहीन होने का प्रथम बार अनुभव हुआ। घर पहुँचते-पहुँचते उसे कुछ ज्वर हो गया। वह सो गया। पर सोते समय उसने कलेरीस और पर्सिवल से प्रार्थना की।

"चाहे जैसे हो मुझे कल स्टीमर में अवश्य बैठा देना।"

"ऐसी दशा में आप कैसे जाइयेगा। और भी तबियत खराब हो जायगी।"

"मैं जाने पाऊँगा तभी मुझे आराम भी होगा। जब तक यह विश्वास देंगे तब तक मैं नहीं सो सकूँगा।"

"कल आप अवश्य जाइयेगा। डाक्टर कहेगा तो मैं भी चलूँगी।" कलेरीस ने कहा।

"और डाक्टर चाहे कहे या न कहे पर मैं तो जरूर ही चलूँगा।" शैला ने कहा! शिरीष सभी कृषकों की आत्मा में प्रवेश कर गया था।

उसे निद्रा आ गई। सारे विचार लोप हो गये! दो घड़ी पहले जो दृश्य बिजली की दीपमाला के समान झिलमिला रहा वह लोप होता गया और पहले उसके कि वह कुछ जान पाए सभी कुछ निद्रा में विलीन हो गया।

—३८—

निद्रा टूटने पर शिरीष ने अपने सामने दो व्याकुल नेत्र देखे मानों वे उसके जगाने की ही प्रतीक्षा करते रहे हों। ये नेत्र गँवार छैला के चेहरे में लगे थे।

"छैला?"

"नहीं! मालिक! आप उठ गए!"

"हम लोग कहाँ हैं।"

"स्टीमर में हैं।"

"सच?"

"मैंने आप से कभी भी झूठ कहा है!"

"तुम क्या करने के लिये साथ आये!"

"अरे यह कहिये कि सब को समझा कर रोक दिया नहीं सभी साथ आ रहे थे।"

"छैला! तेरा नाम किसने रखा है?"

"मेरी दादी ने।"

"कितना अच्छा नाम रखा है। यदि सभी के नाम ऐसे ही यथा गुण हो तो कैसा?"

"मालिक! यह नाम तो मैंने खो दिया था। वह तो आपने आकर फिर से दिलाया है। जब मैं छोटा था तब मेरी दादी मुझे बहुत खिलाती

थी। एक बार उसने कहा था कि बेटा नाम तो है पर इसे कभी खोना मत पर बेटा ने तो नाम खोदिया था। सैला की बुराइयों की सीमा नहीं थी। उसे तो आपने आकर पुकारा है। मेरी दादी स्वर्ग में बैठी आपको आशिर्वाद देती होगी।" वह और आगे न बोल सका!

शिरीष के मस्तक पर किसी का छोटा सुन्दर हाथ पड़ा और साथ ही किसी का मीठा स्वर सुनाई पड़ा।

"अधिक न बोलिये नहीं कमजोरी आ जायगी।"

शिरीष ने सर घुमाया तो देखा कि कलेरिस का सुन्दर मुख उस पर झुका है। वह थोड़ी देर तक चुप रहा और आँखे बन्द कर पड़ा रहा। पर थोड़ी ही देर बाद उसके बन्द नेत्रोंसे आँसू निकलने लगे। कलेरीस ने उन्हें अपने रूमाल से पोछ कर कहा—

"शिरीष! क्या हो गया है!"

"कुछ नहीं।"

"कहो न! मुझसे क्यों छिपाते हो!"

"मैं सोचता हूँ कि मनुष्य अच्छा है! कभी परोपकार का मुझे गर्व था। जैक को मैने पढ़ने में थोड़ी सहायता दी थी तो सोचता था कि बड़ा भारी काम किया। एक बार मुझे यह भी पापी विचार आया था कि इसे दी हुई सहायता किसके काम आवेगी? ईश्वर ने मेरा गर्व दूर कर दिया। जैक की प्रियतमा मेरी रक्षा कर रही है। परोपकार का छिपा अभिमान करने की मुझे सजा मिली और मैं नम्र बनाने को बाध्य हुआ हूँ। संसार घृणा से परे भी अच्छा है या नहीं!"

कलेरीस कुछ बोली नहीं। शिरीष के मस्तक पर चुपचाप हाथ फेरती रही। थोड़ी देर बाद शिरीष पुनः बोल उठा।

"मुझे कोई भाई नहीं था तो वह सैला मुझे मिल गया और बहन नहीं थी तो तुम मिली हो।"

"मालिक ! अब मैं आपको कुछ नहीं बोलने दूँगा। कमजोरी बढ़ जायगी" सैलाने अधिकार पूर्वक कहा।

"अच्छा भाई सैला अब मैं सो रहता हूँ।" शिरीष ने पुनः आँखें बन्द कर ली। उसका हृदय एक प्रकार सन्तोष अनुभव कर रहा था। संसार के मनुष्य संयोग के आधीन हैं। मानव हृदय का वास्तविक बन्धन प्रेम और परोपकार ही में है। मनुष्य अपने जन्म से ही प्रेम पाता है। अपने बचपन से पाये हुये उपकारी का यदि वह स्मरण करे तो उसे संसार में घृणा हो ही नहीं सकती।

शिरीष का हृदय इन्हीं विचारों से प्रफुल्लित हो रहा था। उसने एक दूसरे भी सुख का अनुभव किया। उसी की चिन्तामें रत सोहिणी ही उसके स्वप्न की एक प्रधान केन्द्र थी। लापरवाह शिरीष बराबर यह समझता था कि सोहिणी का प्रत्येक कार्य अपने पति के सुख के लिये है। अपने बड़प्पन का जरा भी परवाह न करने वाली सोहणी ने कैसी मोहक छटा से शिरीष को परवश बना लिया था। यह सब दृश्य उसके स्मृति पथ पर अंकित हो गये। एक बार शिरीष को चोट लग गई थी जिसके कारण उसे दो-एक दिन तक पड़े रहना पड़ा था। उन दिनों बिना आराम किये रात दिन सोहिणी ने जो उसकी सेवा की थी उस पर वह कितना हँसता था। वह कहता—

सोहिणी यह तो जरा-सी चोट लग गई है तो तुमसे यह दवाखाना और अस्पताल ही खोल रक्खा है। अगर अधिक चोट लग जायगी तो न जाने क्या कर डालेगी।

"अधिक चोट लगने से पहले ही मैं मर जाऊँगी।" शिक्षित युवती का नारी हृदय पुकार उठा। उसकी बुद्धि को और कोई उत्तर नहीं मिला। शिरीष इतने ध्यान में डूब गया था कि मानों अभी ही सोहिणी ही उसके चोट पर हाथ फेर रही है। ध्यान में डूबे हुये शिरीष ने सोहिणी का हाथ लेने के लिये अपना हाथ उठाया हाथ उठाते ही उसे दर्द हुआ।

"अरे रे हाथ न उठाना।" एक मीठा स्वर सुनाई पड़ा। आँख खोला तो देखा कि कलेरीष उसके मस्तक पर हाथ फेर रही है।

स्टीमरमें बड़ी शीघ्रता से वह अच्छा होने लगा। बम्बई पहुँचते पहुँचते यह चलने फिरने योग्य हो गया। उसके स्वागत के हेतु कान्ता, वीणा, लालाजी और विभाकर जेटी पर उपस्थित थे। स्टीमर से उतरते ही उसने व्याकुलता से अशोक का समाचार पूछा।

"अशोक अब बहुत अच्छा है और वायु परिवर्तन करने नर्मदा किनारे गया है।" किसी ने उत्तर दिया। शिरीष को आशा थी कि वह उतरते ही मोहिणी और अशोक को देखेगा। उसे कुछ निराशा-सी हुई कलेरीस अपने पिता के किसी मित्र के यहाँ जानेवाली थी।

"अरे लालाजी तुम्हारे माथे में यह क्या हुआ था।" सूखे घाव का निशान देख कर शिरीष ने पूछा।

"आपके प्रिय मित्र की यादगारी है।" लाला जी बोले।

"अच्छा।"

"हाँ आपके कनक भाई है न। उन्होंने मेरी पूजा कराई थी। वे भूलो गये कि कि अपने यहाँ मैंने उन्हें कितनी मजा कराई थी?"

"पर आखिर हुआ क्या?"

"अरे सब पैसे का जंजाल है। इस दुनिया से अगर पैसे का झगड़ा दूर हो जाय तो सारी तकलीफें दूर हो जायें।" लालाजी बोले। अपने मत का मेल इस अड़धंग लाला से मिलते देखकर शिरीष को हँसी आ गई। लालाजी बोलते गये। "मुनीमजी ने कनक भाई की जायदाद लिखा ली है। अशोक को देखने जब हम लोग आये तो कनक भाई ने आकर साहब को समझाया कि रुपये का सूद न लिया जाय। साहब मान गये और मुनीमजी को बुलाकर दूसरा कागज लिखाने को कहा। मुनीमजी पहले त नहीं माने। उनको तो एक पैसा भी जाता है तो जान निकलने लगत

है। पर उन्हें मानना पड़ा और दूसरा कागज लिखा गया एक दिन सब कागज लेकर एक पारसी वकील के यहाँ जाना था। मुनीमजी उनका घर नहीं जानते थे। समुद्र के किनारे रहते थे। साहब ने कनक भाई के साथ जाने को कहा। मुनीमजी मुझे भी साथ ले चले। बम्बई में बिना मुझे साथ लिये मुनीमजी कहीं नहीं जाते। वकील साहब नहीं थे उनसे भेंट नहीं हुई। शाम तक हम लोगों ने इन्तजार किया, फिर लौटे। रास्ते में अन्धेरे से चार पठानों ने मुनीमजी को लूटने के लिये हमला किया पर उन्हें मालुम नहीं था कि लालाजी भी साथ में हैं। चारों को मैंने वह हाथ दिखाया कि बस। तुम्हारे कनक भाई तो न जाने कहाँ भाग गये। मुनीम जी का कहना है और ठीक ही है कि कनक ने ही कागज छीनने को पठानों को तैयार किया था। इसी झगड़े में जरा चोट लग गई।"

विभाकर बन्दर पर रुक गया। उसने शिरीष का सामान आदि लद-वाने का काम किया। एक मोटर में शिरीष, लालाजी और माया बैठे तथा एक में कान्ता, वीणा और कलेरीस बैठी! कलेरीन के उसके स्थान पर उतार कर सब लोग कुन्दनलाल के यहाँ आये। रास्ते में शिरीष ने लालाजी से और समाचार पूछा।

"एक नया समाचार यह है कि वीणा का ब्याह उस चित्रकार से होने वाला है।"

"अच्छा!" चकित होकर शिरीष ने पूछा "वह कैसे?"

"और दूसरा यह कि डाक्टर और सोहिणी भाभी में खूब झगड़ा हुआ है।"

"अरे रे यह क्यों लाला जी!"

"भाभी का स्वभाव तो आप जानते ही हैं जिसे हो उसी को बनाने लगती हैं। वह जो लक्ष्मी है उसीसे सुकुमार की शादी करने का उधन लेकर बैठी हैं। भला यह कैसे हो सकता है! चाहे किसी की भी लड़की हो पर गाने बजाने का धन्धा तो किया ही है।"

"वह किसकी लड़की है।"

"हां हां वह तो विभाकर की बहन बनी बैठी है ? यह भी तो एक अन्धेर ही है। सुकुमार क्या बुरा कहता है कि व्याह नहीं करेगा।"

कुन्दनलाल के यहां शिरीष की बड़ी आवभगत हुई। उसे बहुत बातें करनी पड़ीं। वीणा उससे सारी बातें पूछने लगी। शिरीष ने भी अपना सारा हाल कह सुनाया।

"आपकी कथा से आपका बहुत-सा चित्र बना कर दूँगी। देखिये मैंने कितने चित्र बनाये हैं।" वीणा ने अपना चित्र संग्रह दिखाया।

"ओ हो तुम तो चित्रकला में प्रवीण हो गई हो। किससे सीखा है ?" शिरीष ने जान कर भी पूछा।

"मजाक मत कीजिये हाँ।" अपराधी को चारो ओर चौकी पहरा दिखाई देता है।

"मजाक नहीं मुझे बताओ तो मैं भी सीखने आऊँ।"

यद्यपि नाम हृदय में बस रहा था तथापि उसका उच्चारण नहीं किय जा सकता। इस समय वीणा इसी ज्ञात यौवन की दशा में पड़ी थी। वह कनखियों से अपने चिढ़ाने वाले जीजा के सामने देखने लगी।

"अच्छा जाने दो मत कहो आओ पहेली बूझा जाय। मेरी एक पहेली बूझनी होगी।"

"हाँ यह मुझे पसन्द है। मैं बूझ लूँगी।"

"और न बूझो तो ?"

"तो जो कहियेगा करूँगी।

"तब मैं जो कहूँगा वही तुम्हें करना होगा ? है स्वीकार ! और तुमा जीतोगी तो मैं तुम्हें एक रंग का बक्स दूँगा।"

"हाँ स्वीकार है पूछिये।"

"अच्छा तो सुनो। हिन्दुस्तान का एक शहर है। उसमें चार अक्षर है। पहला और चौथा मिलाकर बहादुर का अर्थ है। चौथा और पहला

मिलाकर सूर्य का तात्पर्य है। तीसरा और पहला मिलाने से कविता लिखने वाला बनता है तथा दूसरा और पहला मिलाने से भाग्य का बोध होता है। समझा! बताओ कौन सा शहर है?" V. Good question

कुछ सोच कर वीणा बोली। "जाइये आप तो ऐसी बात कहते हैं कि कुछ कहते नहीं बनता।"

"तो फिर मेरी शर्त को मञ्जूरी करो। मैं जो कहूँ उसे करो।"

"मैं नहीं पूरा करती जाइये।"

हँसते-हँसते शिरीष शशिरेखा के पास फरियाद करने गया कि वीणा अपनी शर्त नहीं पूरा करती।

शशिरेखा बोली "यह सोहिणी की ही बहन है न?"

अपने अनुकूल सुधार धारण करनेवाले मुरलीधर आधुनिक विचार से लाभ लेकर एक के उपरान्त दूसरी पत्नी करने को तैयार हो गये। गौरांगदास महाराज के आशीर्वाद और उसके तिरोहित रूप से की हुई सूचना के अनुसार उन्होंने कनक को इस कार्य्य में लगा दिया और उसके जरिये सुधा की मँगनी भी कराई। उन्होंने कनक को इसके लिये अपने लाभका कुछ भाग देने के लिये कहा। परन्तु वह सब कार्य की सफलता पर निर्भर था। मोहन सेठ भी अपना महत्व घट जाने के कारण कनक के मददगार बन गये थे।

विभाकर ने मकान बदल दिया था। अब उसे मोहनसेठ की झिड़कियां सुनने की अवश्यकता नहीं थी। एक दिन कनक ने उसे मोहन सेठ के घर बुलाया। उसकी वहां जाने की इच्छा न थी तो भी शिष्टाचार के विचार से प्रेरित होकर वह गया। इस बार उसे खड़ा रखने की जरूरत नहीं थी। और इस बार यदि उसके बैठने को न भी कहा जाता तो भी वह बैठ ही जाता। पैसे के अनुसार व्यवहार भी बदलता जाता है। मोहनसेठ और कनक दोनों ने उसे आराम से बैठाया।

सेठानी दवा की नई शीशी खोल रही थी। पता नहीं वे दवाएं या शीशी के आकर्षक आकार से बड़ी प्रसन्न थी। उनकी स्थूलता बढ़ती जाती थी और उनके अनुसार दर्द भी बढ़ रहा था, तदनुसार दवा भी बढ़ती जाती

थी। उन्हें कैसी तकलीफ थी यह उन्हीं को मालूम था। जिस किसी बीमारी का नाम वे सुनती उसी के लक्षण उन्हें अपने में दिखाई पड़ने लगता। उनके पास इतनी आकर्षक शीशियां इकट्ठी हो गई थीं जिनसे बड़े-बड़े दो तीन दवाखाने रखे जाँय।

मोहनसेठ बोले "देखो विभाकर अपना पुराना सम्बन्ध ख्यालकर मैं तुमसे तुम्हारे पास काम की एक बात कहता हूँ।" विभाकर के साथ मोहन-सेठ का कैसा सम्बन्ध था इसे विभाकर कभी भूल नहीं सकता था। किराये के लिये किये गये तकाजे अभी ताजे ही थे। सुकुमार ने चुपचाप छः महीने का किराया दे दिया था इसी से वह रह सका था नहीं तो तुरन्त मकान खाली कर देना पड़ता।

"हाँ हाँ कहिये क्या है?" विभाकर ने पूछा।

"तुम्हारी बहन अब विवाह योग्य हो गई है न? कनक ने बात आगे बढ़ाई।"

"सुधा की बात कर रहे हैं?"

"हाँ हाँ।"

"अभी तो बचपन से निकल रही है बारह-तेरह वर्षकी की अवस्था क्या विवाह की अवस्था है?"

"तुम समझते नहीं? अच्छी जगह मिले तो बिना कुछ सोचे विवाह कर देना ही ठीक होता है!" मानो कनक ने बड़ी भारी दुनियादारी की बात की।

"मैं क्या कर सकता हूँ। यह तो सुधा की इच्छा पर है।"

"मैं जहाँ कहता हूँ वहाँ सुधा की इच्छा हो जायगी बड़ा-सा घर, धन, गाड़ी, मोटर वगैरह देखेगी तो कभी अस्वीकार नहीं करेगी।"

"क्या उसे घर या मोटर मे विवाह करना है! आप किसकी बात कर रहे हैं?"

"उनका नाम तुम भी सुनोगे तो अस्वीकार नहीं करोगे। मुरलीधर को पहचानते ही हो ?"

"क्या कहा ?" विभाकर गर्ज उठा "उनके किसी भी सगे सम्बन्धी के साथ मैं अपना सम्बन्ध नहीं करना चाहता।"

"उसके सगे सम्बन्धी की बात नहीं है। खुद उन्हीं के साथ विवाह करना है।" मोहनसेठ बोल उठे।

"मोहन सेठ। क्या तुम्हारा सारा व्यापार नष्ट हो गया है जो यह रोजगार आरम्भ किया है ? मुरलीधर को शरम नहीं आती। उनकी पहली स्त्री अभी मौजूद है फिर भी ऐसा विचार रखते हैं यह कहाँ की मनुष्यता है ?"

"मुरलीधर को कोई सन्तान नहीं है न भाई।"

"यह उनकी किस्मत है। मेरे साथ फिर कभी इस सम्बन्ध की बातें मत करना।"

"देखो विभाकर अवसर न खोओ मुरलीधर कितने बड़े आदमी हैं यह जानते हो। तुम्हारे ऊपर यदि कोई बात कर देंगे या जोर दबाव डालेंगे, तो क्या करोगे ?"

"मुरलीधर से कहना कि जोर जुलूमका परिणाम देखना हो तो अपनी पत्नी का प्रेम देखें। मैं और कुछ कहना सुनना नहीं चाहता।" कह कर विभाकर तिरस्कार पूर्वक उठ कर चला गया।

शीशी खोलती हुई सेठानीको बड़ी हँसी आई। बोली—"कैसा मिज़ाज है !" कनक और मोहन सेठ को अपनी वाक् शक्ति पर बड़ा विश्वास था पर आज वे चकित हो गये और मुरलीधर के यहां गये। उनसे सारी बातें कह कर अन्त में कहा —

"अरे उसने तो यहाँ तक कह दिया कि जोर जुल्म देखना हो तो गौरी कुँवर का प्रेम देखें।"

"ऐसी बात !" गुस्से से मुरलीधर खड़े हो गये। अपनी युवावस्था में एक प्रतिद्वन्दी को नतमस्तक करने की युक्ति निष्फल हो गयी थी और अब उसके पुत्र ने फ्रेम देखने का ताना दिया है। फ्रेम में है क्या ? वे एकदम दौड़ते हुये गौरीकुंवर के कमरे में पहुँच गये। गौरी पैर फैलाये एक सुन्दर आसन पर बैठी थी। उसने अपनी दृष्टि उठाई और फिर हाथ की पुस्तक पढ़ने लगी।

"मैं आया हूँ और तुम्हें खबर नहीं ?" अत्यन्त क्रोध से सेठ ने पत्नी की लापरवाही देख कर कहा।

"क्यों, क्या है। मैंने देखा है कि आप पधारे हैं।"

"इसी तरह देखा जाता है ? मेरी ओर देख फिर पुस्तक पढ़ने लगी।"

"तो फिर और क्या करूं ?"

किसी प्रेम के छिछोरपन पर या उसके इस प्रकार के व्यवहार पर और क्या उत्तर दिया जा सकता है ?

"तो फिर क्या करूँ ? वहाँ फ्रेम देखा करो ?" पैर पटकते हुए मुरलीधर बोल उठे।

"कैसा फ्रेम !" गौरी ने निश्चल नेत्रों से उनकी ओर देखकर पूछा। गौरी के ऐसे नेत्रों से मुरलीधर सदैव भयभीत रहते थे। वह उस पर शायद ही कभी क्रोध करते थे। पर प्रेम के अतिशय प्रदर्शन के अन्त में गौरी के नेत्रों में मुरलीधर को क्रूरता और भयंकर निश्चलता का भास हुआ। उसके प्रेम प्रदर्शन की यह सीमा थी। आज भी वही नेत्र बने। पर आज ये और भी अधिक क्रोधित हो गये।

"कैसा फ्रेम मानों जानती ही नहीं। उस विभाकर ने दिया वही। लाओ कहां है वह किसका चित्र है ?"

"यह जान कर तुम्हें क्या करना है ?"

"मैं जानना चाहता हूँ कि तुम कितनी भली औरत हो ?"

[illegible]

व्यर्थ हो गई।

[illegible]

“कारण ?”

[illegible]

मिल जायगा।”

[illegible]

"पर तुम्हारी इस जिद का कारण क्या है ?"

"ऐसी बात है ! तो फिर तुम "तुम्हारी" शब्द पर जोर क्यों देते हो ? जो तुम्हें अच्छा लगे करो ! अब यदि मैं तुम्हारे साथ कभी बोलूँ तो ...."

"अरे रे सोहिणी भाभी पैर पड़ता हूँ कसम न खाना । मुझे बोलना नहीं आता यह तो तुम जानती ही हो ? पर भाभी मेरे ऊपर ऐसी जबर्दस्ती का क्या कारण है ? जबरन हाँ कहला देने से क्या फायदा ?"

"मैं नहीं समझती कि डाक्टर सुकुमार अपना वचन भंग कर सकते हैं ।"

"कैसा वचन भंग ? यह सब तुमसे किसने कहा है ?"

"तुमने लक्ष्मी ने वचन नहीं दिया था कि उसके साथ तुम विवाह करोगे । या तो वह झूठी है या तुम झूठे हो ।"

नर्मदा की एक टेकरी पर सन्ध्या समय सुकुमार और सोहिणी बातें कर रहे थे । गौरांगदास के आश्रम में अशोक को वायु परिवर्तन के लिये लोग ले गये थे । सोहिणी, सुकुमार और धर्मपाल तीनों अशोक के साथ आये थे । उसकी तबियत बहुत सुधर गई थी । नास्तिक के समान डाक्टर सुकुमार को भी विश्वास हो गया कि उसकी दवा से अधिक धर्मपाल की आस्था ने अशोक को चंगा किया है । आज गर्मी भी बहुत थी । नर्मदा

तीर की शीतलता भी आज की अतीव उष्णता को नहीं दूर कर सकी। सन्ध्या होते ही सोहिणी और सुकुमार आश्रम के बाहर टहलने लगे। उसी समय दोनों के बीच उपरोक्त बातें हो रही थीं।

"अब इसी को अँगुली धरते पहुँचा पकड़ना कहते हैं। साधारण-सी बात का नाम वचन देना हो गया।"

"क्या बात किया था? लक्ष्मी बहन तो साफ कहती है कि सुकुमार ने वचन दिया था और इसी वचन के आधार पर ही तो उसने सबको छोड़कर केवल तुम्हारे साथ पत्र व्यवहार रक्खा था।"

"वह सब पत्र मैं तुम्हें दे देता हूँ तुम देख लो कि एक में भी लक्ष्मी ने इनमें प्रेम की बात लिखी हो।"

"क्या बात हुई थी तुमसे?"

"बात में कुछ सार नहीं है। एक दिन लक्ष्मी के साथ के गवैये ने कहा कि लक्ष्मी तो विवाह कर घर बसाना चाहती है। इस पर कनक हँसा और बोला कि तुम पागल हो गये हो इसके साथ कौन विवाह करेगा? गवैये कहा कि यही तो इन्हें अफसोस है। लक्ष्मी का चेहरा उतर गया। मुझे दया आई और मैंने कहा कि क्यों नहीं करेगा। कनक बोला "बेवकूफ तुम्हें अकल भी है लक्ष्मी के साथ विवह करनेवाले की क्या इज्जत होगी? मैंने लक्ष्मी की ओर देखा तो ऐसा लगा कि शायद कोई बाजा खींच कर कनक को मार बैठे।"

मैंने कह दिया "इज्जत का प्रश्न है तो मुझे उसकी आवश्यकता नहीं है। मैं इसके साथ ब्याह करने को तैयार हूँ। इसी को यदि वचन कहना तो कहो, पर वह प्रसंग ही दूसरा था।' 'सुकुमार ने कहा।

"फिर लक्ष्मी ने कुछ कहा नहीं?"

"उसने तो यही कहा कि वह किसी की प्रतिष्ठा नष्ट नहीं करना चाहती जब उसके माता पिता का पता लगेगा और उसका चरित्र शुद्ध रहेगा तभी वह लग्न धरेगी। तो फिर अब क्या?"

"क्यों नहीं उस समय तैयार थे तो फिर अब क्यों नहीं हो ?"

"अब उसके माता पिता मिल गये हैं। उसकी प्रतिष्ठा हो गई है। उसे मुझसे अच्छा घर तलाश करना चाहिये। उस समय उसका ठिकाना नहीं था तो मैं तैयार था। अब तो उसे सभी ठिकाना है अब मेरे गले पड़ने का क्या कारण।"

"वह तो उसकी इच्छा की बात है। पर तुम तो बँध चुके हो।"

"देखो भाभी मुझे दुखी न करो मेरा पेशा ऐसा है कि विवाह करना मैं अपने वंशजों का अपमान समझता हूँ। फिर मेरे में रस नहीं, कला नहीं, संगीत नहीं और लक्ष्मी तो शिरीष के कथनानुसार एक सजीव कलाकार है। कला के सामने मैं तो अन्धा बना रहता हूँ। यह योग ठीक नहीं मुझे कहीं नश्तर देना हो और लक्ष्मी को गाने की स्फुरर्णा हो तो फिर भाग्य ही का सहारा होगा।"

मैं लक्ष्मी से वचन दिला दूँगी कि वह कभी गाएगी नहीं। तब तो तुम्हें कोई रुकावट नहीं होगी ?"

"पर इससे क्या फायदा कि हर एक आदमी विवाहित ही हो ?"

"हो फायदा या नहीं तो भी करो। तुम डाक्टर हो तुम्हें क्या समझाना।"

"नहीं भाभी मुझे आग्रह न करो" सुकुमार ने कहा—उस समय सोहिणी की आँख ग्रीष्म की लम्बी संध्या के धुँधले प्रकाश में आती हुई किसी नाव पर लगी थी। सुकुमार हँसा और बोला—

"तुम भी कैसी हो भाभी बात मुझसे करती हो और नजर कहीं और लगी है।"

"अब तुम्हारे साथ बहस करना बेकार है अब मुझे न तुमसे बोलना है और न तुम्हारी ओर देखना है। अब तुम्हारा सारा हिसाब साफ करती हूँ। यह नाव किनारे आने से पहले स्वीकार करते हो या नहीं ?"

"मैं स्वीकार न करूँगा तो क्या करोगी ?" सुकुमार ने पूछा।

"तुम्हारे मुख से नहीं निकलते ही एक धक्के से तुम्हें इस करारे में फेंक दूँगी विचार कर लो मैं अवसर देती हूँ।" सोहिणी की इस अन्तिम धमकी में अतुल बल था। यद्यपि विशाल शरीर वाले डाक्टर को धक्का देकर गिराना सोहिणी के लिए अशक्य था तथापि जिस भाव से यह बात कही गई थी उसने सुकुमार को लाचार कर दिया।

"भाभी जुल्म कर रही हो!"

"हाँ या नहीं के सिवा मैं और कुछ नहीं सुनना चाहती।" सोहिणी की अधीर दृष्टि और बातें करने का अवसर ही नहीं देना चाहती थी।

"जहाँ मार कर मुसलमान बनाना हो वहाँ और क्या हो सकता है?" सुकुमार बोला।

"यह सब बातें फिर कभी करना इस समय तो हाँ कहो।" नाव तेजी से किनारे पर आ रही थी।

"स्वीकार है।" निरुपाय होकर डाक्टर ने कहा। सोहिणी ने प्रसन्न हो कर उसकी ओर देखा।

"मैं जानती थी "मन में भावे सर हिलावे" पर तुम्हें तो बात दूसरे के सर डालना था खुद कैसे कहते। मैं तुम्हें खूब समझती हूँ।"

"राम! राम!! मुझे यदि किसी का भय है तो वह तुम्हारा ही है और वह भय सत्य है।" सुकुमार बोला।

नाव किनारे आकर रुकी। आज शिरीष आने वाला था। ये दोनों उसकी राह देख रहे थे। दोनों ने शिरीष को उतरते देखा। सोहिणी का हृदय उछलने लगा। अभी बड़ी गरमी थी। शिरीष तेजी से टीले पर चढ़ गया। पीछे पीछे पेटी लेकर सैला आ रहा था।

"आज तो बड़ी गरमी है।" शिरीष बोला।

"हां मालिक आज तो पानी बरसना चाहिए।"

टेकरी के तंग राह पर सुकुमार और सोहिणी खड़े थे। पर किसी के मुख से कोई शब्द नहीं निकला। कितने ही क्षण बिना शब्द के ही गुंजा-

यमान रहते हैं। वहाँ शब्दों का स्थान ही नहीं रहता। तीनों एक दूसरे के सामने देखते खड़े थे। एक क्षण बीता, दूसरा बीता, तीसरे क्षण, सोहिणी ने चुपचाप अपनी साड़ी के छोर से शिरीष के मस्तक पर चमकते श्रमबिन्दु पोंछ दिये। सैला सोहिणी को देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसे शिरीष का निःसंकोच सेवा करनेवाले सभी प्रिय लगते थे।

"अशोक अब बहुत अच्छा है।" सुकुमार का मुह खुला। एक बार शब्द आने चाहिये फिर तो सभी बोलने लगते हैं। सोहिणी बोली—

"और सुकुमार ने लक्ष्मी के साथ विवाह करना स्वीकार किया।"

"अच्छा।" चकित होकर शिरीष ने पूछा "कल तक तो मैं यह सुन रहा था कि सुकुमार ने हठ किया है कि वह विवाह करेगा ही नहीं।"

"यह सब इन्हीं भाभी का काम है। मैं तो कुछ भी नहीं जानता।"

शीतल पवन मन्द मन्द बहने लगी। संध्या रात्रि में परिवर्तित हो गई। तारे अस्पष्ट चमकने लगे। क्षितिज पर दूर एक काला बादल उठता हुआ दिखाई पड़ा।

शिरीष आश्रम में आया और सबसे मिला। गौरांगदासजी ने हँसकर आशीर्वाद दिया।

"शिरीष तेरा स्मित गया नहीं है। भगवान कृष्ण ने वर्तमान रक्खा है।"

धर्मपाल ने पास बुलाकर बैठाया और इस प्रकार मस्तक पर हाथ फेरने लगे जैसे कुछ हुआ ही नहीं है। अशोक नीचे से शोर करता हुआ आया।

"दादा जी भाई आये हैं" उसने पिता को दादा जी के पास बैठे देखा।

हवा तेजी से चलने लगी। जोर से बँगले के किवाड़ भिड़कने लगे।

"क्या पानी बरसना चाहता है क्या ?" धर्मपाल ने पूछा।

बातचीत में रात बढ़ गई। हवा की तेजी देर तक थी। वृक्षों से पवन सनसनाती हुई चल रही थी मानो मद भरे मतंग के समान सभी से भिड़ने को तैयार हो।

सोहिणी कब से अगासी में आकर खड़ी थी। तीर्थधाम में धर्मशाला बनवाते समय धार्मिक पुरुष शायद वृद्ध बन जाते हैं। युवकों के लिये ठिकाना करने की शायद उन्हें चिन्ता ही नहीं रहती। छोटे से बँगले में कोई एकान्त स्थान भी नहीं था। केवल हवा के कारण अगासी को सभी ने छोड़ दिया था।

इस समय सोहिणी विचित्र भावों का अनुभव कर रही थी। कृष्णाभिसारिका की भाँति वह चुपके से अगासी में आई और विरहिणी की उत्कण्ठा से अपने प्रियतम की राह देखने लगी। वृक्षों को पृथ्वी से हटा देनेवाली तेजवायु उसके साड़ी और बालों को झुला झुला रही थी। वह कुछ ऊब भी गई। वायु और समय की अधिकता के कारण प्रेमियों के बीच में आने का किसी को क्या अधिकार है? स्थल और काल के समान बेमतलब मानव मर्यादाओं के निर्माण का कारण क्या है?"

धीरे-धीरे अगासी का द्वार खुला। सोहिणी चौंक पड़ी। किस लिये यह वह भी नहीं समझ सकी। उसका यह प्रथम मिलन नहीं था। विवाह हुये वर्षों बीत गये थे। क्यों उसे नवोढ़ा के समान शंका हो रही है? शीतल पवन जोर से कँपकँपी उत्पन्न कर रहा था। पानी जो कुछ नहीं कर सका था उसे द्वार खुलने के शब्द ने कर दिया। सोहिणी को रोमांच हो गया।

प्रेमियों को परस्पर कहाँ खोजना चाहिये इसका अचूक ज्ञान होता है। उनके मध्य में दीवाल भी खड़ी कर दीजिये और फिर देखिये कि वे हिमालय को ठेलकर आपको अकेले पकड़ लेंगे। फिर इन छोटी-मोटी भूल-भूलैयों का क्या हिसाब! शिरीष द्वार खोल कर अगासी में आया। आधा आकाश काले बादलों से ढँक गया था और शेष आधे पर भी बड़ी तेजी

से अन्धकार फैल रहा था। शिरीष रुका। उसे कुछ क्षोभ हुआ। तो क्या वह शरमाया था? इतने दिनों के बाद? उसने किसी नवीन प्रेम की तीव्रता का अनुभव किया। वह पुनः आगे बढ़ा। उसे विश्वास था कि अँधेरी अगासी में सोहिणी ही खड़ी है। पास आकर उसने उसका हाथ अपने हाथ में लिया। अत्यन्त गम्भीर स्वभाववाली सोहिणी इस समय एक मुग्धा के समान अनुभव कर रही थी। वाद-विवाद में प्रवीण रूप गर्विता इस समय अवाक् हो गई। आकाश में बिजली चमकी और गड़गड़ाहट से आकाश काँप उठा पर उसे न सोहिणी ने देखा और न सुना। बिजली के क्षणिक प्रकाश में केवल शिरीष के चमकते नेत्र देखे और अपने हृदय की धड़कन सुनी।

"सोहिणी!" बहुत दिनों के बाद यह मधुर स्वर सोहिणी ने सुना। दूर पर कोटरों और वृक्ष पर मोर बरसात के आगमन से प्रफुल्ल होकर शोर कर रहे थे। पर उस शोर को छोड़ कर यह मीठा स्वर उसके कानों में गूँजने लगा।

कितना समय इस प्रकार बीत गया। सारा आकाश बादलों से भर गया चारों ओर बिजली चमकने लगी। उसके नृत्य के लाल पीले और सुनहले अलकों से आकाश का चित्रण होने लगा। झींसी पड़ने लगी। सोहिणी को खबर तक नहीं कि कब उसने अपना हाथ छुड़ा कर शिरीष का हाथ पकड़ लिया था। बड़ी देर के बाद शिरीष पुनः बोला।

"बोलना नहीं है न?"

इतना साधारण सा वाक्य कहने में शिरीष की बुद्धि ने इतना समय लिया।

"मुझे तो बहुत कुछ बोलना है पर तुम्हें सुनना कहाँ है! इस प्रकार बिना अपराध के छोड़ कर जाना हो है न?" सोहिणी ने कहा।

"तुम यही बात तो नहीं समझती मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ। तुम इतनी

ऊपर की कक्षा में हो कि उसके योग्य होने के लिये मुझे भाग जाने तक का साहस करना पड़ा और फिर भी मैं सफल नहीं हो पाया।"

सोहिणी ने शिरीष का हाथ अपने कमर से लपेट लिया।

"यह सब कहाँ से सीख आये हो। अब फिर कभी योग्य होने जाना तो मुझसे पूछकर जाना।" वह शिरीष के मस्तक पर हाथ फेरने लगी। दोनों कुछ देर तक शान्त रहे। सोहिणी का ध्यान मर्यादा रहित हास्य करती हुई बिजली की ओर आकर्षित हुआ।

"शिरीष!" उसने पति का नामोच्चार किया। पति-पत्नी में नामोच्चार का क्षण धन्य होता है पर हिन्दू रूढ़ि ने बाधा रख दी है। वह बाधा तोड़ने वाले जैसे विरले होते हैं वैसे ही वे धन्य भी होते हैं। ये शब्द निरर्थक केवल दर्शनीय नहीं हैं।

"क्या है? सोहिणी।" और अपने निकट खींचते हुये शिरीष ने पूछा। बरसात की एक तेज झड़ी उन पर पड़ी। नृत्य करती हुई बिजली में पानी की बड़ी-बड़ी बूंदें इस युगल जोड़ी पर मोती के समान चमकने लगी।

"एक बिजली गिर कर हम लोगों को अपने साथ ले ले तो कैसा हो।" सोहिणी ने पूछा।

और वास्तव में आकाश से एक बिजली टूटी। नर्मदा का जल खौल उठा। टेकरे, वृक्ष और रेती के मैदान स्पष्ट हो गये। करारे और कोटर इस भयानक शब्द को सहन न कर सकने के कारण लौटाने लगे।

इस एक क्षण के प्रकाश में सारी बातें स्पष्ट हो गईं। अगासी पर बरसात में भी दोनों प्रेमी खड़े थे। बिजली टूटते ही शिरीष ने सोहिणी की कमर पकड़ ली और दूसरे हाथ से उसका मुख अपने निकट किया। आकाश में चमक होते ही दोनों प्रेमियों के अधर इस प्रकार मिल गये जैसे प्रलयकाल तक अलग होंगे। दोनों में से किसी ने भी बिजली देखी नहीं।

दोनों के हृदय में कोई अन्य ही बिजली चमक रही थी। बरसात की फुहार छूटी। मेघ टूट पड़ा।

गौरांगदास अपने चबूतरे पर खड़े हो गये थे। उन्होंने बिजली के चमक में अगासी की ओर देखा और उनके कण्ठ में मालकोष का मधुर स्वर उमर पड़ा वे प्रसन्न चित्त से जोर से गाने लगे।

"कोई पिये प्रेम रस प्याला।"

उसी चबूतरे पर सोये हुये सुकुमार ने घड़ियाल में बारह बजते गिने। गौरांगदास का गाना आगे बढ़ा।

"कोई पिये प्रेम रस प्याला।"

❀ समाप्त ❀